ॐ ह्रीं

हिन्दी
महा-निर्वाण तन्त्र

प्रकाशक : परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान
कल्याण मन्दिर प्रकाशन
श्रीचण्डी-धाम, अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-२११००६

ह्रीं ॐ

हिन्दी

महा-निर्वाण तन्त्र

आदि-सम्पादक एवं अनुवादक

प्रातः-स्मरणीय 'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल

सम्पादक

ऋतशील शर्मा

प्रकाशक

पण्डित देवीदत्त शुक्ल स्मारक

परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

श्रीचण्डी-धाम, प्रयाग-राज-२११००६ ☎ ९४५०२२२७६७

Website : www.paravani.org Email : chandi_dham@rediffmail.com

प्रकाशक
पण्डित देवीदत्त शुक्ल स्मारक
परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान
कल्याण मन्दिर प्रकाशन
श्रीचण्डी-धाम, प्रयाग-राज-२११००६ ☎ ९४५०२२२७६७

हिन्दी

महा-निर्वाण तन्त्र

हे शिवे! तुम साक्षात् परम ब्रह्म की परमा प्रकृति अर्थात् शक्ति हो।
यह सारा जगत् तुम्हीं से उत्पन्न हुआ है।
हे भद्रे! महत् तत्त्व से परमाणु तक और स्थूल-सूक्ष्म
सारा स्थावर जङ्गम-स्वरूप जगत् तुम्हारे ही द्वारा उत्पन्न हुआ है।
सारा जगत् तुम्हारे अधीन है।
तुम सबकी आद्या अर्थात् आदि-भूता हो।
सारी विद्याएँ और हम सब तुम्हीं से उत्पन्न हुए हैं।
सारे जगत् के सभी विषयों को तुम जानती हो।
तुम्हें कोई नहीं जान सकता।
(पृष्ठ १६)

तृतीय संस्करण
चैत्र शुक्लाष्टमी, क्रोधी सं० २०६८ वि०
(११ अप्रैल, २०११)
सर्वाधिकार सुरक्षित
परा-वाणी प्रेस
'श्रीचण्डी-धाम', अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-राज (उ०प्र०)

अनुक्रमणिका

महा-निर्वाण-तन्त्रोक्त पूजन-यन्त्र			चार
प्राक्कथन	:	'महा-निर्वाण तन्त्र' का महत्त्व	पाँच
पहला उल्लास	:	जीव-निस्तारोपाय-सम्बन्धी प्रश्न	१
दूसरा उल्लास	:	जीव-निस्तारोपाय का कथन	४
तीसरा उल्लास	:	ब्रह्मोपासना-विधि	७
चौथा उल्लास	:	प्रकृति-साधना का उपक्रम	१५
पाँचवाँ उल्लास	:	कलश-स्थापन और तत्त्व-संस्कार	२०
छठा उल्लास	:	पात्र-स्थापन और होम, चक्र, करणादि	३३
सातवाँ उल्लास	:	स्तोत्र, कवच और कुल-तत्त्व के लक्षणों का कथन	४३
आठवाँ उल्लास	:	वर्णाश्रम-आचार-धर्म का कथन	५०
नवाँ उल्लास	:	दस प्रकार के संस्कार	६३
दसवाँ उल्लास	:	वृद्धि-श्राद्धादि का कथन	७९
ग्यारहवाँ उल्लास	:	पापों के प्रायश्चित्त का वर्णन	८९
बारहवाँ उल्लास	:	सनातन व्यवहार का कथन	९६
तेरहवाँ उललास	:	देवता, जलाशयादि-प्रतिष्ठा एवं वास्तु-यागादि की विधि	१०४
चौदहवाँ उल्लास	:	शिव-लिङ्ग-स्थापन एवं चतुर्विध अवधूतों का विवरण	११६
परिशिष्ट	:	'महा-निर्वाण तन्त्र' के अनूठे उद्धरण	१२६

★★★

महा-निर्वाण-तन्त्रोक्त पूजन-यन्त्र

सामान्यार्घ्य-स्थापन-यन्त्र

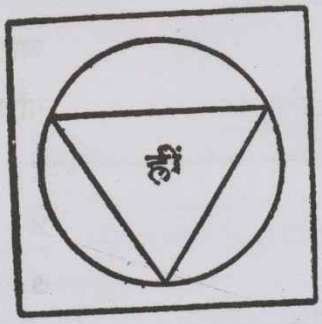

पाँचवाँ उल्लास, १६०

श्री आद्या-पूजन-यन्त्र

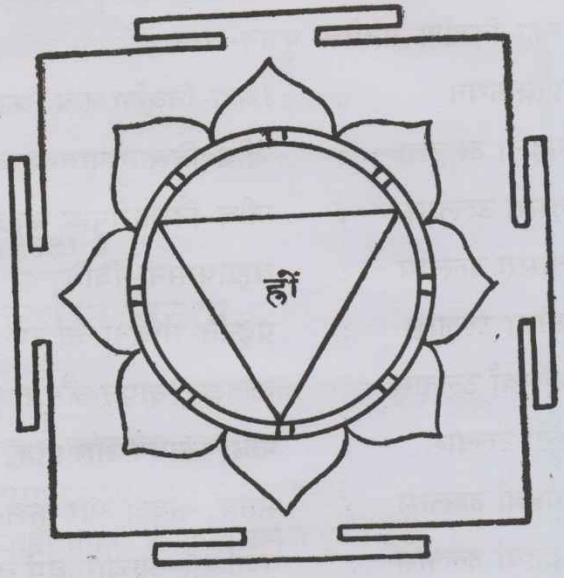

पाँचवाँ उल्लास, १७२-७३

कलश-स्थापन-यन्त्र

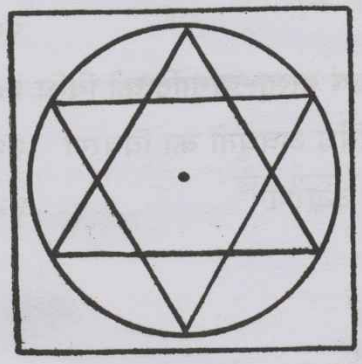

पाँचवाँ उल्लास, १८२

विशेषार्घ्य (श्रीपात्र) स्थापन-यन्त्र

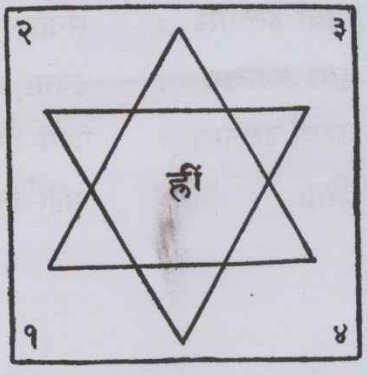

छठा उल्लास, २१

प्राक्कथन

'महा-निर्वाण तन्त्र' का महत्त्व

(द्वितीय संस्करण में प्रकाशित)

'**महा-निर्वाण तन्त्र**' का महत्त्व इसी से समझा जा सकता है कि **दरभङ्गा-नरेश स्व० महाराजाधिराज श्री रमेश्वर सिंह**, जो अपने समय के एक **सिद्ध कौल साधक** थे एवं **सर जॉन वुडरफ** (कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश) द्वारा तत्कालीन उच्च कोटि के तान्त्रिक विद्वानों के सहयोग से बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में कलकत्ते में संस्थापित '**आगम अनुसन्धान समिति**' के तत्त्वावधान में सन् १९२९ में इस ग्रन्थ को प्रमुखता के साथ प्रकाशित किया गया। यही नहीं, '**आर्थर एवेलॉन**' के उपनाम से **स्व० वुडरफ** ने इस तन्त्र का पूर्ण अंग्रेजी भावानुवाद भी '**ग्रेट लिबरेशन**' नाम से उक्त संस्था द्वारा प्रकाशित कराया था। इस सम्बन्ध में यह भी उल्लेखनीय है कि बङ्गाल में उन दिनों समाज-सुधार की अग्रणी संस्था '**ब्राह्म-समाज**' थी, जिसके प्रख्यात कर्णधार **राजा राममोहन राय** और उनके गुरु **स्वामी हरिहरानन्द भारती** ने '**ब्राह्म-समाज**' द्वारा प्रवर्त्तित **ब्राह्म-धर्म** के उपदेशों की रचना इसी तन्त्र के आधार पर की थी। **स्वामी जी** ने इस तन्त्र के मूल श्लोकों की संस्कृत-टीका भी लिखी थी, जो समिति द्वारा प्रकाशित '**महा-निर्वाण तन्त्र**' में मूल के साथ छपवा दी गई थी और वह आज भी उपलब्ध है।

संवत् १९६० में प्रकाशित भाषा-टीका-सहित '**महा-निर्वाण तन्त्र**' की भूमिका में **पण्डित बलदेवप्रसाद मिश्र** (दीनदार पुरा, मुरादाबाद) द्वारा लिखित निम्न कथन ध्यान देने योग्य है–

"…**तन्त्रसार** में **महा-निर्वाण तन्त्र** का नाम नहीं लिखा है। इस कारण से कोई-कोई महात्मा इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता में संशय करते हैं। ऐसी शङ्का करनेवालों को उचित है कि **पद्म-पुराण**, **अग्नि-पुराण** और **शङ्कर-विजय** को पढ़कर अपने सन्देह को दूर करें। **कुलार्णव तन्त्र** और इस **महा-निर्वाण तन्त्र** में **ब्रह्मोपासना** की विधि व प्रकरण वर्तमान हैं। "**पं० जीवानन्द विद्यासागर** की मूल मुद्रित पुस्तक के अतिरिक्त हमको दो प्राचीन लिखित पुस्तकें भी मिलीं, जिनमें से एक ७५० वर्ष पूर्व की है।…"

इसके अतिरिक्त इस तन्त्र के अन्य संस्करण प्रकाशित हुए, जिनका विवरण आगे दिया गया है। इन तथ्यों के साथ ही अनुक्रमणिका के अनुसार जो विषय इस तन्त्र में वर्णित हुए हैं, उनसे यह स्पष्ट रूप से अनुभव होता है कि **तान्त्रिक साधना** के सम्बन्ध में यह एक श्रेष्ठ शिक्षा-प्रद ग्रन्थ है।

हस्त-लिखित पाण्डु-लिपियाँ

महा-महोपाध्याय स्व० गोपीनाथ कविराज ने सन् १९७२ में प्रकाशित अपने '**तान्त्रिक साहित्य**' ग्रन्थ, पृष्ठ ४९१-९२ में '**महा-निर्वाण तन्त्र**' की छः हस्त-लिखित पाण्डु-लिपियों का उल्लेख किया है, जिनके विवरण का सारांश निम्न प्रकार है–

१. **एशियाटिक सोसायटी बङ्गाल** सूची-पत्र, सं० ६०३९–प्रथम भाग के १९ पटल। इसका प्रकाशन हो चुका है।

२. राजेन्द्रलाल मित्र की संस्कृत पुस्तकें, सं० २८९–आद्या-सदा-शिव के संवाद-रूप में। पूर्व-काण्ड मात्र, जिसमें १४ उल्लास हैं। विषय हैं–भगवती आद्या महादेव से 'जीवों के निस्तार' का उपाय पूछती हैं, भगवान् शिव उपाय बताते हैं–पर-ब्रह्म की उपासना, प्रकृति की साधना, देवी का दशाक्षर-मन्त्र, कलश-स्थापना, तत्त्व-संस्कार, श्रीपात्र-स्थापना, होम, चक्रानुष्ठान, कुल-तन्त्र, वर्णाश्रम के आचार, कुश-कण्डिका, दस संस्कार, वृद्धि-श्राद्ध, अन्त्येष्टि, पूर्णाभिषेक, अनिष्ट-कारी पापों का प्रायश्चित्त आदि।

३. वङ्गीय साहित्य परिषद् सूची-पत्र, सं० १२९–अपूर्ण।

४. कलकत्ता संस्कृत कालेज पुस्तकालय, सूची-पत्र सं० ५५–आद्या-सदा-शिव के संवाद-रूप में उत्तरार्द्ध मात्र, जिसमें १४ उल्लास हैं। विषय हैं–१. कलियुग में पतित जीवों का उद्धार कैसे हो, २. परम-ब्रह्मोपासना, ३. उपासना-विधि, ४. प्रकृति-साधना, ५. मन्त्रों के उद्धार, संस्कार आदि, ६. पात्र-स्थापन, होम, चक्रानुष्ठान, ७. कुल-तत्त्व, ८. वर्णाश्रम के आचार, ९. कुश-कण्डिका, दश संस्कार, १०. पूर्णाभिषेकादि, ११. अपने, पराए पापों का प्रायश्चित्त, १२. सनातन व्यवहार, १३. वास्तु, गृह-याग, १४. शिव-लिङ्ग-स्थापनादि।

५. जम्मू काश्मीर महाराजा पुस्तकालय सूची-पत्र, सं० १०६६–सदा-शिव-प्रोक्त।

६. राजस्थान पुरातत्त्व ग्रन्थ-सूची, सं० ६२६२–मात्र पूर्व-काण्ड।...

कविराज जी ने यह भी सूचित किया है कि 'प्राण-तोषिणी तन्त्र' और 'सर्वोल्लास तन्त्र' में 'महा-निर्वाण तन्त्र' के वचनों को उद्धृत किया गया है, किन्तु 'सर्वोल्लास' में उद्धृत वचन प्रकाशित 'महा-निर्वाण तन्त्र' में नहीं पाए जाते।

प्रकाशित संस्करण

'आगम अनुसन्धान समिति कलकत्ता' के द्वारा सन् १९१८ में प्रकाशित 'महा-निर्वाण तन्त्र' की भूमिका में आर्थर एवेलॉन (सर जॉन वुडरफ) ने इस तन्त्र के प्रकाशित संस्करणों का जो विवरण दिया है, उसके अनुसार आठ संस्करणों का परिचय निम्न प्रकार है–

१. 'महा-निर्वाण तन्त्र' का प्रथम खण्ड, जिसमें चौदह उल्लास हैं, पहले पहल 'आदि ब्राह्म समाज' द्वारा सन् १८७६ में प्रकाशित हुआ। उसके सम्पादक थे श्री आनन्दचन्द्र वेदान्त-वागीश। इस खण्ड की संस्कृत-टीका स्वामी हरिहरानन्द भारती द्वारा की गई थी, जिसकी पाण्डुलिपि उनके शिष्य राजा राममोहन राय के हाथ की लिखी उपलब्ध थी। उसे भी मूल के साथ प्रकाशित किया गया।

२. इसके बाद इस तन्त्र का मूल मात्र सन् १८८६ में श्रीकृष्णगोपाल भक्त ने प्रकाशित किया। इस संस्करण के सम्पादक थे श्री जगन्मोहन तर्कालङ्कार। इसमें भारती की उक्त टीका के साथ वङ्गानुवाद और तर्कालङ्कार की व्याख्यात्मक टिप्पणियाँ भी प्रकाशित हुईं।

३. इसी वर्ष अर्थात् सन् १८८६ में वाराणसी की दण्डी-सभा के श्री शाक्तानन्द सरस्वती द्वारा

इस तन्त्र के एक ऐसे संस्करण का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया, जिसमें किन्हीं **शङ्कराचार्य** द्वारा आध्यात्मिक व्याख्या प्रस्तुत की गई थी। साथ ही **वङ्गानुवाद** भी दिया गया था। इसमें **भारती** और **तर्कालङ्कार** दोनों की टीका की आलोचना भी की गई थी, किन्तु यह संस्करण अपूर्ण ही छपा था क्योंकि उसमें **छठे उल्लास** के १५८ वें श्लोक तक का ही प्रकाशन हो पाया था।

४. **जीवानन्द विद्यासागर** ने भी मूल और **संस्कृत** टीका को प्रकाशित किया।

५. सन् १८९१ में '**वङ्गवासी**' प्रेस कलकत्ता के **श्री विहारीलाल सरकार** ने इस तन्त्र को **वङ्गानुवाद** सहित प्रकाशित किया।

६. सन् १९०६ में **श्री श्यामाचरण कविरत्न** ने **वङ्गानुवाद** के साथ मूल मात्र प्रकाशित किया।

७. **श्री आर० एम० चट्टोपाध्याय** ने मूल मात्र का प्रकाशन किया।

८. **श्री वेङ्कटेश्वर प्रेस बम्बई** द्वारा **पण्डित बलदेवप्रसाद मिश्र** कृत **भाषा-टीका** सहित इस तन्त्र का प्रकाशन सन् १९०३ में किया गया।

नवाँ संस्करण **आर्थर एवेलॉन** द्वारा सम्पादित माना जा सकता है।

प्रस्तुत हिन्दी रूपान्तर

'**महा-निर्वाण तन्त्र**' का प्रस्तुत हिन्दी-रूपान्तर तैयार करने में हमने **वङ्गवासी प्रेस कलकत्ता** से **श्री विहारीलाल सरकार** द्वारा सन् १८९१ में प्रकाशित संस्करण को आधार-रूप में लिया है। इस संस्करण, **पं० बलदेवप्रसाद मिश्र** और **आर्थर एवेलॉन** द्वारा सम्पादित संस्करण में उल्लास तो समान ही हैं अर्थात् प्रत्येक में १४ उल्लास हैं, किन्तु कुछ उल्लासों की श्लोक-संख्या में अन्तर दृष्टिगत होता है–

उल्लास	'मिश्र'-संस्करण	'सरकार'-संस्करण	एवेलॉन-संस्करण
१	७४	७४	७२
२	५४	५४	५४
३	१५४	१५४	१५३
४	१०९	१०९	१०६
५	२१५	२१५	२१६
६	१९९	२००	२००
७	१११	१११	१११
८	२८९	२८९	२८९
९	२८३	२८३	२८४
१०	२१२	२१२	२१२
११	१७०	१७०	१७०
१२	१२९	१२९	१२९
१३	३१०	३१०	३१०
१४	२११	२११	२११

उक्त तालिका के अनुसार **वङ्गवासी-संस्करण** के उल्लास १, ३ और ४ में क्रमशः २, १ और ३ श्लोक अधिक प्रतीत होते हैं, किन्तु दोनों के पाठों के मिलान करने पर ज्ञात होता है कि '**एवेलॉन**' ने अर्थ की पूर्णता को देखते हुए कहीं-कहीं तीन पंक्तियों का और कहीं एक पंक्ति का श्लोक मान लिया है; जैसे प्रथम उल्लास के श्लोक २८, ३५, ५०, ५७, ६६ तीन-तीन पंक्तियों के हैं, जबकि श्लोक ७० एक पंक्ति का है, जब कि **वङ्गीय संस्करण** में सभी श्लोक दो-दो पंक्तियों के हैं। फलतः इस संस्करण की श्लोक-संख्या तो ७४ है, जब कि **एवेलॉन-संस्करण** में वह घट कर ७२ रह गई है। यही बात अन्यत्र भी है। अतः तीनों संस्करणों की श्लोक-संख्या वस्तुतः समान ही है।

प्रस्तुत '**हिन्दी महा-निर्वाण तन्त्र**' में अनुवाद के साथ दी गई श्लोक-संख्या अप्राप्य '**सरकार**'-**संस्करण** के अनुरूप है, किन्तु थोड़ा ही ध्यान देने से सम्बन्धित मूल श्लोक '**एवेलॉन**'-**संस्करण** में जिज्ञासु पाठक देख सकते हैं। अनुवाद करने में यह सावधानी रखी गई है कि **मन्त्र, ध्यान, स्तोत्रादि का मूल संस्कृत पाठ** भी उद्धृत रहे, जिससे केवल इसी संस्करण की सहायता से साधक बन्धु अपनी उपासना में इस उपयोगी तन्त्र की बातों का उपयोग कर सकें। साथ ही पहले-पहल इस तन्त्र में उल्लिखित **मुख्य पूजा-यन्त्रों** के रेखा-चित्र भी इस संस्करण में प्रकाशित किए गए हैं। यही नहीं, अप्राप्य '**सर्वोल्लास तन्त्र**' में इस तन्त्र के जो दुर्लभ वचन दिए गए हैं, उन्हें भी परिशिष्ट में उद्धृत कर दिया गया है। आशा है कि इन विशेषताओं से युक्त यह संस्करण पाठकों के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध होगा। इसी में हमारे परिश्रम की सार्थकता है।

–'कुल-भूषण'

प्रयाग
चैत्र पूर्णिमा, २०३९

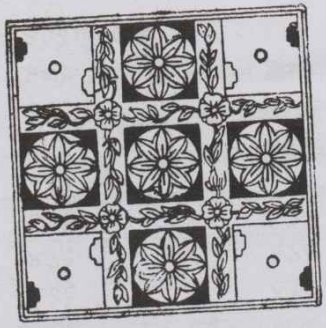

नवनाभ-मण्डल (पृष्ठ ८८)

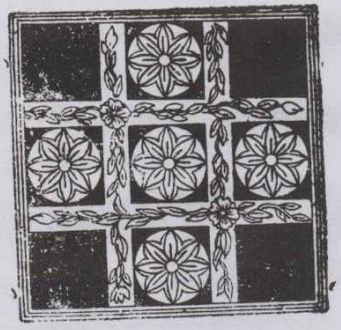

पंचाब्ज-मण्डल (पृष्ठ ८८)

श्रीगणेशाय नमः

हिन्दी महा-निर्वाण तन्त्र

पहला उल्लास : जीव-निस्तारोपाय-सम्बन्धी प्रश्न

विविध प्रकार के रत्नों से शोभायमान, विभिन्न वृक्षों-लताओं से व्याप्त, नाना प्रकार के पक्षियों की ध्वनि से युक्त, सभी ऋतुओं में उत्पन्न होनेवाले फूलों की गन्ध से सुगन्धित, अति मनोरम, ठण्डी-सुगन्धित-हलकी हवा से कम्पायमान, अप्सराओं के सङ्गीत से उत्पन्न मधुर ध्वनि से गुंजित, स्थिर छायावाले वृक्षों की छाया से ढँके हुए, सुन्दर मस्त कोयलों के झुण्ड द्वारा समुचित शब्दायमान वन-प्रदेश-वाले, सभी समय भौंरों आदि के सहित ऋतुराज वसन्त द्वारा सेवित, सिद्ध-चारण-गन्धर्व-गाणपत्य सभी से परिपूर्ण—इस प्रकार के रमणीय गिरीन्द्र अर्थात् कैलास-पर्वत के शिखर पर चराचर जगत् के गुरु, मौन रहनेवाले, दयामृत के सागर, कपूर और कुन्द-पुष्प के समान गौर वर्ण, विशुद्ध सत्व-गुण-मय, व्यापक पुरुष, दिक्-रूप वस्त्र धारण करनेवाले, सभी दीनों के नाथ, स्वयं श्रेष्ठ योगी, योगियों के प्रिय, गङ्गा-जल से भीगे हुए जटा-समूह से शोभित, भस्म से अलंकृत, शान्त अर्थात् संयमित अन्तःकरण वाले, सर्प-माला पहने हुए, नर-कपाल लिए हुए, तीनों लोकों के ईश्वर, त्रिशूल-धारी, आशु-तोष अर्थात् शीघ्र प्रसन्न होनेवाले, ज्ञान-मय, निर्वाण-मोक्ष-रूपी फल देनेवाले, निर्विकल्प, आशङ्का-रहित, निर्विशेष, निरञ्जन, निरामय, सबके कल्याणकारी, देवों के देव, प्रसन्न-मुख, सदानन्द सदाशिव के दर्शन कर विनय से झुकी हुई पार्वती देवी ने लोक-हित के लिए उनसे कहा— (१–१०)

हे देव-देव ! जगन्नाथ, मेरे नाथ, करुणा-निधे ! मै तुम्हारे अधीन हूँ। हे देवेश ! मैं सदा तुम्हारी आज्ञा माननेवाली हूँ। तुम्हारे आदेश को छोड़कर कुछ कहने में समर्थ नहीं हूँ। यदि मेरे ऊपर थोड़ी भी कृपा हो और यदि मुझ पर स्नेह हो, तो मेरे मन में जो कुछ विचार हैं, उन्हें कहती हूँ। हे महेश्वर ! तीनों लोकों में तुम्हारे सिवा और कौन है, जो इस संशय को दूर करने के योग्य है ? तुम्हीं सर्वज्ञ हो और सब शास्त्रों के जाननेवाले हो। (११–१३)

सदाशिव ने कहा—हे महा-प्राज्ञे, हे प्राण-वल्लभे ! तुम क्या कहना चाहती हो, उसे कहो। अति गोपनीय होने पर भी, प्रिय पुत्र गणेश और सेना-पति कार्तिकेय से भी जो कहने योग्य नहीं होगा, उसे भी तुम्हें बताऊंगा। तीनों लोक में तुम्हारे लिए क्या गोपनीय है ? हे देवि ! तुम मेरा ही रूप हो, तुममें और मुझमें कोई भेद नहीं है। तुम सर्वज्ञा हो। क्या नहीं जानती हो, जो अनजान के समान पूछती हो ?

महादेव के इस प्रकार के वाक्य सुनकर प्रसन्न-मन होकर साध्वी पार्वती ने विनय से झुककर शङ्कर से जिज्ञासा की। (१४-१७)

आद्या ने कहा—हे भगवन्, सर्व-भूतेश ! हे सर्व-धर्म-विदां वर ! तुम षडैश्वर्यशाली, कृपालु और

सबके अन्तर्यामी हो। तुम्हारे द्वारा पूर्व-काल में चारों वेद प्रकाशित हुए हैं (१८)। इन वेदों से सभी धर्मों को वृद्धि हुई और वर्णाश्रमादि के नियम प्रतिष्ठित हुए (१६)। उन्हीं वेदों में कथित योग, यज्ञादि-रूप समस्त कर्मों द्वारा पृथ्वी पर पुण्य-शील सभी मनुष्यों ने 'कृत' अर्थात् 'सत्य-युग' में सभी देवताओं और पितरों को प्रसन्न किया (२०)। उस सत्य-युग में मनुष्य लोग पुण्य-शील होते थे और स्वाध्याय, ध्यान, तपस्या, दया, दानादि द्वारा जितेन्द्रिय होते थे। वे बड़े बली, वीर्य-वान् और अत्यन्त सत्य-पराक्रमी थे (२१)। वे मनुष्य मरण-धर्म-शील होने पर भी स्वर्गादि जाने में समर्थ, देव-तुल्य और नियम पालन करने में दृढ़ थे। सभी सज्जन, सत्य-धर्म के माननेवाले और सत्यवादी थे (२२)। उस युग में राज-वर्ग सत्य-निष्ठ और प्रजा-पालन में तत्पर था। पर-स्त्री को वे मातृ-वत् और पर-पुत्र को अपने पुत्र के समान स्नेह करते थे (२३)। तत्कालीन मनुष्य लोग पराए धन को लोष्ठ के समान देखते थे। वे स्वधर्म का पालन करते थे और सन्मार्ग पर चलते थे (२४)। उस सत्ययुग में कोई भी व्यक्ति झूठा नहीं था। किसी भी समय कोई प्रमाद, चोरी, पर-द्रोह नहीं करता था। कोई बुरे आशयवाला नहीं था (२५)। कोई भी व्यक्ति ईर्ष्यालु, अति-क्रोधी, कामुक नहीं था। सभी अच्छे अन्तः-करण, सदा आनन्दित हृदयवाले थे (२६)। उस काल में सारी पृथ्वी सभी फसलों से भरी-पूरी, सारे बादल यथा-समय वर्षा करनेवाले, सभी गाएँ खूब दूध देनेवाली, सारे वृक्ष बहुत फल देनेवाले होते थे (२७)। उस युग में कोई जीव अकाल मृत्यु के मुख में नहीं जाता था। दुर्भिक्ष या रोग होते नहीं थे। सारी प्रजा हृष्ट-पुष्ट, सदैव स्वस्थ, तेजस्वी और गुणों से सम्पन्न रहती थी। स्त्रियाँ व्यभिचारिणी नहीं थीं और पतिव्रता होती थीं (२८)। उस सत्ययुग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र लोग अपने-अपने आचार को मानते हुए अपने-अपने वर्ण के लिए निर्दिष्ट धर्म का पालन करते हुए मोक्ष-पद को प्राप्त करते थे (२६)। सत्ययुग के बीतने पर, इस सभी धर्म में व्यतिक्रम दिखाई देने लगा। उस समय मनुष्य लोग समस्त वेदोक्त कर्मों द्वारा अपने-अपने अभीष्ट को पाने में समर्थ नहीं थे (३०)। अत्यधिक साधनवाले वैदिक कर्म उस समय बड़े कष्ट-साध्य हो गए थे। बहुत सो चिन्ताओं से व्याकुल होकर लोग उनका पालन करने में समर्थ नहीं थे (३१)। तथापि वैदिक कर्म का त्याग करने से विविध दोष होने की बात सुनने से वे लोग उस कर्म को छोड़ने में भी समर्थ नहीं थे। फलतः अपनी इस असमर्थता से वे सदैव व्याकुल-चित्त रहते थे (३२)।

उसी समय आपने भू-तल पर 'स्मृति'-रूप वेदार्थ-युक्त शास्त्रों का प्रकाश किया। दुःख-शोक-रोग-दायक पाप के होने पर तपस्या-स्वाध्याय करने में दुर्बल सभी लोग उसके द्वारा अपना उद्धार करने लगे (३३)। इस भयानक संसार-सागर में आपके सिवा सभी जीवों का पालन-रक्षा-उद्धार करनेवाला—पिता के समान प्रिय करनेवाला प्रभु और कौन है ? (३४)।

इसके बाद द्वापर-युग के आने पर मनुष्य के स्मृत्युक्त सुकर्म का त्याग हुआ; धर्मार्द्धं का लोप हो गया; मनुष्य मानसिक व्यथा और व्याधि से व्याकुल हो उठा। उस समय तुम्हारे द्वारा व्यासादि रूप में 'संहिता'-शास्त्रादि के उपदेश से उन सब मनुष्यों का उद्धार हुआ (३५-३६)।

उसके बाद पाप-रूपी, सभी धर्मों को लुप्त करनेवाला, दुराचार-दुष्कर्म को फैलानेवाला, दुष्ट कर्मों का प्रवर्त्तक कलियुग आया (३७)। इस समय वेद शक्तिमान न रहा, सभी स्मृतियों का किसे स्मरण था ? विविध इतिहास-युक्त, नाना मार्ग दिखानेवाले सभी पुराण नष्ट हो गए (३८)। हे विभो ! पुराणादि शास्त्रों का विनाश होने पर उस समय सभी लोग धर्म-कर्म से विमुख होंगे (३६) और परम्परा-रहित होकर मदोन्मत्त, पाप कर्म में तत्पर, कामुक, अति लोभी, निर्दय, दर्मख, शठ (४०), अल्पायु, मन्द-बुद्धि, रोग-शोक से अति व्याकुल, श्री-रहित, बल-हीन, नीचाचार-परायण (४१), सदा नीच-सङ्ग करनेवाले, पराए धन को हरण

करनेवाले, पर-निन्दा में तत्पर, पर-द्रोही, पर-योनि-परायण होंगे (४२)। पर-स्त्री का हरण करने में पाप की शङ्का और भय से शून्य होंगे। इस प्रकार सभी निर्धन, मलिन, दीन, दरिद्र, चिर-रोगी होंगे (४३)। सभी सन्ध्या-वन्दनादि से रहित होकर शूद्र के समान आचारवाले होंगे और अयाज्य अपकृष्ट जाति के पुरोहित, लोभी, दुर्वृत्त, पापी, (४४) मिथ्या-वादी, मूर्ख, दम्भी, दुष्ट कथा का विस्तार करनेवाले, कन्या बेचनेवाले, संस्कार-हीन और तपस्या-व्रत से पराङ्मुख होंगे (४५)। वे लोगों को ठगने के लिए जप-पूजा-परायण, पाखण्ड व्यवहार करनेवाले, अपने को पण्डित कहकर घमण्ड करनेवाले और श्रद्धा-भक्ति से रहित होंगे (४६)। कलि के ब्राह्मण सभी निन्द्य आहार करनेवाले, निन्द्य व्यवहार में तत्पर और 'धूतक' अर्थात् अपना पेट भरने के लिए जोवित रहनेवाले, शूद्र-सेवक, शूद्र का अन्न खानेवाले, क्रूर और शूद्र-पत्नी से रति-सम्भोग को इच्छा रखनेवाले होंगे (४७)। ये लोग धन के लोभ से अपनी स्त्रो को नीच जाति में दान देंगे, इन लोगों का ब्राह्मण-सम्बन्धी चिह्न केवल सूत्र-धारण मात्र रहेगा (४८)। इन ब्राह्मणों का पानादि नियम और भक्ष्याभक्ष्य का विचार न रहेगा। ये सदा धर्म-शास्त्र को निन्दा और सभी साधुओं से द्रोह करेंगे (४९)। उनके मन में कभी सत्कथा की बात तक न उठेगी।

जीव के उद्धार के लिए तुम्हारे द्वारा समस्त 'तन्त्र' की रचना हुई है और भोग-मोक्ष-दायक निगम-आगम शास्त्र-समूह की भी रचना हुई है (५०)। इस तन्त्रादि शास्त्र में देव-देवो-गण के मन्त्र-यन्त्रादि का साधन (५१), सृष्टि-स्थिति-संहार रूपी बहुत से न्यास और बद्ध-पद्मासन आदि बहुत प्रकार के आसन बताए गए हैं तथा सभी देवताओं के मन्त्रों को सिद्धि देनेवाले पशु-भाव, वीर-भाव और दिव्य-भाव भी कहे गए हैं (५२)। इसमें शवासन, चितारोहण, मुण्ड-साधन, लता-साधनादि सभी असंख्य कर्म तुम्हारे द्वारा बताए गए हैं (५३)।

परन्तु इस तन्त्र-शास्त्र में स्वयं तुम्हारे द्वारा पशु-भाव और दिव्य-भाव का निषेध किया गया है (५४)। कलि में पशु-भाव हो नहीं है, फिर दिव्य-भाव किस प्रकार हो सकता है? कारण पशु-भावावलम्बियों का कर्तव्य है कि वे पत्र-पुष्प-फल-जल को स्वयं हो लावें, शूद्र को देखें नहों और मन में भी स्त्रो का स्मरण न करें (५५)। दिव्यभावापन्न व्यक्ति को देव-तुल्य होना है; सदा शुद्ध अन्तः-करणवाला, द्वन्द्व-सहनशोल, वासना-रहित, सब प्राणियों में सम भाव रखनेवाला और क्षमावान् होना है (५६)। किन्तु इस क्षण में लोग कलि के पाप से युक्त, सदा अस्थिर-चित्त, निद्रा और आलस्यवाले होंगे। इन लोगों की भाव-शुद्धि किस प्रकार होगी? (५७)। हे शङ्कर! आपने 'पञ्च-तत्त्व' बताए हैं, उनसे 'वीर-साधन' कहा गया है (५८)। मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा, मैथुन—ये हो 'पञ्च-तत्त्व' आपने कहे हैं (५९)। कलि-काल में उत्पन्न सभो मनुष्य लोभी और शिश्नोदर-परायण होते हैं; वे लोग लोभ-वश उन 'पञ्च-तत्त्वों' से पतित होंगे, साधन नहीं करेंगे (६०)। वे लोग इन्द्रिय-सुख के लिए अधिकतर मधु-पान करके मदोन्मत्त और हिताहित के ज्ञान से शून्य हो जायँगे (६१)। उनमें से कोई-कोई व्यक्ति पर-स्त्री-धर्षक अर्थात् परायो स्त्रियों का पतन करनेवाले होंगे; बहुत से लोग चोरी का सहारा लेंगे; वे सब महा-पापी लोग योनि का विचार न करेंगे (६२)। असोमित पानादि दोष से पृथ्वी पर मद-विह्वल बहुत से लोग शक्ति-हीन, रुग्ण, बुद्धि-हीन और विकलेन्द्रिय होकर जलाशय, गर्त, जङ्गल, महल से, पर्वत से गिरेंगे और मृत्यु को प्राप्त करेंगे (६३-६४)। इन सब मत्त लोगों में से कुछ तो गुरु-जनों और स्व-जनों से विवाद करेंगे; कुछ स्तब्ध (चुप) रहेंगे; अथवा कुछ अति पान से मृत-प्राय या कुछ बकवादी होंगे। ये सब अनुचित कार्य, क्रूर कर्म करनेवाले और धर्म-पथ को विलुप्त करनेवाले होंगे (६५-६६)। हे प्रभो, महा-देव! हित-साधन के लिए जो सारे कर्म आपने बताए हैं, वे सब मनुष्य लोगों के लिए उल्टे हो

जायँगे। कौन व्यक्ति योग का आश्रय लेगा ? या कौन व्यक्ति न्यासों का करने में समर्थ होगा ? (६७)। अथवा कौन स्तोत्र का पाठ करेगा ? या कौन व्यक्ति यन्त्राधार में पूजा करेगा या यन्त्र धारण करेगा ? अथवा कौन व्यक्ति पुरश्चरण करेगा ? (६८)। हे जगत्पते ! युग-धर्म के प्रभाव से मनुष्य लोग स्वभावतः बड़े दुराचारी और सदा पाप करनेवाले होंगे।

हे दीनेश प्रभो ! कृपा करके कलि में उत्पन्न मनुष्य लोगों के निस्तार का उपाय बताइये (६९), जिससे उनकी आयु, आरोग्य, तेज, बल, वीर्य की वृद्धि हो; उन्हें विद्या, बुद्धि प्राप्त हो; प्रयत्न बिना परम मङ्गल का लाभ हो (७०), जिससे सभी लोग महा-बली, पराक्रमी हों, शुद्ध-हृदय होकर परोपकार में तत्पर हों; माता-पिता का प्रिय करनेवाले हों (७१); जिससे सभी पुरुष स्वपत्नी-निष्ठ और पर-स्त्री-विमुख होकर देवता-गुरु-भक्त तथा पुत्र, स्वजनादि के पोषक हों (७२)। जिस उपाय से ये सब लोग ब्रह्मज्ञ, ब्रह्म-विद्या के ज्ञाता और ब्रह्म की चिन्ता में तत्पर हों; मनुष्यों के लोक-यात्रा के निर्वाह हेतु और पारलौकिक हित के लिए आप कृपा करके वही (उपाय) वर्णन करें (७३)। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि वर्ण एवं आश्रम-भेद से जो कर्तव्य और अकर्तव्य हैं, उन्हें कृपा करके प्रकट करें। त्रिभुवन में आपको छोड़कर समस्त लोगों का उद्धार करनेवाला कौन है ?

●※●

दूसरा उल्लास : जीव-निस्तारोपाय का कथन

महा-करुणा-समुद्र, सभी लोगों के कल्याणकारी, शङ्कर ने आद्या देवी के इस प्रकार के वचन सुनकर प्रकृत कथा का प्रारम्भ किया (१)। सदाशिव ने कहा—हे महा-भागे ! तुम जगत् की हित-कारिणी हो, तुमने उत्तम प्रश्न किया है। इस प्रकार की मङ्गल-कथा को पहले किसी ने जानना नहीं चाहा (२)। हे भद्रे ! तुम धन्य हो, सुकृतज्ञा अर्थात् जीव की सुकृति को जाननेवाली हो। कलि-काल में उत्पन्न सभी (प्राणियों) की तुम्ही वास्तविक हित-कारिणी हो; तुमने जो-जो कहा है, वह सब अति ही सत्य है, इसमें सन्देह नहीं (३)। हे परमेश्वरि ! तुम धर्म को जाननेवाली हो, त्रिकाल की ज्ञाता हो, अतः सर्वज्ञा हो। हे प्रिये, भूत-भविष्यत्-वर्तमान धर्म-युक्त जो कहा है, वह यथार्थ, यथा-योग्य और न्यायसम्मत है, इसमें सन्देह नहीं (४)। हे सुरेश्वरि ! कलियुग में पाप से दुर्गति को प्राप्त, पवित्रापवित्र के विचार से शून्य ब्राह्मणादि लोगों की शुद्धि श्रौत अर्थात् वेदोक्त कर्म से नहीं होगी; पुराण, संहिता और सभी स्मृतियों से भी मनुष्यों की इष्ट-सिद्धि न होगी (५-६)। हे प्रिये ! मै सत्य-सत्य पुनः सत्य कहता हूँ, कलि-काल में आगमोक्त पथ के सिवा अन्य गति नहीं है (७)। हे शिवे ! पूर्व काल में श्रुति, स्मृति, पुराणादि मैंने ही कहे हैं, कलि-काल में घोर व्यक्ति आगमोक्त विधि से ही देवगण की पूजा करे (८)। हे शङ्करि ! कलि-युग में आगम-शास्त्र का लङ्घन कर जो व्यक्ति अन्य पथ से चलेगा, उसका उद्धार नहीं होगा, यह मैं सत्य कहता हूँ, इसमें सन्देह नहीं (९)। वेद, पुराण, स्मृति और संहितादि शास्त्र द्वारा मैं ही प्रतिपाद्य हूँ, अन्य किसी का प्रतिपादन नहीं है। इस प्रकार जगत् में मेरे सिवा सर्वेश्वर प्रभु कोई नहीं है (१०)। वेदादि सभी शास्त्र मेरे पद को 'लोक-पावन' मानते हैं, मेरे पथ से विमुख सभी लोग ब्रह्म-घाती और पाखण्डी

हैं (११)। इसीलिए मेरे मत को छोड़कर जो व्यक्ति जो कर्म करता है, हे देवि ! वह कर्म निष्फल होता है और उस कर्म का करनेवाला नरक में जाता है (१२)। जो मूर्ख मेरे मत का त्याग कर अन्य मत को ग्रहण करता है वह ब्रह्म-हत्यारे, पितृ-हत्यारे, स्त्री-घातक के समान पापी होता है, इसमें सन्देह नहीं (१३)। कलि में तन्त्रोक्त सभी मन्त्र सिद्ध और शीघ्र फल-दायक हैं, जप-यज्ञ-क्रियादि में और सभी कर्मों में वे प्रशस्त हैं (१४)। कलि-काल में वेदोक्त सभी मन्त्र विष-हीन सर्प के समान शक्ति-रहित होते हैं। सत्यादि युग में वे सब मन्त्र फल देने में समर्थ थे, किन्तु कलि-काल में वे मृत के समान निष्फल हैं (१५)। जिस प्रकार दीवार में बनी हुई पुतली आँख, कान, नाक आदि सभी इन्द्रियों से युक्त होने पर भी कार्य करने में अर्थात् देखने, सुनने, जाने आदि में अशक्त है, उसी प्रकार तन्त्र में कथित मन्त्रों के सिवा अन्य मन्त्र उन-उन कार्यों के करने में असफल रहते हैं (१६)। तन्त्र में कथित मन्त्रों से भिन्न अन्य मन्त्र द्वारा कर्म करने पर फल नहीं मिलता, जिस प्रकार वन्ध्या स्त्री के सम्पर्क से सन्तान-रूप फल सिद्ध नहीं होता, यह भी उसी प्रकार निष्फल होता है, केवल श्रम भर होता है (१७)। जो मनुष्य इस कलि-युग में अन्य शास्त्र में कथित पथ से सिद्धि पाने की इच्छा करता है, वह दुर्बुद्धि मानों प्यासा होकर गङ्गा किनारे कुआँ खोदता है। मेरे मुख से कथित धर्म का त्याग कर जो मूर्ख अन्य धर्म को चाहता है, वह मानों अपने घर के अमृत को छोड़कर मदार के वृक्ष से उत्पन्न दूध की कामना करता है (१८)। तन्त्रोक्त पथ जिस प्रकार सुख मोक्ष का हेतु, मुक्ति का कारण और इस लोक एवं पर-लोक में सुख-प्राप्ति का निमित्त है, उस प्रकार अन्य कोई पथ नहीं है (१९-२०)। हे प्रिये ! विविध आख्यानों से युक्त बहु प्रकार का 'तन्त्र' मेरे द्वारा कहा गया है; सभी सिद्ध एवं सभी साधन-विधान का विस्तार से वर्णन किया गया है। पशुओं की अधिकता होने से अधिकारी-भेद से कुलाचारोक्त धर्म को कहीं-कहीं गुप्त रखने के लिए भी कहा है; जीवों को प्रवृत्ति करनेवाले कोई-कोई तन्त्र-कर्म भी कहे हैं; विविध प्रकार के देव और बहुत प्रकार के देवी के विषय बताए हैं। भैरव गण, वेताल-गण, वटुक-गण, समस्त नायिकाएँ और शाक्त, शैव, वैष्णव, सौर, गाणपत्य—सब ही कहे गए हैं। नाना प्रकार के मन्त्र, यन्त्र और अनेक प्रकार के सिद्धोपाय भी बताए हैं।

हे प्रिये ! जिस-जिस समय जिन-जिन व्यक्तियों ने जो-जो प्रश्न किए हैं, मैंने उस-उस समय उन लोगों के हितार्थ तदनुरूप कहा है (२१-२६)। हे पार्वति ! सब लोगों के हितार्थ, सब प्राणियों के कल्याण के लिए, युग-धर्मानुसार यथोचित रूप से, तुमने जिस प्रकार का प्रश्न किया है, इस प्रकार का प्रश्न पहले किसी व्यक्ति ने नहीं किया है। तुम्हारे स्नेहवश मैं इस सार-पूर्ण परात्पर विषय को कहता हूँ (२७-२८)। हे देवेशि ! वेद, आगम—विशेष कर सभी तन्त्रों का सार निकाल कर तुम्हें बताता हूँ (२९)। जिस प्रकार मनुष्यों में तन्त्र-ज्ञानी श्रेष्ठ है, देवताओं में मैं श्रेष्ठ हूँ, उसी प्रकार आगम-शास्त्रों में यह 'महा-निर्वाण तन्त्र' ही श्रेष्ठ है (३०)। हे शिवे ! सभी वेदों या सभी पुराणों या बहुत से शास्त्रों द्वारा क्या फल मिलता है ? एकमात्र इसी महा-तन्त्र के विशेष रूप से ज्ञात होने पर जीव सभी सिद्धियों का स्वामी होता है (३१)। जिस प्रकार जगत् के मङ्गल के लिए तुम्हारे द्वारा मैं नियुक्त हुआ हूँ, अतः जैसे यह विश्व का हितकारी हो, वह मैं कहता हूँ (३२)। हे देवि, हे परमेश्वरि ! विश्व का हित करने से विश्व का ईश्वर प्रसन्न होता है, क्योंकि वही विश्व का आत्मा है, विश्व उसी का आश्रय लेकर स्थित है। वह एक, अद्वितीय, सत्य, सद्-रूप, परात्पर, स्व-प्रकाश, सदा पूर्ण और सच्चिदानन्द-स्वरूप है। वह निर्विकार, निराधार, निर्विशेष, निराकुल अर्थात् आकुलता से शून्य है; वह गुणातीत, सब प्रकार के शुभाशुभ कर्मों का साक्षात् द्रष्टा, सभी की आत्मा, सबको देखनेवाला, विभु है (३३-३५)। वह सर्व-व्यापी, सब भूतों में गूढ़ भाव से अवस्थित है अर्थात् आदि-अन्त से शून्य वह स्वयं तो सब इन्द्रियों से रहित है किन्तु सभी इन्द्रियाँ और इन्द्रियों के विषय उसी से शक्ति पाते हैं (३६)। वह लोकातीत, त्रिभुवन का हेतु या बीज-स्वरूप और

वाक्य, मन से अगोचर है; वह सर्वज्ञ, विश्व को सम्पूर्णतः जाननेवाला है, उसे कोई व्यक्ति नहीं जानता (३७)। यह सारा जगत् उसके अधीन है। स्थावर, जङ्गम सहित यह त्रैलोक्य उसो के सहारे है। यह वितर्क-विषय से रहित जगत् परमात्मा के सत्यत्व का आश्रय लेकर, इस पृथ्वी, इस जल, इस वायु इत्यादि रूपों में अलग-अलग सत्य के समान प्रकाशित होता है। हे महेश्वरि ! वह 'ब्रह्म' हेतु-भूत होकर भी मुझसे ही उत्पन्न हुआ है (३८-३६)। वही परमेश्वर सब प्राणियों का एकमात्र कारण है; ब्रह्मा (उसी परमेश्वर द्वारा नियुक्त होकर) सारे लोक में सृष्टि करने के कारण 'स्रष्टा' नाम से कहा जाता है (४०)। उनकी इच्छा से प्रयुक्त विष्णु इस जगत् का पालन करने से 'पालयिता' कहे जाते हैं। उनकी इच्छा से संहार करने में नियुक्त मैं जगत् में 'संहर्ता' नाम से कहा जाता हूँ। इन्द्रादि लोक-पाल लोग और सभी उसकी वश्यता में हैं, अपने-अपने अधिकार में नियुक्त होकर, उसी की आज्ञानुसार जगत् का शासन करते हैं। तुम उसकी 'परा-प्रकृति' हो, इसीलिए त्रिभुवन में पूज्या हो (४१-४२)। वही परमात्मा अन्तर्यामी-रूप में उन सबको उन-उन विषयों में नियुक्त कर उनसे अपने-अपने कर्म करवाता है। जीव-गण किसी काल में स्वतन्त्र नहीं हैं (४३)। हे देवि ! जिसके भय से वायु चलता है; जिसके भय से डरकर सूर्य गर्मी देता है; सारे मेघ यथा-समय वर्षा करते हैं; जिसके शासन में जङ्गल में सभो वृक्ष विशेष पुष्पों से सम्पन्न होते हैं (४४) ; जो प्रलय-काल में साक्षात् काल का नाश करते हैं ; जो साक्षात् मृत्यु के मृत्यु-स्वरूप हैं, वे ही वेदान्त द्वारा जानने योग्य भगवान् हैं। वे 'यत्-तत्' (यह-वह) शब्दों से जाने जाते हैं (४५)। हे सुर-वन्दिते ! सभी देव और देवी-गण इसी में तन्मय हैं अर्थात् परमात्मा-स्वरूप हैं; 'आब्रह्म-स्तम्ब पर्यन्त' अर्थात् ब्रह्मा से लेकर तृणादि गुच्छ तक सारा जगत् 'तन्मय' है अर्थात् पर-ब्रह्म-स्वरूप है (४६)। इस परमात्मा के परितुष्ट होने पर जगत् परितुष्ट होता है; उसे प्रसन्न करने पर सारा जगत् प्रसन्न हो जाता है; उसकी आराधना करने से सभी को प्रीति उत्पन्न हो जाती है (४७)। हे देवि ! जिस प्रकार वृक्ष को जड़ को सींचने से उसको डालियाँ, पत्ते सभी तृप्त होते हैं, उसी प्रकार परमेश्वर को आराधना करने से अमरादि (देवादि) सभी सन्तुष्ट होते हैं (४८)।

हे सुव्रते, प्रिये ! जिस प्रकार तुम्हारी अर्चना, ध्यान, पूजा और जप करने से सभी देवियाँ प्रसन्न होती हैं, उसी प्रकार परमात्मा के अर्चनादि से सभी देवता प्रसन्न होते हैं, यह जान लो (४६)। जिस प्रकार नदियाँ लाचार होकर नदी-पति समुद्र में जाती हैं, उसी प्रकार सभी देवों के पूजादि कर्म, हे देवि ! उसी परमात्मा के ही लिए सम्पन्न होते हैं (५०)। जो-जो व्यक्ति जिस-जिस फल के पाने के लिए जिस-जिस देवता की पूजा श्रद्धा के साथ करता है, हे शिवे, वही अध्यक्ष पुरुष उन-उन देवताओं के द्वारा वही-वही फल उस-उस व्यक्ति को प्रदान करता है (५१)। हे प्रिये ! इस विषय में बहुत और क्या कहूँ, तुम्हारे आगे इतना भर कहता हूँ कि उस परमात्मा को छोड़कर मुक्ति के लिए ध्येय, पूज्य और सुखाराध्य अन्य कोई नहीं है (५२)। उस पर-ब्रह्म की उपासना में श्रम नहीं है, उपवास नहीं है, शरीर-सम्बन्धी कोई कष्ट नहीं है, आचारादि नियम नहीं हैं, बहुत से उपचारों आदि की आवश्यकता नहीं है; दिशा एवं काल आदि का विचार नहीं है; मुद्रा या न्यास की आवश्यकता नहीं है। हे कुलेशानि ! जिसके साधन में पूर्वोक्त श्रम आदि नहीं है, उससे भिन्न अन्य किसी का आश्रय कोई क्यों लेगा (५३-५४) ?

तीसरा उल्लास : ब्रह्मोपासना–विधि

देवी ने कहा—हे देव-देव ! आप देवताओं के गुरु के गुरु हैं; हे महा-देव ! आप सभी शास्त्रों, सभी मन्त्रों और सभी साधनों के वक्ता हैं (१)। हे भगवन् ! परात्पर परमेश्वर परब्रह्म, जिनका आपने कथन किया है और जिनको उपासना से मरण-शील मनुष्य भोग तथा मोक्ष पाएँगे, वे परमात्मा किस उपाय द्वारा प्रसन्न होंगे ? अथवा उनकी साधना क्या है ? या उनका मन्त्र किस रूप का है ? ध्यान और विधान किस प्रकार है ? मैं इसका प्रकृत तत्त्व सुनना चाहती हूँ। आप कृपा कर बतलायें (२-४)।

सदाशिव ने कहा—हे मेरी प्राण-वल्लभे ! यह परम तत्त्व अति गुह्य है। हे कल्याणि ! मैंने किसी भी स्थान पर इस रहस्य को प्रकाशित नहीं किया है। तुम्हारे स्नेह-वश मैं बताता हूँ। यह तत्त्व मुझे प्राणों से भी अधिक प्रियतम है (५)। हे परमेश्वरि ! सत्, चित्, जगत्-स्वरूप वही परब्रह्म स्वरूप-लक्षण और तटस्थ-लक्षण द्वारा यथावत् ज्ञेय होता है (६)। जो सत्ता-मात्र है अर्थात् केवल परमार्थ-स्वरूप है; जो निर्विशेष है अर्थात् स्वगत भेद-शून्य है और जो वाक्य-मन के अगोचर है (७); जिसके सत्त्व से मिथ्याभूत त्रिलोकी का सत्यत्व प्रतीत होता है—यही परब्रह्म का स्वरूप-लक्षण है। जो शत्रु-मित्र आदि में सर्वत्र सम-दर्शी है, जो शीतोष्ण सुख-दुःखादि द्वन्द्वों से अतीत है, जो नाना-प्रकार की भेद-कल्पनाओं से शून्य है, शरीर-निष्ठ आत्मत्व-बुद्धि-रहित इस प्रकार के सभी योगियों के समाधि-योग द्वारा उस ब्रह्म का स्वरूप जाना जाता है (८)। जिससे यह विश्व उत्पन्न होता है, उत्पन्न हुआ विश्व जिसमें स्थित रहता है और प्रलय-काल में यह चराचर जगत् जिसमें लय हो जाता है, वही ब्रह्म है। इसी तटस्थ-लक्षण द्वारा वह जाना जाता है। हे शिवे ! स्वरूप-लक्षण द्वारा जो ब्रह्म जाना जाता है, वही तटस्थ लक्षण द्वारा वेद्य या ज्ञेय होता है। स्वरूप-लक्षण द्वारा जानने में साधन की अपेक्षा नहीं है किन्तु तटस्थ लक्षण द्वारा ब्रह्म-प्राप्ति की इच्छा करने पर साधन विहित है (९-१०)। हे प्रिये ! वही साधन अर्थात् तटस्थ लक्षण द्वारा वेद्य ब्रह्म का साधन बताता हूँ, सावधान होकर सुनो।

उस साधन में पहले महेश्वर का मन्त्रोद्धार बताता हूँ (११)। पहले प्रणव (ॐ) का उच्चारण कर **'सच्चित्'** पद कहे। फिर **'एकं'** पद, तब **'ब्रह्म'** पद कहने से मन्त्र का उद्धार होता है। सन्धि-क्रम से मिल जाने पर यह मन्त्र सात अक्षर (सप्ताक्षर) का होता है—**'ॐ सच्चिदेकं ब्रह्म।'**

यही मन्त्र प्रणव-रहित होने पर षडक्षर (छः अक्षर का) होता है—**'सच्चिदेकं ब्रह्म।'** (१२-१३)

यह मन्त्र सब मन्त्रों में श्रेष्ठ है। यह साक्षात् धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का देनेवाला है। इस मन्त्र में सिद्धादि चक्र के विचार की अपेक्षा नहीं है और अरि-मित्रादि दोषों से यह दूषित नहीं होता (१४)। इस मन्त्र के ग्रहण करने में तिथि, नक्षत्र, राशि, कुलाकुल आदि चक्रों की गणना करने का नियम नहीं है और दश-संस्कार की भी अपेक्षा नहीं है। यह मन्त्र सर्वथा सिद्ध है, अतः इसके सम्बन्ध में किसी रूप के विचार की अपेक्षा न करे (१५)। अनेक जन्मों के अर्जित पुण्यों के फल से यदि सद्गुरु पा जाय, तो उसी गुरु के मुख से निकले हुए इस मन्त्र को प्राप्त करने से उसी क्षण से जन्म सफल हो जाता है। वह ब्रह्मोपासक जीव धर्मार्थ-काम-मोक्ष इस चतुर्वर्ग को हस्तगत कर इस लोक में और पर-लोक में आनन्द का भोग करता है (१६-१७)। ब्रह्म-मन्त्र-रूप महा-मणि

जिसके कान में पहुँचता है, वे ही धन्य हैं, कृतार्थ हैं, कृती हैं, धार्मिक हैं, सब तीर्थों में नहाये हुए हैं, सब यज्ञों में दीक्षित हैं, सब शास्त्रों में निपुण हैं और वे ही सब लोकों में प्रतिष्ठित हैं—ऐसा कहा जाता है (१८-१६)। हे शिवे ! जिन्हें ब्रह्म-मन्त्र प्राप्त हुआ है, उनके माता-पिता धन्य हैं, उनका कुल पवित्र है, उनके पितृ-गण सन्तुष्ट होकर देव-गण के सहित आनन्द का अनुभव करते हैं और वे पुलकित-शरीर से यह गाथा गाते रहते हैं कि "हमारे कुल में उत्पन्न पुत्र ने ब्रह्म-मन्त्र में दीक्षित होकर कुल को पवित्र कर दिया है, हम लोगों के लिए गया में पिण्ड-दान को और क्या आवश्यकता ? अथवा तीर्थ, तीर्थ-श्राद्ध और तीर्थ-तर्पण हो की क्या आवश्यकता ? अथवा हमारे लिए दान, जप, होम और अन्यान्य बहु-विध साधनों को ही क्या आवश्यकता ? हमारे इस सत्पुत्र ने सद्गुरु से ब्रह्म-मन्त्र की दीक्षा-ग्रहण का जो साधन किया है, उसी से हम अक्षय तृप्ति पा रहे हैं।" (२०-२२) हे जगद्-वन्द्ये ! मैं सत्य-सत्य कहता हूँ, सुनो। ब्रह्म-मन्त्र के सभी उपासकों के लिए किसी अन्य साधना की आवश्यकता नहीं है। इस ब्रह्म-मन्त्र के ग्रहण करने मात्र से देही ब्रह्म-मय हो जाता है। हे देवेशि ! जो ब्रह्म-भूत है, उसके लिए तीनों जगत् में क्या दुष्प्राप्य है ? सभी वस्तुएँ उसे सुलभ हो जाती हैं। ग्रह, वेताल, चेटक, पिशाच, गुह्यक, भूत, डाकिनी और मातृका आदि के समूह रुष्ट होकर उसका क्या कर सकते हैं ? वे ब्रह्मोपासक के दर्शन मात्र से पराङ्-मुख होकर भाग खड़े होते हैं (३-२५)। वह ब्रह्म-मन्त्र से रक्षित रहता है, वह ब्रह्म-तेज से अच्छी तरह आवृत रहता है, वह द्वितीय सूर्य के समान होता है। अतः ग्रहादि से उसे क्या भय होगा ? वह कभी भयभीत नहीं होता (२६)। हाथियों का समूह जिस प्रकार सिंह को देख डर कर भाग जाता है, उसी प्रकार उस साधक को देखकर पूर्वोक्त ग्रहादि भाग जाते हैं और जिस प्रकार पतङ्ग-गण अग्नि में नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार ग्रहादि उसके तेज से नष्ट हो जाते हैं (२७)। वह ब्रह्म-निष्ठ साधक सत्य-पूत, शुद्ध अन्तःकरणवाला और सब प्राणियों का हितकारी होता है ; पाप उसे कभी छू भी नहीं पाता। आत्म-घातो को छोड़ कर और कौन व्यक्ति ऐसे महात्मा का अनिष्ट करने की इच्छा करेगा (२८) ? दुष्ट-स्वभाव वाले जो पापात्मा व्यक्ति परब्रह्मोपासक का अनिष्ट करने को उद्यत होते हैं, वे अपना ही अनिष्ट करते हैं। परब्रह्मोपासक सत्-स्वरूप ब्रह्म से भिन्न नहीं है (२६)। हे देवि ! वह ब्रह्मोपासक सबका हित-कारी है, साधु है और सबका प्रिय करनेवाला है। ऐसे महात्मा का अनिष्ट कर कौन व्यक्ति शान्ति से रह सकता है (३०) ?

जो साधक '**मन्त्रार्थ**' और '**मन्त्रार्थ-चैतन्य**' को नहीं जानता, उसे सौ लाख जप करने पर भी मन्त्र की सिद्धि नहीं होती (३१)। हे प्रिये ! इसीलिए मैं इस मन्त्र का '**अर्थ**' और '**चैतन्य**' बताता हूँ, सुनो।

'**अ उ म**'—ये तीन वर्ण मिलकर 'ॐ' मन्त्र बनता है। अकार का अर्थ है जगत् की रक्षा करनेवाला, उकार का अर्थ है संहार करनेवाला, मकार का अर्थ है जगत् की सृष्टि करनेवाला। प्रणव का यही अर्थ कहा गया है (३२)। '**सत्**'—शब्द का अर्थ है सदा विद्यमान, '**चित्**'-शब्द का अर्थ है चैतन्य, '**एक**'-शब्द का अर्थ है अद्वैत। हे ईशानि ! वृहत् होने से '**ब्रह्म**' कहा जाता है। हे देवि ! सभी साधकों को अभीष्ट सिद्धि देनेवाला यह '**मन्त्रार्थ**' कहा गया है (३३-३४)।

हे परमेशानि ! मन्त्र का अधिष्ठातृ-देवता ही '**मन्त्र का चैतन्य**' है। मन्त्र के अधिष्ठातृ-देवता सम्बन्धी ज्ञान भक्तों को सिद्धि दिलाता है (३५)। हे देवेशि ! जो इस मन्त्र का अधिष्ठातृ-देवता है, वह समस्त पदार्थों में व्याप्त रहनेवाला है; वह सनातन, अतर्क्य, निराकार, वाणी से परे और निरञ्जन है (३६)।

हे देवि ! इस पूर्वोक्त मन्त्र को प्रणव से रहित कर '**ऐं**'—वाग्बीज-विद्या, '**ह्रीं**'—माया, '**श्रीं**'—लक्ष्मी को आदि में जोड़ने से क्रमशः विविध विद्याएँ, विविध मायाएँ और विविध प्रकार की सर्वतोमुखी लक्ष्मी-प्रदायक मन्त्र बनते है (३७)। मन्त्र देने की विधि यह है कि '**ऐं सच्चिदेकं ब्रह्म**' इस मन्त्र द्वारा विद्या प्रदान करे,

'ह्रीं सच्चिदेकं ब्रह्म' इस मन्त्र द्वारा माया और 'श्री सच्चिदेकं ब्रह्म' इस मन्त्र द्वारा लक्ष्मी प्रदान करे।

पूर्वोक्त मन्त्र के प्रत्येक पद में अथवा समस्त पद में प्रणव जोड़कर या प्रणव से रहित कर अथवा उक्त मन्त्र के दो-दो पदों में प्रणव जोड़कर या छोड़कर उच्चारण करने से अनेक प्रकार के मन्त्र बनते हैं। यथा—

१. प्रत्येक पद में प्रणव जोड़कर—'ॐ **सत्**, 'ॐ **चित्**, ॐ **एकं**, ॐ **ब्रह्म**'; प्रणव से रहित कर—**सत्, चित्, एकं, ब्रह्म**'।

२. समस्त पद में प्रणव जोड़कर—'ॐ **सच्चिदेकं ब्रह्म**', प्रणव से रहित कर—'सच्चिदेकं ब्रह्म।'

३. दो-दो पदों में प्रणव जोड़कर—'ॐ **सद् ब्रह्म**, ॐ **चिद् ब्रह्म**, ॐ **एकं ब्रह्म**, ॐ **सच्चित्**, ॐ **चिदेकम्**, प्रणव छोड़कर—'**सद् ब्रह्म, चिद् ब्रह्म, एकं ब्रह्म, सच्चिद्, चिदेकम्।**' (३८)

इस मन्त्र के ऋषि सदाशिव, छन्द अनुष्टुप्, देवता निर्गुण सर्वान्तर्यामी परम ब्रह्म और चतुर्वर्ग-फल-प्राप्ति के निमित्त विनियोग कहे गए हैं (३९)।

ऋष्यादि-न्यास—शिरसि सदाशिवाय ऋषये नमः। मुखे अनुष्टुप्-छन्दसे नमः। हृदि सर्वान्तर्यामि-निर्गुण-परम-ब्रह्मणे देवतायै नमः। धर्मार्थ-काम-मोक्षावाप्तये विनियोगः।

हे प्रिये! अङ्ग-न्यास, कर-न्यास कहता हूँ, सुनो (४०)। हे महेश्वरि! (पहले कर-न्यास में) ॐ **सच्चिद् ब्रह्म एकम्**, ॐ **सच्चिदेकं ब्रह्म**' इसी क्रम से पदोच्चारण करते हुए अंगुष्ठ, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका, कनिष्ठा —इन पाँच अंगुलियों में एवं दोनों कर-तलों, कर-पृष्ठों में क्रमशः '**नमः, स्वाहा, वषट्, हुं, वौषट्, फट्**' को क्रमशः अन्त में उच्चारण कर एकाग्र मन से न्यासोक्त विधि से कर-न्यास करे। इसी प्रकार हृदय से कर-पर्यन्त (अङ्ग-न्यास) यथा-विधि करे (४१-४३)।

हे पार्वति! तदनन्तर मूल-मन्त्र या प्रणव से प्राणायाम करे। दाएँ हाथ को मध्यमा-अनामिका अंगुलियों से बाएँ नासा-पुट को बन्द कर दाएँ नासा-पुट से वायु खींचते हुए आठ बार मूल-मन्त्र या प्रणव का जप करे (४४-४५)। फिर अँगूठे से दाईं नासा को बन्द कर कुम्भक (श्वास रोक) कर बत्तीस बार जप करे। तब दाईं नासा से धीरे-धीरे निःश्वास छोड़ते हुए सोलह बार मन्त्र-जप करे। बाद में इसी प्रकार बाएँ नासा-पुट से पूरक, कुम्भक, रेचक करे अर्थात् आठ बार मन्त्र-जप करते-करते बाएँ नासा-पुट से धीरे-धीरे वायु खींचे; फिर वायु रोककर बत्तीस बार जप करे (४६)। तब बाएँ नासा-पुट को छोड़कर उससे धीरे-धीरे वायु निकालते हुए सोलह बार मन्त्र जप करे। बाएँ नासा-पुट से भी इसी प्रकार पूरक, कुम्भक, रेचक करे (४७)। हे सुर-वन्दिते! पहले के समान पुनः दाईं नासा से पूरक, कुम्भक, रेचक करे। ब्रह्म-मन्त्र के साधन में प्राणायाम की विधि तुमसे कही गई (४८)। इसके बाद साधक के अभीष्ट को सिद्ध करनेवाला ध्यान करे (४९)। यथा—

हृदय-कमल-मध्ये निर्विशेषं निरीहम्, हरि-हर-विधि-वेद्यं योगिभिर्ध्यान-गम्यम्।
जनन-मरण-भीति-भ्रंशि सच्चित्-स्वरूपम्। सकल-भुवन-बीजं ब्रह्म-चैतन्यमीड़े॥

अर्थ : जो निर्विशेष है अर्थात् नाना प्रकार के भेदों से रहित है; जो निरीह अर्थात् चेष्टा-रहित है; जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर द्वारा ज्ञेय है; जो योगियों द्वारा ध्यान-गम्य है; जिसके द्वारा जन्म और मृत्यु का भय दूर होता है; जो नित्य और ज्ञान-स्वरूप है; जो समस्त भुवनों का बीज है—ऐसे चैतन्य-स्वरूप ब्रह्म को मैं हृदय-कमल के मध्य में ध्यान करता हूँ (५०)।

ब्रह्म-सायुज्य को प्राप्त करने के लिए परा भक्ति के साथ परम ब्रह्म का इसी प्रकार ध्यान कर मानस उपचारों से उनकी पूजा करे (५१)। मानस-पूजा में ईश्वर को भूत-तत्त्व अर्पित करे—पृथ्वी-तत्त्व को गन्ध, आकाश-तत्त्व को पुष्प, वायु-तत्त्व को धूप, तेजस्तत्त्व को दीप और जल-तत्त्व को नैवेद्य मानकर उस परमात्मा को प्रदान करे (५२)। फिर श्रेष्ठ साधक मन में पूर्वोक्त महा-मन्त्र (ॐ सच्चिदेकं ब्रह्म) का जप कर ब्रह्म को जप समर्पित कर बाह्य-पूजा आरम्भ करे (५३)।

गन्ध-पुष्पादि, वस्त्रालङ्कारादि एवं भक्ष्य-पेयादि जो सारी वस्तुएँ विद्यमान हों, उन सबको निम्न मन्त्र से संशोधित कर, दोनों आँखें बन्द कर बुद्धिमान् व्यक्ति सनातन ब्रह्म का ध्यान करता हुआ उन्हें परमात्मा को समर्पित करे (५४-५५)—

ब्रह्मार्पण ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्। ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्म-कर्म-समाधिना ॥

अर्थ : 'अर्पण' अर्थात् यज्ञ-पात्र ब्रह्म। 'हवि' अर्थात् हवनीय द्रव्य जो अर्पित करना है, वह भी ब्रह्म। जो आहुति देनेवाला अर्थात् अर्पण करनेवाला है, वह भी ब्रह्म। इस प्रकार जो ब्रह्म में चित्त को एकाग्र रूप से स्थापित करता है, वह ब्रह्म को ही प्राप्त होता है (५६)।

इसके बाद यथा-शक्ति मूलमन्त्र का जप कर दोनों आँखें बन्द कर उक्त 'ब्रह्मार्पण०' मन्त्र का उच्चारण कर ब्रह्म को जप समर्पित कर स्तव और कवच का पाठ करे (५७)।

हे महेशानि ! हे देवि ! परमात्मा ब्रह्म के स्तव को सुनो, जिसके सुनने से साधक ब्रह्म-सायुज्य को प्राप्त करता है (५८)—

ॐ नमस्ते सते सर्व-लोकाश्रयाय, नमस्ते चिते विश्व-रूपात्मकाय।
नमोऽद्वैत-तत्त्वाय मुक्ति-प्रदाय, नमो ब्रह्मणे व्यापिने निर्गुणाय ॥ १ ॥
त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यम्, त्वमेकं जगत्-कारणं विश्व-रूपम्।
त्वमेकं जगत्-कर्तृ-पातृ-प्रहर्तृ, त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम् ॥ २ ॥
भयानां भयं भीषणं भीषणानाम्, गतिः प्राणिनां पावनं पावनानाम्।
महोच्चैः पदानां नियन्तृ त्वमेकम्, परेषां परं रक्षकं रक्षकानाम् ॥ ३ ॥
परेश प्रभो सर्व-रूपाविनाशिन्, अनिर्देश्य सर्वेन्द्रियागम्य सत्य !
अचिन्त्याक्षर व्यापकाव्यक्त-तत्व, जगद्-भासकाधीश पायादपायात् ॥ ४ ॥
तदेकं स्मरामस्तदेकं जपामः, तदेकं जगत्-साक्षि-रूपं नमामः।
सदेकं निधानं निरालम्बमीशम्, भवाम्बोधि-पोतं शरण्यं व्रजामः ॥ ५ ॥

पञ्च-रत्नमिदं स्तोत्रं ब्रह्मणः परमात्मनः। यः पठेत् प्रयतो भूत्वा ब्रह्म-सायुज्यमाप्नुयात् ॥ ६ ॥
प्रदोषेऽदः पठेन्नित्यं सोमवारे विशेषतः। श्रावयेद् बोधयेत् प्राज्ञो ब्रह्म-निष्ठान् स्व-बान्धवान् ॥७॥

इति ते कथितं देवि ! पञ्च-रत्नं महेशितुः।

अर्थात् तुम नित्य हो, तुम सब लोकों के आश्रय हो, तुम्हें नमस्कार करता हूँ। तुम ज्ञान-स्वरूप हो, विश्व की आत्मा-स्वरूप हो, अद्वैत तत्त्व, मुक्ति-दायक तुम्हें नमस्कार है। तुम सर्व-व्यापी निर्गुण ब्रह्म हो, तुम्हें

नमस्कार (१)। तुम एकमात्र शरण्य अर्थात् आश्रय हो, तुम अद्वितीय वरणीय हो, तुम जगत् के एकमात्र कारण हो, तुम विश्व-रूप हो, एक-मात्र तुम्हीं जगत् के सृष्टि-कर्ता, पालन-कर्ता और अन्त में संहार-कर्त्ता हो, तुम्हीं एक-मात्र परम पुरुष हो, निश्चल और विविध कल्पनाओं से रहित हो (२)। तुम भय के भय हो, तुम भयानक के भयानक हो, तुम प्राणियों के एकमात्र गति हो, पावित्र्य-जनक सबके पावित्र्य-जनक हो। तुम उच्च पद पर अधिष्ठित ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर आदि के नियामक हो, तुम सभी श्रेष्ठ पदार्थों से श्रेष्ठ हो और रक्षकों के रक्षक हो (३)। हे परेश (ब्रह्मादि देवों के स्वामी), हे प्रभो ! तुम सर्व-रूप, अविनाशी, अनिर्देश्य और सभी इन्द्रियों से अगम्य हो—किसी भी इन्द्रिय द्वारा गोचर नहीं हो। हे सत्य-स्वरूप, हे अचिन्त्य, हे अक्षर, हे व्यापक, हे अव्यक्त तत्व, हे जगद्-भासकाधीश (जगद्-भासक चन्द्र-सूर्यादि के अधीश्वर) अथवा हे जगद्-भासक, हे अधीश, तुम हम लोगों को 'अपाय' अर्थात् भक्ति-विश्लेष और ज्ञान-विश्लेष होने से बचाओ (४)। उसी एक-मात्र ब्रह्म को हम स्मरण करते हैं, उसी अद्वितीय ब्रह्म का हम जप करते हैं, उसी एक जगत्-साक्षी-स्वरूप ब्रह्म को हम प्रणाम करते है। वही तुम सत् हो, जगत् के एक-मात्र निधान अर्थात् आश्रय-भूत हो, स्वयं निरालम्ब अर्थात् आश्रय-रहित हो, वही तुम ईश्वर हो, भव-सागर के जहाज-स्वरूप हो, हम तुम्हारा आश्रय ग्रहण करते हैं (५)।

परमात्मा ब्रह्म के '**पञ्च-रत्न**' नामक इस स्तोत्र को जो संयत होकर पाठ करता है, वह ब्रह्म-सायुज्य को प्राप्त करता है (६)। प्रतिदिन प्रदोष-काल में इस '**पञ्च-रत्न**' स्तोत्र का पाठ करे। विशेष कर सोमवार को ज्ञानी व्यक्ति अपने ब्रह्म-निष्ठ बान्धवों को इस स्तोत्र को सुनाये और समझा दे (७)। हे देवि ! महेश्वर के '**पञ्चरत्न स्तोत्र**' नामक स्तोत्र को तुमसे मैंने कहा है (५६-६५)।

हे चार्वङ्गि ! उनके '**जगन्मङ्गल**' नामक कवच को सुनो। इस कवच का पाठ करने एवं धारण करने से निश्चय ही ब्रह्म-ज्ञानी होता है (६६)—

कवचं शृणु चार्वङ्गि ! जगन्मङ्गल-नामकम्। पठनाद् धारणाद् यस्य ब्रह्मज्ञो जायते ध्रुवम् ॥१
परमात्मा शिरः पातु हृदयं परमेश्वरः। कण्ठं पातु जगत्-पाता वदनं सर्व-दृग्-विभुः ॥२
करौ मे पातु विश्वात्मा पादौ रक्षतु चिन्मयः। सर्वाङ्गं सर्वदा पातु परं ब्रह्म सनातनम् ॥३
श्रीजगन्मङ्गलस्यास्य कवचस्य सदाशिवः। ऋषिश्छन्दोऽनुष्टुविति परम-ब्रह्म देवता।
चतुर्वर्ग-फलावाप्त्यै विनियोगः प्रकीर्त्तितः ॥४॥
यः पठेद् ब्रह्म-कवच ऋषि-न्यास पुरःसरम्। स ब्रह्म-ज्ञानमासाद्य साक्षाद् ब्रह्म-मयो भवेत् ॥५
भूर्जे विलिख्य गुटिकां स्वर्णस्थां धारयेद् यदि। कण्ठे दक्षिणे बाहौ सर्व-सिद्धोश्वरो भवेत् ॥६
इत्येतत् परम-ब्रह्म-कवचं ते प्रकाशितम्। दद्यात् प्रियाय शिष्याय गुरु-भक्ताय धीमते ॥७

अर्थात् परमात्मा हमारे शिरोदेश की रक्षा करें, परमेश्वर हृदय की रक्षा करें, जगत्-पाता कण्ठ की रक्षा करें, सर्व-दर्शी विभु बदन को रक्षा करें (१)। विश्वात्मा हमारे दोनों हाथों की रक्षा करें, चिन्मय हमारे दोनों पैरों की रक्षा करें, सनातन परब्रह्म सदैव हमारे सर्वाङ्ग की रक्षा करें (२)। इस जगन्मङ्गल कवच के ऋषि सदा-शिव, छन्द अनुष्टुप्, देवता परमब्रह्म, फल चतुर्वर्ग-प्राप्ति के निमित्त विनियोग है (३)। जो ऋषि-न्यास कर इस ब्रह्म-कवच का पाठ करता है, वह ब्रह्म-ज्ञान पाकर साक्षात् ब्रह्म-मय होता है (४)। जो इस कवच को भोज-पत्र पर लिखकर स्वर्ण-गुटिका में रखकर कण्ठ या दाईं भुजा में धारण करता है, वह सब प्रकार की सिद्धियों का स्वामी होता है (६)। तुमसे मैंने इस परम ब्रह्म का कवच प्रकट किया। इसे गुरु-भक्त, बुद्धिमान्, प्रिय शिष्य को

प्रदान करे (७)।

साधक-श्रेष्ठ व्यक्ति स्तोत्र-कवच का पाठ कर (बाद में उक्त मन्त्र के जप-पूर्वक) प्रणाम करे। यथा—

ॐ नमस्ते परमं ब्रह्म नमस्ते परमात्मने। निर्गुणाय नमस्तुभ्यं सद्-रूपाय नमो नमः ॥

अर्थात् तुम परम ब्रह्म हो, तुम्हें नमस्कार। तुम परमात्मा हो, तुम्हें नमस्कार। तुम गुणातीत हो, तुम्हें नमस्कार। तुम सत्-स्वरूप हो, तुम्हें बारम्बार नमस्कार (६७-७४)।

परब्रह्म की आराधना में कायिक, वाचिक या मानसिक—जैसी इच्छा हो, तीनों नमस्कार किए जा सकते हैं। परन्तु जिससे अन्तःकरण शुद्ध हो, वही विधि करनी चाहिए (७५)। ज्ञानी व्यक्ति इसी प्रकार ब्रह्म की पूजा कर आत्मीय स्वजनों के साथ महा-प्रसाद ग्रहण करे (७६)। परब्रह्म की पूजा के समय न आवाहन होता है, न विसर्जन। सभी समय, सभी स्थानों में ब्रह्म की साधना हो सकती है। स्नान किए हो या बिना नहाए, भोजन किए हो या भूखा हो, जिस किसी अवस्था में या जो भी समय हो, विशुद्ध-चित्त होकर परमात्मा की पूजा करे (७७-७८)। इस ब्रह्म-मन्त्र द्वारा जो कोई भक्ष्य, पेयादि वस्तु परब्रह्म को समर्पित की जाती है, वह अति पवित्र-कारी होती है (७९)। गङ्गा-जल या शालग्राम शिला आदि में अर्पित वस्तु को स्पर्श-दोष लग सकता है किन्तु परब्रह्म को अर्पित वस्तु को स्पर्श-दोष नहीं लगता (८०)। जो कोई भी द्रव्य, पका हो या कच्चा, उक्त मन्त्र द्वारा उसे ब्रह्मसात् कर साधक व्यक्ति स्वजनों के साथ भोजन कर सकता है (८१)। ब्रह्म को निवेदित वस्तु के खाने में ब्राह्मणादि वर्ण का विचार नहीं होता। उच्छिष्टादि का भी विचार नहीं होता। इसमें समय-असमय, पवित्र-अपवित्र की व्यवस्था नहीं है (८२)। जिस समय, जिस स्थान में, जिसके द्वारा ब्रह्म को अर्पित नैवेद्य प्राप्त हो, उसका विचार न कर भोजन करे (८३)। ब्रह्मसात् किया हुआ अन्न यदि चाण्डाल लाये, या कुत्ते के मुख से लाया गया हो, तो भी वह पवित्र है; यह अन्न देवताओं को भी दुर्लभ है (८४)। हे सुर-वन्दिते! मनुष्यों के लिए इसकी दुर्लभता की क्या बात कही जाय (८५)। यदि कोई व्यक्ति महा-पाप से युक्त हो, या किसी अन्य पातक से युक्त हो, वह यदि एक बार मात्र प्रसाद ग्रहण कर ले, तो वह सभी पापों से मुक्त हो जायगा, इसमें कोई सन्देह नहीं (८६)। साढ़े तीन कोटि तीर्थों में स्नान और दान करने से जो फल होता है, वही फल ब्रह्म को अर्पित वस्तु का सेवन करने से मनुष्यों को मिलता है (८७)। मनुष्य लोग अश्वमेधादि यज्ञ कर जो फल भोगते हैं, उससे कोटि गुणा अधिक फल ब्रह्म को निवेदित वस्तु के भक्षण से मिलता है (८८)। यदि सहस्र कोटि जिह्वा हों, सौ कोटि मुख हों, तो भी महा-प्रसाद के माहात्म्य का वर्णन करने में समर्थ नहीं हो सकता (८९)। जिस किसी भी स्थान में स्थित हो, ब्रह्म को अर्पित महा-प्रसाद के मिलने पर, उसे ग्रहण करने से चाण्डाल-जाति के लोग भी ब्रह्म का सायुज्य प्राप्त करते हैं (९०)। यदि नीच जाति के लोगों का अन्न है, किन्तु यदि वह ब्रह्म को समर्पित हुआ है, तो वेदान्त-पारदर्शी ब्राह्मण भी उसे ग्रहण कर सकता है (९१)। परम ब्रह्म का प्रसाद ग्रहण करते समय जाति-भेद का विचार न करे। जो इस महा-प्रसाद को (नीच जाति के स्पर्श से) अशुद्ध समझता है, वह महा-पापी होता है (९२)। हे प्रिये! भले ही सौ पाप करे, भले ब्रह्म-हत्या करे किन्तु ब्रह्म को अर्पित अन्न की अवहेलना न करे (९३)। हे भद्रे! जो मूर्ख लोग इस महा-मन्त्र द्वारा संस्कृत अन्न-जल आदि का त्याग करते हैं, उनके पितृ-गण का अधःपतन होता है (९४)। और स्वयं वे प्रलय-काल तक अन्ध-तामिस्र नामक नरक में गिर कर रहते हैं। जिन्हें ब्रह्म को निवेदित अन्न से द्वेष होता है, उनका कुछ भी निस्तार नहीं होता (९५)।

जो महा-मन्त्र का साधन करते हैं, उनके सभी अपुण्य कर्म पुण्य कर्मों में बदल जाते हैं; सुषुप्ति भी सुकर्म-स्वरूप होती है और स्वेच्छाचार भी विहित कर्म माना जाता है (९६)। जो व्यक्ति ब्रह्म-निष्ठ ज्ञानी है, उसे वैदिकाचार से क्या प्रयोजन अथवा तान्त्रिक अनुष्ठान से क्या प्रयोजन, उसका स्वेच्छाचार ही विधि-स्वरूप

कहा जाता है (९७)। ब्रह्म-निष्ठ व्यक्ति जो समस्त वैध कर्मानुष्ठान करते हैं, उनसे उन्हें कोई फल नहीं लगता और वे जिन वैध कर्मों का अनुष्ठान नहीं करते, उससे भी उन्हें कोई पाप नही लगता। ब्रह्म-मन्त्र के साधन के कारण उन्हें कोई विघ्न या दोष नहीं होता (९८)।

हे महेश्वरि! इस धर्म का अनुष्ठान करते समय सत्यवादी, जितेन्द्रिय, परोपकार-परायण, निर्विकार-चित्त और सदाशय रहना होता है (९९)। ब्रह्म-निष्ठ व्यक्ति मात्सर्य-विहीन, दम्भ-रहित, दयालु, विशुद्ध-हृदय, माता-पिता का प्रिय करनेवाला और माता-पिता की सेवा में तत्पर रहता है (१००)। वह सदा ब्रह्म-प्रतिपादक बातों को सुनता है, ब्रह्म का चिन्तन करता है और सदा ब्रह्म का अनुसन्धान या तत्त्व की जिज्ञासा करता है। वह सदा संयत-चित्त और दृढ़-बुद्धि रहता है, वह सदा **'ब्रह्म-साक्षात्'** की भावना करता है (१०१)। वह कभी मिथ्या बात नहीं करता, दूसरों का अनिष्ट नहीं करता। ब्रह्म-मन्त्रोपासक व्यक्ति पर-स्त्री-गमन नहीं करता (१०२)। ब्रह्म-निष्ठ व्यक्ति सभी कर्मों के आरम्भ में **'तत्-सत्'** इन शब्दों का उच्चारण करता है। हे देवि! ब्रह्म-निष्ठ व्यक्ति खाने-पीने आदि सभी कार्यों में **'ब्रह्मार्पणमस्तु'** इस वाक्य को कहे। जिस उपाय से सभी मनुष्यों की लोक-यात्रा का निर्वाह उत्तम रूप से हो, वही उपाय ब्रह्मज्ञ व्यक्ति करे। यही सनातन धर्म है (१०३-४)।

हे शाम्भवि! अब ब्रह्म-मन्त्र की सन्ध्योपासना-विधि बताता हूँ। इस सन्ध्या-वन्दना को करके ब्रह्म-निष्ठ मनुष्य लोग पृथिवी पर ब्रह्म-रूप सम्पत्ति पा सकते हैं (१०५)। हे देवि! साधक-श्रेष्ठ सुधी व्यक्ति प्रातःकाल, मध्याह्न-काल और सन्ध्या-काल में उपयुक्त स्थान पर यथोचित आसन पर पूर्ववत् बैठकर परम ब्रह्म का ध्यान कर १०८ बार गायत्री का जप करे। फिर यथा-विधि (**'ब्रह्मार्पणमस्तु'** यह कहकर) जप समर्पित कर पूर्ववत् प्रणाम करे (१०६-७)। यह मैंने तुमसे ब्रह्म-मन्त्र-विषयक सन्ध्या-विधि कही। इस सन्ध्या का अनुष्ठान करने से साधक व्यक्ति का अन्तःकरण शुद्ध होता है (१०८)।

हे चार्वङ्गि! अब सर्व-पाप-नाशिनी 'गायत्री' को बताता हूँ, सुनो—

परमेश्वराय विद्महे पर-तत्त्वाय धीमहि तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात्।

इस ब्रह्म-गायत्री से धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष इस चतुर्वर्ग का फल पाया जा सकता है। पूजा, याग, स्नान, पान, भोजन आदि जो-जो कर्म करने हों, उन सबको इसी ब्रह्म-मन्त्र द्वारा सिद्ध करे। (१०९-११२)

ब्राह्म मुहूर्त्त में उठकर ब्रह्म-मन्त्र देनेवाले गुरु को प्रणाम करने के बाद परम ब्रह्म का ध्यान कर यथाशक्ति मन्त्र का स्मरण करे। फिर पूर्ववत् ब्रह्म को नमस्कार करे। ब्रह्मोपासकों के लिए यही प्रातःकृत्य कहा गया है (११३)। ३२ हजार जप से इस मन्त्र का पुरश्चरण होता है। जप का दशांश होम, होम का दशांश तर्पण करे (११४)। तर्पण का दशमांश अभिषेक करे। हे सुन्दरि! मन्त्र-साधक व्यक्ति पुरश्चरण-कर्म में अभिषेक के दशमांश ब्राह्मणों को भोजन कराए (११५)। ब्रह्म-मन्त्र का पुरश्चरण करते समय भक्ष्याभक्ष्य विचार नहीं है, त्याज्यात्याज्य का विचार नहीं है, काल-शुद्धि का भी नियम नहीं है, स्थान का भी निरूपण नहीं है (११६)। बिना खाए हो या खाए हुए हो। स्नान किए हो या बिना स्नान के हो, यथेच्छानुसार ही इस परम मन्त्र की साधना करे (११७)। इस ब्रह्म-साधन के सम्बन्ध में क्लेश नहीं है, परिश्रम नहीं है, स्तव या कवच का पाठ नहीं करना होता, न्यास या मुद्रा-प्रदर्शन नहीं करना होता। हे वरानने! अन्य मन्त्र में जिस प्रकार हृदय में सेतु-चिन्ता करनी होती है, उस प्रकार सेतु-चिन्ता इसमें आवश्यक नहीं है (११८)। इस ब्रह्म-मन्त्र के साधन के सम्बन्ध में चौर-गणेशादि के मन्त्र का जप नहीं करना होता, कुल्लुका का भी विन्यास नहीं करना होता। इन समस्त अनुष्ठानों को न करने पर भी अल्पकाल में निश्चय ही परम ब्रह्म का साक्षात्कार-लाभ होता है (११९)।

इस महा-मन्त्र के साधन के सम्बन्ध में 'मानसिक सङ्कल्प' कहा जाता है। इसमें भाव-शुद्धि बड़ी आवश्यक है (१२०)। हे देवि ! ब्रह्म-साधक सभी को ब्रह्म-मय की भावना करे। इस ब्रह्म-साधना में त्रुटि होने से अङ्ग-वैगुण्य नहीं होता और प्रत्यवाय भी नहीं होते। इस महा-मन्त्र के साधन में कोई स्थल अंग-हीन होने पर भी वह निश्चय ही सांग हो जाता है (१२१)। इस अति दुस्तर, तपस्या-हीन, घोर पाप-मय कलि-युग में ब्रह्म-मन्त्र का साधन ही एकमात्र निस्तार का उपाय है (१२२)। हे महेश्वरि ! विविध तन्त्रों और विविध आगमादि शास्त्र में विभिन्न प्रकार के साधन के विषय कहे गए हैं। परन्तु कलि-युग में दुर्बल जीव के लिए वह सब असाध्य है (१२३)। हे प्रिये ! कलि-युग के मनुष्य लोग अल्पायु होते हैं, वे बड़े अनुष्ठान नहीं कर पाते। अन्न में ही उनके प्राण रहते हैं। वे लोभी, धन कमाने में व्याकुल और सदा चंचल चित्त वाले होते हैं (१२४)। समाधि में उनकी बुद्धि स्थिर रहती नहीं। वे योग-जन्य कष्ट सहन करने में असमर्थ होते हैं, अतः उनके हित एवं मोक्ष के लिए मैंने इस ब्रह्मोपासना का पथ प्रकट किया है (१२५)।

हे देवि ! मैं सत्य-सत्य कहता हूँ, कलि-युग में ब्रह्म-दीक्षा के सिवा सुख और मुक्ति के लिए दूसरा कोई उपाय नहीं है (१२६)। सब तन्त्रों में यही विधि है कि प्रातःकाल प्रातःकृत्य सम्पन्न कर त्रि-काल सन्ध्या करे और मध्याह्न में पूजा करे। हे शिव ! परम ब्रह्म की उपासना में साधक की इच्छा ही विधि-स्वरूप मानी जाती है (१२७)। ब्रह्म-साधन में शास्त्रीय सभी विधियाँ दासी-स्वरूप हो जाती हैं, सारे निषेध भी कुछ प्रभाव नहीं डाल पाते। स्वेच्छानुरूप आचरण द्वारा ही इष्ट-सिद्धि होती है। इस प्रकार के ब्रह्म-साधक को छोड़कर अन्य किसका सहारा लिया जा सकता है (१२८) ?

स्थिर-चित्त, प्रशान्त, ब्रह्म-ज्ञानी गुरु को पाते ही उनके चरण-कमलों को पकड़कर भक्ति-भाव के साथ प्रार्थना करे कि—

करुणामय ! दीनेश ! तवाहं शरणं गतः। त्वत्-पदाम्भोरुहच्छायां देहि मूर्ध्नि यशोधन ॥

अर्थात् हे करुणामय ! हे दीन लोगों के ईश्वर ! मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ। हे यशोधन ! मेरे मस्तक पर अपने चरण-कमलों की छाया प्रदान करें (१२९-३०)।

यह प्रार्थना कर शिष्य गुरु को यथा-शक्ति पूजा करे। फिर गुरु के सामने हाथ जोड़कर चुप होकर बैठे (१३१)। तब गुरु यथा-विधि शिष्य के लक्षणों की परीक्षा कर सत् शिष्य को बुलाकर कृपा-पूर्ण हृदय से महा-मन्त्र प्रदान करें (१३२)। फिर वे ज्ञानी गुरु पूर्व या उत्तर-मुख होकर आसन पर बैठकर शिष्य को अपनी बाईं ओर बैठाकर करुणा-पूर्ण हृदय से उसे देखें (१३३)। तदनन्तर साधक को इष्ट-सिद्धि के लिए ऋषि-न्यास कर शिष्य के मस्तक पर एक सौ आठ बार मन्त्र का जप करें (१३४)। फिर करुणानिधि सद्गुरु ब्राह्मण के दाएँ कान में, अन्य जातियों के बाएँ कान में सात बार मन्त्र सुनायें (१३५)। हे कालिके ! यह तुमसे ब्रह्म-मन्त्र के उपदेश की विधि मैंने कही। इसमें पूजादि की अपेक्षा नहीं है। इसमें केवल मानसिक सङ्कल्प करना होता है (१३६) तब शिष्य गुरु के चरण-कमलों में दण्डवत् गिरे और गुरु उसे स्नेहपूर्वक निम्न मन्त्र पढ़ते हुए उठावें—

उत्तिष्ठ वत्स ! मुक्तोऽसि ब्रह्म-ज्ञान-परो भव। जितेन्द्रियः सत्य-वादी बलारोग्यं सदास्तु ते ॥

अर्थात् हे पुत्र, उठो। तुम मुक्त हो, तुम ब्रह्म-ज्ञान-परायण बनो। तुम सत्य-वादी और जितेन्द्रिय रहो। बल और आरोग्य सदा तुम्हारे रहें (१३७)।

इस पर साधक-श्रेष्ठ उठकर गुरु को यथाशक्ति दक्षिणा-स्वरूप धन या फल प्रदान करे। फिर गुरु का आज्ञाकारी होकर देवता के समान भू-मण्डल पर विचरण करे (१३८-३९)। जो ब्रह्म-मन्त्र ग्रहण करता है, उसकी

आत्मा मन्त्र ग्रहण करने मात्र से ब्रह्म-मय हो जाती है। हे देवि ! जो ब्रह्म-स्वरूप हो जाता है, उसे अन्य बहुत से साधनों को क्या आवश्यकता ? हे प्रिये ! यह मैंने तुमसे संक्षेप में ब्रह्म-दीक्षा कही (१४०)।

जिस समय गुरु की दया हो, उसी समय ब्रह्म-मन्त्र की दीक्षा ग्रहण करे (१४१)। शाक्त हो या शैव हो, वैष्णव हो या सौर हो अथवा गाणपत्य हो, चाहे जिस मन्त्र का उपासक हो, ब्राह्मण हो या अन्य किसी जाति का हो, सभी ब्रह्म-मन्त्र के अधिकारी हैं (१४२ । हे देवि ! मैं इसी मन्त्र के प्रसाद से मृत्युञ्जय, देवदेव, जगद्-गुरु, स्वेच्छाचारो और निर्विकल्प होकर रहता हूँ (१४३)। पूर्वकाल में ब्रह्मा और भृगु आदि ब्रह्मर्षि-गण, इन्द्र आदि देव-गण और नारद आदि देवर्षि-गण ने मुझसे इसी ब्रह्म-मन्त्र को प्राप्त कर उपासना की है (१४४)। हे प्रिये ! नारद के मुख से व्यासादि मुनि-गण और उनसे जनकादि राजर्षि-गण ने इस महा-मन्त्र को प्राप्त कर परमात्मा की प्रसन्नता से ब्रह्म-स्वरूप का लाभ किया है (१४५)। हे महेश्वरि ! ब्रह्म-मन्त्र में किसो विषय का विचार नहीं है। गुरु बिना विचार किए शिष्य को अपना मन्त्र दे सकता है (१४६)। पिता पुत्र को, भाई भाई को, पति स्त्री को, मामा भांजे को और नाना नाती को दीक्षित कर सकता है (१४७)। अपना मन्त्र देने में जो दोष कहा गया है और पिता आदि की दोक्षा में जो दोष उल्लिखित है, वह सब दोष इस महा-सिद्ध ब्रह्म-मन्त्र में घटित नहीं होते (१४८)। ब्रह्म-ज्ञानी गुरु के मुख से जिस किसो विधान से ब्रह्म-मन्त्र को सुनकर मनुष्य ब्रह्म-भूत और पवित्र हो जाता है, जिससे वह पुण्य-पाप में लिप्त नहीं होता (१४९)। ब्राह्मण या अन्य जाति के जो लोग ब्रह्म-मन्त्र को उपासना करते हैं, वे सब अपने-अपने वर्ण के लोगों में श्रेष्ठ, पूज्य और विशेष रूप से मान्य होते हैं (१५०)। ब्रह्मोपासक ब्राह्मण-गण साक्षात् यति-स्वरूप होते हैं और अन्य जाति के लोग ब्राह्मण के समान होते हैं। इस प्रकार ब्रह्म-मन्त्र में दीक्षित ब्रह्मज्ञ व्यक्ति की पूजा सभो को करना कर्तव्य है (१५१)। जो ब्रह्मज्ञ व्यक्ति को अवमानना करते हैं, वे ब्रह्म-घातक होते हैं और जब तक सूर्य और तारे हैं तब तक वे घोर नरक में रहते हैं (१५२)। स्त्री-हत्या करने से जो पाप होता है, भ्रूण-हत्या से जो पातक लगता है, उससे कोटि गुना अधिक पाप ब्रह्मोपासक की निन्दा करने से होता है (१५३)। ब्रह्म-मन्त्र में उपदिष्ट होकर लोग जिस प्रकार सब पापों से मुक्त हो ब्रह्म-सायुज्य को पाते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे साधन द्वारा भी होता है (१५४)।

●⁂●

चौथा उल्लास : प्रकृति-साधना का उपक्रम

इसके बाद भगवती ने परब्रह्म को उपासना का विवरण सुनकर परमानन्द से युक्त होकर शङ्कर से जिज्ञासा की (१)। हे नाथ ! आपने ब्रह्मोपासना का जो विषय कहा है, वह सब लोगों को प्रिय है और साक्षात् ब्रह्म-पद का देनेवाला है (२)। इस ब्रह्म-साधन से तेज, बुद्धि, बल और ऐश्वर्य की वृद्धि होतो है और सभो सुखों का साधन है। हे जगदीश्वर ! मैं तुम्हारे वचनामृत से बहुत सन्तुष्ट हुई हूँ (३)। हे दया-सागर ! आपने कहा है कि ब्रह्म-साधन द्वारा जिस प्रकार ब्रह्म का सायुज्य मिलता है, उसा प्रकार मेरी साधना द्वारा भो ब्रह्म का सायुज्य पाया जा सकता है (४)। हे प्रभो ! जो आपने बताया है, जिसके द्वारा ब्रह्म का सायुज्य मिलता है, उसो प्रकार को मेरी साधना मैं जानना चाहतो हूँ (५)। मेरी साधना को विधि किस प्रकार की है और किस

प्रकार के पथ का अवलम्बन करना होगा या साधन करना होगा, उसका मन्त्र क्या है, अथवा ध्यान-पूजा आदि क्या है (६) ? हे देव-देव ! आप यह सब विशेष रूप से और सम्पूर्ण रूप में आद्योपान्त बताइए। इससे मेरी प्रसन्नता होगी और लोगों का हित होगा। हे शम्भो ! आपको छोड़कर कौन व्यक्ति संसार-रूपी व्याधि का निवारण करने में समर्थ होगा ? आप ही सद्-वैद्य और उपदेष्टा हैं (७)।

पार्वती-पति देव-देव महा-देव ने पार्वती के ये वचन सुनकर प्रीति-पूर्वक कहा (८)। श्री सदाशिव ने कहा कि—हे महा-भागे ! हे देवि ! मनुष्य लोग तुम्हारी साधना द्वारा ब्रह्म-सायुज्य पा सकें, इसके लिए मैं तुम्हारी आराधना का विषय कहता हूँ, सुनो (९)।

तुम साक्षात् परम ब्रह्म की परमा प्रकृति अर्थात् शक्ति हो। यह सारा जगत् तुम्हीं से उत्पन्न हुआ है। हे शिवे ! तुम सारे जगत् की जननी हो (१०)। हे भद्रे ! महत् तत्त्व से परमाणु तक और स्थूल सूक्ष्म सारा स्थावर-जङ्गम-स्वरूप जगत् तुम्हारे ही द्वारा उत्पन्न हुआ है। यह सारा जगत् तुम्हारे ही अधीन है (११)। तुम सबकी आद्या अर्थात् आदि-भूता हो। सारी विद्याएँ और हम सब तुम्हीं से उत्पन्न हुए हैं। सारे जगत् के सभी विषयों को तुम जानती हो। तुम्हें कोई नहीं जान सकता (१२)। तुम काली हो, तुम तारिणी हो, तुम दुर्गा हो, तुम षोडशी हो, तुम भुवनेश्वरी हो, तुम धूमावती हो, तुम बगला हो, तुम भैरवी हो, तुम छिन्न-मस्ता हो (१३)। तुम अन्नपूर्णा हो, तुम वाग्-देवी हो, तुम कमलालया लक्ष्मी हो, तुम सर्व-शक्ति-स्वरूपा हो, तुम सर्व-देव-मयी हो (१४)। तुम सूक्ष्मा हो, तुम स्थूला हो, तुम व्यक्त-स्वरूपा हो, तुम अव्यक्त-स्वरूपा हो, तुम निराकारा होकर भी साकारा हो। तुम्हें कोई भी नहीं जान सकता (१५)। तुम उपासकों के कार्य के लिए, जगत् के कल्याण के लिए और दानवादि के संहार के लिए समय-समय पर विविध प्रकार की देह धारण करती हो (१६)। तुम विश्व-रक्षा के लिए कभी चतुर्भुजा, कभी द्विभुजा, कभी षड्-भुजा, कभी अष्ट-भुजा होकर विविध प्रकार के अस्त्र-शस्त्र धारण करती हो (१७)। सभी तन्त्रों में उन्हीं विविध रूप-भेदों के विविध प्रकार के मन्त्र और विविध प्रकार के यन्त्रादि और विविध साधन बताए गए हैं।

पशु, दिव्य और वीर—ये तीन प्रकार के भाव कहे गए हैं (१८)। कलियुग में पशु-भाव नहीं है, दिव्य भाव भी दुर्लभ है। कलियुग में वीर-साधन ही प्रत्यक्ष फल-दायक है (१९)। हे देवि ! कलियुग में कुलाचार के बिना सिद्धि नहीं हो सकती। अतएव सब प्रयत्न करके कुल-साधन करे (२०)। हे देवि ! कुलाचार द्वारा ब्रह्म-ज्ञान का जन्म होता है। जिस मनुष्य को ब्रह्म-ज्ञान होता है, वही जीवन्मुक्त है, इसमें सन्देह नहीं (२१)। शास्त्रों के ज्ञान द्वारा सभी वस्तुएँ पवित्र ज्ञात होती हैं और उसी ज्ञान द्वारा सभी वस्तुएँ अपवित्र प्रतीत होती हैं किन्तु जब ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त होता है, तब कोई वस्तु पवित्र या अपवित्र नहीं रहती (२२)। जो यह जानता है कि परब्रह्म सर्व-व्यापी है, उसके लिए कौन वस्तु अपवित्र है ? कारण वह सारे जगत् को 'ब्रह्म' नाम से ही जानता है (२३)। हे देवेशि ! तुम सर्व-स्वरूपिणी हो और संसार-चक्र द्वारा क्रीड़ा करनेवाली हो तथा सबकी परम जननी हो। तुम्हारे परितुष्ट होने पर सभी का परितोष होता है (२४)। सृष्टि के आदि में तुम्हीं 'तमो' अर्थात् प्रकृति-रूप से विद्यमान रहती हो। तुम्हारा वही रूप वाणी और मन से अगोचर है। परब्रह्म की सिसृक्षा-सृष्टि करने की इच्छा से तुम्हारे द्वारा सारा जगत् उत्पन्न होता है (२५)। महत् तत्त्व से महा-भूत पृथिवी तक सारा जगत् तुम्हीं से सृष्ट होता है। सब कारणों का कारण हो, वह ब्रह्म निमित्त मात्र है (२६)। वह सत्-स्वरूप और सर्व-व्यापी है। सारे जगत् को वेष्टन कर अवस्थित रहता है, सभी वस्तुओं में वह सदा एक-रूप, परिणाम-रहित, चिन्मात्र और निर्लिप्त है (२७)। वह कोई कार्य नहीं करता, वह भक्षण करता नहीं, गमन करता नहीं।

किसी वस्त-विशेष में उसका अवस्थान नहीं है। वह निष्क्रिय है। वह सत्य-स्वरूप है। वह आदि-अन्त से रहित है। वह वाणी और मन से अगोचर है (२८)।

तम परात्परा महा-योगिनी हो। तुम उस (ब्रह्म) की इच्छा मात्र का अवलम्बन कर इस चराचर जगत् की सृष्टि करती हो और इस जगत् का पालन करती हो तथा सर्वान्त में सारे जगत् का संहार करती हो (२९)।

जगत् का संहारक महा-काल है, यह तुम्हारा ही एक रूप है। यही महा-काल महा-संहार के समय सब का ग्रास करता है (३०)। सब प्राणियों का 'कलन' अर्थात् ग्रास करता है, इसी से वह 'महा-काल' नाम से कहा जाता है। तम महा-काल का कलन अर्थात् ग्रास करती हो, इसी से तुम्हारा नाम है आद्या परमा कालिका (३१)। तुम काल को ग्रास करती हो, इसी से तुम 'कालो' हो। तुम सबकी आदि हो। तुम सबकी काल-स्वरूपा और आदि-भूता हो। इसी से तुमको संसार में 'आद्या काली' कहते हैं (३२)। सर्व-संहार-समय प्रलय-काल में तुम वाणी के अतीत, मन से अगम्य, तमोमय आकृति-रहित स्वरूप का अवलम्बन कर अकेली स्थित रहती हो (३३)। तुम साकारा होकर भी निराकारा हो। तुम माया द्वारा बहुत से रूप धारण करती हो, तुम सबको आदि हो, अनादि हो, कर्त्री, हर्त्री और पालिका हो (३४)। इसीलिए हे भद्रे! मैं तुमसे कहता हूँ कि ब्रह्म-मन्त्र में दीक्षित व्यक्ति जो फल प्राप्त करता है, वह तुम्हारे साधन द्वारा भी उसी फल को पा सकता है (३५)।

हे देवि! देश, काल और अधिकार-भेद से विविध आचारों और भावों को प्रकट करता हूँ। किसी-किसी तन्त्र में मैंने गुप्त साधन भी कहे हैं (३६)। उनमें से जिस साधन में जो मनुष्य अधिकारी है, वह उसके अनुरूप अनुष्ठान कर फल को प्राप्त करता है और पाप-रहित होकर भव-सागर को पार करता है (३७)।

बहुत से जन्मों में अर्जित पुण्य के द्वारा जीव की प्रवृत्ति कुलाचार में होती है। कुलाचार द्वारा जिसकी आत्मा पवित्र होती है, वह साक्षात् शिव-मय होता है (३८)। जहाँ भोग का बाहुल्य है, वहाँ क्या योग की सम्भावना है? जहाँ योग का अनुष्ठान है, वहाँ भोग की भी सम्भावना दिखाई नहीं देती। कुलाचार में प्रवृत्त जीव भोग और योग—इन दोनों का भोग करता है (३९)। हे सुव्रते! जिस व्यक्ति द्वारा कुल-तत्त्व-ज्ञानी एक साधक की पूजा की जाती है, उसके द्वारा सभी देव एवं सभी देवियाँ पूजा पा जाती हैं, इसमें सन्देह नहीं (४०)। सोने से भरी हुई पृथ्वी का दान करने से जो फल मिलता है, उससे कोटि गुना अधिक पुण्य कुलाचार-निरत एक व्यक्ति की पूजा करने से प्राप्त होता है (४१)। यदि चाण्डाल भी कुल-तत्त्व-ज्ञानी है, तो वह ब्राह्मण की भी अपेक्षा श्रेष्ठ है किन्तु यदि ब्राह्मण कुलाचार-हीन है, तो वह चाण्डाल से भी नीच है (४२)।

मैं जानता हूँ कि कुल-धर्म की अपेक्षा कोई अन्य धर्म श्रेष्ठ नहीं है। यह जो कुल-धर्म है, इसके अनुष्ठान मात्र से मनुष्य लोग ब्रह्म-ज्ञानी हो जाते हैं (४३)। हे देवि! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, तुम हृदय में इसे धारण कर लो। कुल-धर्म सब धर्मों की अपेक्षा उत्तम है, इससे श्रेष्ठ और कोई धर्म नहीं है (४४)। यही परम पथ है, पशु-समूह से गुप्त है। जब प्रबल कलिकाल होगा, तब शीघ्र ही यही पथ प्रकाशित हो उठेगा (४५)। मैं सत्य सत्य कहता हूँ, जब कलिकाल प्रकृष्ट रूप में वर्द्धित होगा, तब कौलाचारी मनुष्यों के सिवा पशवाचारी लोग पृथिवी पर नहीं रहेंगे (४६)। हे वरारोहे! जब देखना कि पृथ्वी पर वैदिकी दीक्षा और पौराणिकी दीक्षा नहीं है, तभी समझना कि कलि प्रबल है (४७)। हे शान्ते शिवे! जिस समय पाप-पुण्य की वेदोक्त परीक्षा नहीं रहेगी, तभी विवेचन करना कि कलि प्रबल है (४८)। हे कुलेश्वरि! जिस समय गंगा कहीं छिन्न और कहीं भिन्न रूप में होंगी, तभी समझना कि कलि प्रबल है (४९)। हे महा-प्राज्ञे! जिस समय म्लेच्छ जाति के लोग शासक होंगे और वे धन-लोलुप होंगे, तभी समझना कि कलि प्रबल है (५०)। जिस समय स्त्रियाँ बहुत दुर्दान्त, कर्कश-भाषिणी और कलह-तत्परा होकर स्वामी की निन्दा करेंगी, तभी समझना कि कलि प्रबल है (५१)। जिस समय

पृथिवी पर मनुष्य लोग काम-किंकर और स्त्री के वशीभूत होकर गुरु, मित्र आदि की अवमानना करेंगे, तभी समझना कि कलि प्रबल है (५२)। जब पृथ्वी कम फल देनेवाली होगी, तभी समझना कि कलि प्रबल है (५३)। जिस समय भाई, स्वजन और मन्त्री लोग धन-लाभ की इच्छा से आपस में झगड़ा कर मार-मोट करने लगें, तभी समझना कि कलि प्रबल है (५४)। जिस समय खुले स्थान में मद्य-मांस खाने में निन्दा हो, दण्ड-वर्जित हो और सभी लोग छिपकर सुरा-पान करें, तभी समझना कि कलि प्रबल है (५५)। सत्य, त्रेता और द्वापर युग में जिस प्रकार प्रकट रूप से मद्यादि सेवन किया जाता था, उसी प्रकार कलियुग मे भी कुल-धर्मानुसार सेवन कर सकते हैं (५६)।

जो लोग सत्य द्वारा पवित्र और जितेन्द्रिय होकर कुलाचार का अनुष्ठान करेंगे, जिनका आचार सर्वत्र व्यक्त रहेगा, जो दयालु होंगे, उन्हें कलि पीड़ा नहीं दे सकेगा (५७)। जो गुरु की सेवा में लगे रहेंगे, जो माता के चरण-कमलो में भक्ति करेंगे, जो अपनी पत्नी में ही अनुरक्त रहेंगे, उन्हें कलि पीड़ा नहीं दे सकेगा (५८)। जो सत्य-व्रत, सत्य-निष्ठ और सत्य-धर्म-परायण होकर, कुल-साधन को जो सत्य कहकर विश्वास रखेंगे, उन्हें कलि पीड़ा नहीं दे सकेगा (५९)। जो कुल-धर्म की पद्धति के अनुसार शोधित मत्स्य, मांस, मद्य आदि सत्यवादी योगी को प्रदान करेंगे, उन्हें कलि पीड़ा नहीं दे सकेगा (६०)। जो हिंसा और मात्सर्य से रहित होंगे, जो दम्भ और द्वेष से शून्य होंगे और जो कुल-धर्म-निष्ठ होंगे, कलि उन्हें पीड़ा नहीं दे सकेगा (६१)। जो कौलों का सत्संग करेंगे, कुल-साधुओं के पास निवास करेंगे, कुल-साधुओं की सेवा करेंगे, उन्हें कलि पीड़ा नहीं दे सकेगा (६२)। जो कुल-धर्मावलम्बी कुलाचार से विचलित न होकर विविध वेश धारण करते हुए कुलाचार-क्रम से तुम्हारी पूजा करेंगे, उन्हें कलि पीड़ा न दे सकेगा (६३)। जो कुलाचार के अनुसार स्नान, दान, तपस्या, तीर्थ-दर्शन, व्रत और तर्पण करेंगे, उन्हें कलि पीड़ा न दे सकेगा। (६४)। जो कुलाचार के अनुसार गर्भाधान आदि संस्कार में संस्कृत होकर पितृ-श्राद्ध आदि कर्म करेंगे, उन्हें कलि पीड़ा न दे सकेगा (६५)। जो भक्तिपूर्वक कुल-तत्त्व और कुल-द्रव्य की अर्चना करेंगे और कुल-योगी को नमस्कार करेंगे, उन्हें कलि पीड़ा न दे सकेगा (६६)। कुटिलता और मिथ्याचार-विहीन, निर्मल अन्तःकरण वाले कुल-मार्गानुसारी और परोपकार व्रत में दीक्षित—ऐसे साधुजनों का कलि दास के समान रहेगा (६७)। हे प्रिये ! कलि के दोष-समूह के बीच एक प्रधान गुण भी है कि सत्य-प्रतिज्ञ कौलिक लोगों को सङ्कल्प मात्र से श्रेय प्राप्त होता है (६८)। हे देवि ! अन्य युग में मनुष्यों के पाप-पुण्य मानसिक होते थे अर्थात् सङ्कल्प द्वारा होते थे किन्तु कलियुग में केवल मानसिक पुण्य होता है, पाप नहीं होता (६९)। जो सदा मिथ्या बोलते हैं, जो दूसरों का अनिष्ट करने में लगे रहते है, कुलाचार-विहीन हैं—वे सब मनुष्य कलि के किङ्कर होते हैं (७०)। जो कुल-मार्ग में भक्ति नहीं रखते, जो पराई स्त्रियों में आसक्त रहते है और जो कुलाचार में लगे व्यक्तियों से द्वेष करते है, उन्हें कलि का दास जानना चाहिए (७१)। हे पार्वति ! हे भद्रे ! युगाचार के प्रसङ्ग में तुम्हारी प्रसन्नता के लिए संक्षेप में कलि की प्रबलता के लक्षण कहे गए (७२)। हे देवि ! इस कलि के प्रबल होने पर सभी धर्म दुर्बल हो जायंगे किन्तु एकमात्र 'सत्य' ही रहेगा। अतएव 'सत्य'-मय होना ही सबका कर्तव्य है (७३)। हे सुव्रते ! 'सत्य'-धर्म का आश्रय लेकर मनुष्य जो कर्म करेगा, वही कर्म सफल होगा, यही सत्य जाने (७४)। सत्य को अपेक्षा और कोई श्रेष्ठ धर्म नहीं है, मिथ्या के समान पाप-कार्य और कुछ नहीं है। अतएव मनुष्य का यही कर्तव्य है कि सभी अवस्थाओं में एकमात्र 'सत्य' का अवलम्बन करे (७५)। क्षार-भूमि में जिस प्रकार बीज का बोना निष्फल होता है, उसी प्रकार 'सत्य'-हीन पूजा व्यर्थ होती है, 'सत्य'-हीन जप व्यर्थ होता है और सत्य'-हीन तपस्या भी व्यर्थ होती है (७६)। 'सत्य'-रूप ही परम ब्रह्म है, 'सत्य' ही परम तपस्या-रूप है, सारी क्रियायें 'सत्य'-मूलक है, 'सत्य' से श्रेष्ठ और कुछ

नहीं है (७७)। अतएव मैंने कहा है कि पाप-मय कलि के प्रबल होने पर 'सत्य' का अवलम्बन कर प्रकट रूप से 'कुलाचार' का अनुष्ठान करे (७८)। गोपन करने से 'सत्य' की हानि होती है। मिथ्या बोले बिना गोपन करना सम्भव नहीं होता। अतएव कौलिक व्यक्ति प्रकट भाव से कुल-साधन करे (७६)। मैंने पहले कुल-तन्त्र में कहा है कि कुल-धर्म की रक्षा के लिए मिथ्या बोलना निन्दित नहीं है किन्तु कलि की प्रबलता होने पर यह उपदेश प्रशस्त नहीं है (८०)।

सत्य-युग में चतुष्पाद अर्थात् परिपूर्ण धर्म था। त्रेता-युग में उसका एक पद कम होकर वह त्रि-पाद रह गया। द्वापर-युग में धर्म द्वि-पाद मात्र रहता है। कलि-युग में उसी धर्म का केवल एक पाद शेष रहता है (८१)। धर्म का वह एक पाद भी 'तपस्या' और 'दया'-रूप दो अंशों से भग्न हो जाता है, एकमात्र 'सत्य'-अंश ही दृढ़ रहता है। इस समय वह 'सत्य'-रूप पाद भग्न करने से धर्म का लोप हो जायगा (८२)। हे कुलेश्वरि! इसी कारण 'सत्य' का सम्यक्-रूप से अवलम्बन करके ही सारे कार्य सम्पन्न करने चाहिए। इस कलि-काल में 'कुलाचार' को छोड़कर अन्य उपाय नहीं है। इस कलि-काल में यदि मिथ्या आचार में प्रवेश करता है, तो कभी मुक्ति नहीं मिलेगी। अतएव सर्वतोभाव से 'सत्य' द्वारा पवित्रात्मा होकर, मेरे द्वारा बताए मार्ग के अनुसार मनुष्य लोग अपने-अपने वर्ण और आश्रम के उपयोगी दीक्षा, पूजा, जप, होम, पुरश्चरण, तर्पण आदि सारे कर्मों का आचरण करें (८३-८५)। विशेष कर इस रूप में व्रत, उद्वाह, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जात-कर्म, नाम-करण, चूडाकरण, अन्त्येष्टि-क्रिया, पितृ-श्राद्ध आगम-सम्मत ही करे। तीर्थ-श्राद्ध, वृषोत्सर्ग, सारदोत्सव, यात्रा, गृह-प्रवेश, नूतन वस्त्रालङ्कारादि परिधान, वापी, कूप, गृहारम्भ और गृह-प्रतिष्ठा, देवता-स्थापन, दिवा-कृत्य, रात्रि-कृत्य, पर्व-कृत्य, मास-कृत्य, ऋतु-कृत्य, वर्ष-कृत्य, नित्य-नैमित्तिक कर्म, कर्त्तव्य कर्म, अकर्तव्य कर्म, त्याज्य कर्म, ग्राह्य कर्म—इन सबका निर्दिष्ट विधान के अनुसार ही साधन करे (८६-६१)। यदि कोई व्यक्ति मोह, दुर्बुद्धि या अश्रद्धा के वश में होकर उक्त सब कर्मों को निर्दिष्ट विधि से नहीं करता, तो वह सब कर्मों से बहिष्कृत होकर अन्त में विष्ठा में कृमि का जन्म ग्रहण करता है (६२)।

हे महेश्वरि! कलि-युग के प्रबल होने पर यदि कोई मेरे मत को छोड़कर कर्म करता है, तो वह कर्म उल्टा फल देनेवाला होगा (६३)। हे देवि! मेरे मत से असम्मत दीक्षा साधक को प्राण-घातिनी होगी और भस्म में आहुति देने के समान उसकी पूजा भी निष्फल होगी (६४)। देवता उसके प्रति क्रुद्ध होंगे और पद-पद पर उसे विघ्न होंगे (६५)। हे अम्बिके! कलिकाल के प्रबल होने पर जो व्यक्ति मेरे कहे शास्त्र को जानते हुए भी अन्य पथ के अनुसार कर्म करेगा, वह महा-पापी होगा (६६)। हे जो व्यक्ति अन्य पथ का अवलम्बन कर व्रत या विवाह करेगा, वह जब तक चन्द्र-सूर्य रहेंगे, तब तक नरक में रहेगा (६७)। अन्य मत से उपनयन होने से ब्रह्म-हत्या का पाप होगा। जिसका उपनयन होगा, वह व्रात्य होगा। वह व्यक्ति केवल सूत्र-वाही होगा और चाण्डाल की भी अपेक्षा अधम होगा (६८)। कुल-नायिके! अन्य पद्धति के अनुसार जो नारी विवाहिता होगी, वह निन्दिता होगी और विवाह करनेवाला पुरुष भी उसके संसर्ग से पापी होगा, यह जानना उचित है (६६)। उस प्रकार विवाहिता स्त्री-गमन से पुरुष को दिन-दिन वेश्यागमन-जनित पाप होगा। देवता उस नारी के हाथ का अन्न-जलादि ग्रहण न करेंगे (१००)। पितृ लोग भी उसे नहीं खाएँगे-पिएँगे क्योंकि वह मल-मूत्र-समान है। उस स्त्री-पुरुष की जो सन्तान होगी, वह सर्व-धर्म-बहिष्कृत होगी (१०१)। अतः अशाम्भव शास्त्र अर्थात् तन्त्र से भिन्न शास्त्र द्वारा देव-कर्म, पितृ-कर्म और कुलाचार-कर्म में उसे अधिकार न होगा। अशाम्भव अर्थात् तन्त्र-भिन्न शास्त्र की पद्धति से देव-मूर्ति की स्थापना करने से, उस मूर्ति में देवता का सान्निध्य नहीं होगा। उससे इह-लोक या परलोक में कोई फल नहीं मिलेगा। उससे केवल शरीर-कष्ट और धन-नाश ही होगा (१०२-१०३)।

जो व्यक्ति आगमोक्त विधि को छोड़कर श्राद्ध करेगा, उसका वह श्राद्ध निष्फल होगा और श्राद्ध-कर्त्ता पितृ-लोगों के साथ नरक को जायगा (१०४)। उसके द्वारा दिया हुआ जल रक्त-समान और पिण्ड मल-मय होगा। अतएव मनुष्यों को सर्वतोभाव से शङ्कर द्वारा प्रदर्शित मत का आश्रय करना ही कर्त्तव्य है (१०५)। हे देवि! यह अधिक और क्या कहूँ, मैं सत्य-सत्य कहता हूँ कि शिव से असम्मत जो भी कर्म होंगे, वे सब निष्फल होंगे (१०६)। जो शम्भु-प्रोक्त आचार से हीन हैं, उनके उन कर्मों से धर्म होना तो दूर रहा, उनका पूर्व-सञ्चित धर्म भी नष्ट हो जायगा और नरक से उनका उद्धार नहीं होगा (१०७)। हे महेशानि! मेरे द्वारा कही पद्धति के अनुसार जो नित्य, नैमित्तिक कर्म का साधन है, वही तुम्हारा साधन होगा (१०८)। उनके बीच कलि-रूप रोग का ओषधि-स्वरूप बहु-विध मन्त्र और यन्त्रादि-संयुक्त तुम्हारी विशेष आराधना मैं बताता हूँ, सुनो (१०९)।

●—●

पाँचवाँ उल्लास : कलश-स्थापन और तत्व-संस्कार

श्री सदाशिव ने कहा—तुम आद्या और परमा शक्ति हो। तुम सर्व-शक्ति-स्वरूपा हो। तुम्हारी शक्ति के प्रभाव से मैं सृष्टि, स्थिति और प्रलयादि नाश-कार्य में समर्थ होता हूँ (१)। तुम्हारे विविध वर्ण और विविध आकार और बहु प्रयासवाली साधनाओं के अनन्त रूप हैं। कौन व्यक्ति उन सब रूपों का वर्णन कर सकता है (२)। तुम्हारी कृपा से कुल-तन्त्र आदि एवं आगम-समूह में तुम्हारी उन्हीं सब रूपों की पूजा और साधन को मैंने यथा-मति कहा है (३)। किन्तु इस गुप्त साधन को कहीं प्रकट नहीं किया है। हे कल्याणि! इस गुप्त साधन के प्रभाव से मेरे प्रति तुम्हारी ऐसी कृपा हुई है (४)। हे प्रिये! इस समय तुम्हारे द्वारा पूछे जाने पर मैं गोपन करने में समर्थ नहीं हूँ। अतएव वह मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय होने पर भी उसे तुम्हारी प्रसन्नता के लिए कहता हूँ (५)। यह गुप्त साधन सब दुःखों को शान्त करनेवाला, सब विपत्तियों को नष्ट करनेवाला है, तुम्हें सन्तुष्ट करनेवाला और शीघ्र ही तुम्हें प्राप्त करानेवाला है (६)। हे प्रिये! कलि-काल में कलि के पापों द्वारा व्याकुल और अधिक परिश्रम करने में असमर्थ मनुष्य लोगों के लिए यह गुप्त साधन परम धन है (७)। इस गुप्त साधन में न्यासों का आधिक्य नहीं है, उपवास आदि संयम नहीं है। यह साधन सुख-साध्य और संक्षिप्त है। भक्तों को यह चतुर्वर्ग के फल का देनेवाला है, अतः यही श्रेष्ठ है (८)। हे देवेशि शिवे! मैं पहले इस विषय में मन्त्रोद्धार का क्रम कहता हूँ, सुनो। मनुष्य लोग इसके सुनने मात्र से जीवन्मुक्त हो जाएँगे (९)।

हे प्रिये! '**तजस**' अर्थात् रेफ में आरूढ़ '**प्राणेश**' अर्थात् हकार में '**भैरुण्डा**' अर्थात् '**ई**' का योग कर उनमें '**व्योम-विन्दु**' अर्थात् अनुस्वार शोभित कर '**ह्रीं**' बीज का उद्धार कर दूसरे बीज का उद्धार करे (१०)। '**सन्ध्या**' अर्थात् '**श**' '**रक्त**' अर्थात् '**र**' के ऊपर आरोहण करे, उनमें '**वाम नेत्र**' अर्थात् '**ई**' और '**इन्दु**' अर्थात् अनुस्वार योग करने से दूसरा मन्त्र '**श्रीं**' होगा। हे कल्याणि! इसके बाद तीसरा मन्त्र सुनो प्रजापति (क), दीप (रेफ) के ऊपर रहे (११)। उनमें गोविन्द (ई) और विन्दु (अनुस्वार) का संयोग करे। यह '**क्रीं**' बीज साधकों को सुख देनेवाला है। इन तीन बीजों के बाद '**परमेश्वरि!**' यह सम्बोधन-पद है (१२)। इस मन्त्र के शेष भाग में '**वह्नि-कान्ता**' अर्थात् '**स्वाहा**' यह पद है।

हे शिवे ! यह दश अक्षर वाला (**ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा**) मन्त्र कहा गया। सर्व-विद्या-स्वरूपा, उक्त मन्त्रात्मिका देवी परमेश्वरी विद्या है (१३)। श्रेष्ठ साधक '**सर्वाभीष्ट-सिद्धि**' के लिए आद्य तीन बीजों में से एक-एक बोज का अथवा तीनों बीजों का जप करते हैं (१४)।

पहले तीन बीजों (**ह्रीं श्रीं क्रीं**) को छोड़ने से उक्त दशाक्षर मन्त्र '**परमेश्वरि स्वाहा**'—सात अक्षर वाले इस मन्त्र में बदल जाता है।

सप्ताक्षर मन्त्र के पहले काम-बीज (**क्लीं**), वाग्-बीज (**ऐं**) और तार (ॐ) के जोड़ने से तीन प्रकार के अष्टाक्षर मन्त्र बनते हैं। यथा—१ **क्लीं परमेश्वरि स्वाहा**, २ ऐं परमेश्वरि स्वाहा और ३ ॐ **परमेश्वरि स्वाहा** (१५)।

पूर्वोक्त दशाक्षर-मन्त्र के सम्बोधन-पद के अन्त में '**कालिके**' इस पद का उच्चारण करे। उसके बाद आदि के बोज-त्रय (**ह्रीं श्रीं क्रीं**) का उच्चारण कर वह्नि-वधू (**स्वाहा**) पद कहे (१६)। इस प्रकार '**ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि कालके ह्रीं श्रीं क्रीं स्वाहा**' यह सोलह वर्णों वाला मन्त्र '**षोडशी**' नाम से प्रख्यात होकर सभी तन्त्रों में गुप्त है।

उक्त '**षोडशी**' मन्त्र के आदि में वधू (**स्त्रीं**) अथवा प्रणव (ॐ) का योग करने से दो सप्त-दशाक्षर मन्त्र होते हैं। यथा—१ **स्त्रीं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि कालिके ह्रीं श्री क्रीं स्वाहा**, २ ॐ **ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि कालिके ह्रीं श्रीं क्रीं स्वाहा** (१७)।

हे प्रिये ! तुम्हारे कोटि-कोटि अर्बुद मन्त्र हैं अतएव असंख्य मन्त्र हैं। यहाँ संक्षेप में बारह मन्त्र कहे हैं (१८)। जिस-जिस तन्त्र में जो-जो मन्त्र कहे हैं, वे सभी तुम्हारे मन्त्र हैं क्योंकि तुम्हीं आद्या प्रकृति हो (१९)। इन सभी मन्त्रों के साधन का प्रकार एक हो है, मैं जगत् के हित और तुम्हारी प्रसन्नता के लिए उस साधन को बताता हूँ (२०)। हे देवि ! कुलाचार के बिना शक्ति-मन्त्र सिद्धि-प्रद नहीं होता। अतएव कुलाचार में तत्पर होकर शक्ति-साधन करना चाहिए (२१)। हे आद्ये ! शक्ति-पूजा के विधान में मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन—ये पञ्च-तत्त्व कहे हैं (२२)। पञ्च-तत्त्व से रहित पूजा करने से वह अभिचार का कारण अर्थात् प्राण-घातक हो उठती है। उससे साधक को इष्ट-सिद्धि होती नहीं और पग-पग पर विघ्न होता है (२३)। पत्थर के ऊपर अन्न बोने से जिस प्रकार अंकुर नहीं निकलता, उसी प्रकार पञ्च-तत्त्व-विहीन पूजा से फल नहीं मिलता (२४)। हे देवि ! प्रातः-कृत्य न करने से कर्म में अधिकार नहीं होता, अतः सबसे पहले यथोचित प्रातः-कृत्य बताता हूँ (२५)।

रात्रि के अन्तिम प्रहर के शेषार्द्ध को 'अरुणोदय' काल कहते हैं। उसी समय निद्रा छोड़कर साधक उठ जाय और अपने मस्तक में श्वेत कमल में बैठे हुए दो हाथ वाले, द्वि-नेत्र गुरुदेव का ध्यान करे (२६)—

ध्याये शिरसि शुक्लाब्जे द्वि-नेत्रं द्वि-भुजं गुरुं। श्वेताम्बर परीधानं श्वेत-माल्यानुलेपनम्॥
वराभय-करं शान्तं करुणामय-विग्रहं। वामेनोत्पल-धारिण्या शक्त्यालिङ्गित-विग्रहम्॥
श्वेताननं सुप्रसन्नं साधकाभीष्ट-दायकम्॥

वे श्वेत वस्त्र पहने हैं, श्वेत माला से युक्त हैं, श्वेत चन्दन लगाए हैं और एक हाथ से वर तथा एक हाथ से अभय दे रहे हैं। वे शान्त और करुणामय शरीरवाले हैं अर्थात् उनके शरीर को देखने से ही प्रतीत होता है कि वे दयालु हैं (२७)। उनके बाईं ओर उनकी शक्ति कमल लिए हैं और उनके शरीर का आलिङ्गन किए हैं (२८)। उनका मुख कुछ हँसी से युक्त है, वे अति प्रसन्न हैं और साधु जनों को अभीष्ट वर प्रदान करते

हैं। हे कुलेश्वर ! मन्त्र-साधक व्यक्ति इस प्रकार ध्यान कर, मानसिक उपचारों से उनकी पूजाकर गुरु-मन्त्र श्रेष्ठ वाग्भव-वीज (ऐं) का जप करे (२६)। सुबुद्धि व्यक्ति इस प्रकार यथा-शक्ति जप कर गुरुदेव के दाएँ हाथ में अपने जप को समर्पित कर निम्न मन्त्र का पाठ करते हुए उन्हें प्रणाम करे (३०)—

भव-पाश-विनाशाय ज्ञान-दृष्टि-प्रदर्शिने । नमः सद्-गुरवे तुभ्यं भुक्ति-मुक्ति-प्रदायिने ।
नराकृति-परब्रह्म-रूपायाज्ञान-हारिणे । कुल-धर्म-प्रकाशाय तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

अर्थात् संसार के बन्धन को नष्ट करने के लिए आपने ज्ञान-दृष्टि को खोल दिया है और आप भोग एवं मोक्ष को प्रदान करते हैं। अतएव आप सद्-गुरु हैं। आपको नमस्कार (३१)। जो मनुष्य-रूप होकर भी परम ब्रह्म-स्वरूप हैं, जो अज्ञान को विनष्ट करनेवाले हैं और कुल-धर्म के प्रकाश करनेवाले हैं, उन श्रीगुरुदेव को नमस्कार (३२)।

इस प्रकार गुरुदेव को प्रणाम कर अपने देवता का ध्यान करे। फिर पूर्ववत् अर्थात् मानस उपचारों से अपने देवता की पूजा कर मूल-मन्त्र का जप करे (३३)। यथा-शक्ति जपकर देवी के बाएँ हाथ में जप को समर्पित करे और निम्न मन्त्र से ज्ञानी व्यक्ति इष्ट-देवता को नमस्कार करे—

नमः सर्व-स्वरूपिण्यै जगद्धात्र्यै नमो नमः । आद्यायै कालिकायै ते कल्यै हल्यै नमो नमः ॥

अर्थात् तुम सर्व-स्वरूपिणी हो, तुम्हें नमस्कार। तुम जगद्धात्री हो, तुम्हें बार-बार नमस्कार। तुम जगत् की सृष्टि और संहार करनेवाली हो, हे आद्या कालिके ! तुम्हें बार-बार नमस्कार (३४-३५)।

इस प्रकार इष्ट-देवता को प्रणाम कर पहले बायाँ पैर रखकर बाहर निकले। फिर मल-मूत्र त्याग कर दन्त-धावन करे (३६)। फिर जलाशय के पास जाकर पहले आचमन करे। तब जल में प्रवेश करे (३७)। नाभि तक गहरे जल में खड़े होकर शरीर के मैल को दूर करने के लिए एक बार स्नान कर—डुबकी लगाकर मन्त्राचमन करे (३८)। साधक-श्रेष्ठ कुल-साधक निम्न मन्त्रों से तीन बार जल पिये—

१ आत्म-तत्वाय स्वाहा, २ विद्या-तत्वाय स्वाहा, ३ शिव-तत्वाय स्वाहा ।

फिर ओष्ठाधर के मार्जन के लिए दो बार आचमन करे (३६)। सुधी व्यक्ति जल में त्रिकोण कुल-यन्त्र को लिखकर उसके मध्य में मूल-मन्त्र को लिखे। हे प्रिये ! उसके ऊपर बारह बार मूल-मन्त्र का जप करे (४०)। फिर साधक उस मन्त्र-पूत जल को तेजो रूप भावना कर सूर्यदेव के लिए तीन अञ्जलि जल देकर, उसी जल से तीन बार अपने मस्तक को अभिषिक्त कर मुख, दोनों नासिकाओं, दोनों कानों और दोनों आँखों इन सात छिद्रों को अपनी अँगुलियों से बन्द करे (४१)। तदनन्तर देवता की प्रसन्नता के लिए जल में तीन बार डुबकी लगाकर बाहर निकले और शरीर पोंछकर दो शुद्ध वस्त्र अर्थात् उत्तरीय और परिधेय वस्त्र पहने (४२)। इसके बाद गायत्री से शिखा-बन्धन कर मिट्टी या भस्म द्वारा अपने ललाट में विन्दु-युक्त त्रिपुण्ड्र-तिलक धारण करे (४३)। फिर साधक क्रमशः वैदिकी और तान्त्रिकी सन्ध्या करे। तान्त्रिकी सन्ध्या बताता हूँ, सुनो (४४)।

हे शिवे ! जल द्वारा पूर्ववत् मन्त्रों से आचमन कर निम्न मन्त्र से तीर्थों का आवाहन करे (४५)—

ॐ गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ! नर्मदे सिन्धु कावेरि ! जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥

अर्थात् हे गंगे ! हे यमुने ! हे गोदावरि ! हे सरस्वति ! हे नर्मदे ! हे सिन्धु ! हे कावेरि ! तुम इस जल में सन्निहित हो जाओ (४६)।

बुद्धिमान व्यक्ति इस मन्त्र का पाठ करता हुआ अंकुश मुद्रा द्वारा जल में तीर्थों का आवाहन करे और आवाहित तीर्थ-जल के ऊपर बारह बार मूल-मन्त्र का जप करे (४७)। फिर मूल-मन्त्र का उच्चारण करते हुए उसी जल से मध्यमा-अनामा अँगुलियों से भूमि पर तीन बार जल-विन्दु छिड़के (४८)। इसी प्रकार जल-विन्दुओं से अपना मस्तक अभिषिक्त करे। फिर कुछ जल बाईं हथेली में लेकर, दाएँ हाथ से उसे ढँक ले (४९)। बाएँ हाथ के उस जल के ऊपर ईशान-बीज (हं), वायु-बीज (यं), वरुण-बीज (वं), वह्नि-बीज (रं), इन्द्र-बीज (लं)—इन पाँच बीजों को चार बार जप कर उस जल को दाईं हथेली में ले ले (५०)। फिर साधक उस जल का दर्शन कर उसे तेजोमय भावना करता हुआ इड़ा (बाईं नासिका) द्वारा उसे आकृष्ट कर उस जल के साथ शारीरिक और मानसिक पापों को पिंगला नामक नाड़ी (दाईं नासिका) से निकाल दे (५१)। इस प्रकार साधक पापों को निकालकर **'फट्'** मन्त्र का उच्चारण करता हुआ उस जल को अपने सामने कल्पित वज्र-शिला के ऊपर तीन बार ताड़ित कर दोनों हाथ धो डाले (५२)। तब आचमन कर निम्न मन्त्र द्वारा सूर्य को अर्घ्य प्रदान करे—

ॐ ह्रीं घृणि सूर्य ! इदमर्घ्यं तुभ्यं स्वाहा

तार (ॐ), माया (ह्रीं), इनके बाद **'घृणि सूर्य'**, फिर **'इदमर्घ्यं तुभ्य स्वाहा'** पद का उच्चारण करते हुए अर्घ्य प्रदान करे (५३-५४)। तदनन्तर प्रातःकाल, मध्याह्न-काल एवं सन्ध्या-काल में गुण-तारतम्य के अनुसार त्रि-रूपिणी परमदेवता महा-देवी गायत्री का ध्यान करे (५५)। यथा—

प्रातर्ब्राह्मीं रक्त-वर्णां द्वि-भुजां च कुमारिकाम्। कमण्डलुं तीर्थ-पूर्णमच्छ-मालां च विभ्रतीम्॥
कृष्णाजिनाम्बर-धरां हंसारूढां शुचि-स्मिताम्॥१

मध्याह्ने तां श्याम-वर्णां वैष्णवीं च चतुर्भुजाम्। शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-धारिणीं गरुडासनाम्॥
पीनोत्तुङ्ग-कुच-द्वन्द्वां वन-माला-विभूषिताम्। युवतीं सततं ध्यायेन्मध्ये मार्तण्ड-मण्डले॥२
सायाह्ने वरदां देवीं गायत्रीं संस्मरेद् यतिः। शुक्लां शुक्लाम्बर-धरां वृषासन-कृताश्रयाम्॥
त्रि-नेत्रां वरदां पाशं शूलं च नृ-करोटिकाम्। विभ्रतीं कर-पद्मैश्च वृद्धां गलित-यौवनाम्॥३

अर्थात् प्रातःकाल रक्त-वर्णा, द्विभुजा, कुमारी, तीर्थोदक-पूर्ण कमण्डलु एवं निर्मल माल्य-धारिणी, कृष्णाजिन-परिधाना, हंसारूढ़ा एवं विशुद्ध स्मित-शोभिता ब्राह्मी—ब्रह्म-शक्ति का ध्यान करे (५६)।

मध्याह्न-काल में श्याम-वर्णा, चतुर्भुजा, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-धारिणी, गरुडासना, युवती, पीन व उच्च-स्तनी, वन-माला-विभूषिता वैष्णवी शक्ति को निरन्तर रवि-मण्डल में ध्यान करे (५७-५८)।

सायं-काल में जितेन्द्रिय व्यक्ति शुक्ल-वर्णा, शुक्ल-वस्त्र-परिधाना, वृषासन पर बैठी हुई, त्रिनेत्रा, चार कर-कमलों में वर-पाश-शूल और नर-कपाल-धारिणी, वृद्धा एवं विगत-यौवना वरदा गायत्री देवी का स्मरण करे (५९-६०)।

इस प्रकार ध्यान कर महा-देवी को तीन अञ्जलि जल देकर सौ बार या दस बार गायत्री-मन्त्र का जप करे (६१)। हे देवेशि ! मैं तुम्हारे लिए गायत्री मन्त्र बताता हूँ, सुनो। पहले **'आद्यायै'** पद का उच्चारण कर फिर **'विद्महे'** इस पद का उच्चारण करे (६२)। फिर **'परमेश्वर्यै धीमहि तन्नः काली प्रचोदयात्'** यह कहे।

अर्थात् पूरा गायत्री-मन्त्र है—**आद्यायै विद्महे परमेश्वर्यै धीमहि तन्नः काली प्रचोदयात्।**

इस मन्त्र का अर्थ है कि हम आद्या परमेश्वरी को प्राप्त करने के लिए जिनका ध्यान करते हैं और जिनमें

पूर्ण रूप से विश्वास रखते हैं, वे ही जगत्-कारण-स्वरूपा काली हम लोगों को धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष में तत्पर करें। महा-पाप की ध्वंस-कारिणी यह गायत्री मैने तुम्हें बताई है (६३)। हे भद्रे ! जो तीनों सन्ध्याओं में इसका जप करते हैं, उन्हें नित्य त्रि-सन्ध्या करने का फल मिलता है।

इसके बाद देव, ऋषि, पितृ-गण एवं इष्ट-देवता का तर्पण करे (६४)। पहले प्रणव का उच्चारण कर, द्वितीयान्त उन-उनके नाम का उच्चारण करते हुए अन्त में **'तर्पयामि नमः'** इस पद का उच्चारण करे। शक्ति-विषय में अर्थात् इष्ट-देवता के तर्पण में प्रणव के स्थान पर माया-बीज (ह्रीं) और **'नमः'** के स्थान पर **'द्विठ'** अर्थात् **'स्वाहा'** का योग करे (६५)।

मूल-मन्त्र (**स्त्रीं ह्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा**) के बाद **'सर्व-भूत'**, यह पद, उसके बाद **'निवासिन्यै'** यह पद कहे। फिर **'स्व-स्वरूपायै'** यह पद कहकर **'सायुधायै'** यह पद पढ़े (६६)। तदनन्तर **'सावरणायै परात्परायै आद्यायै कालिकायै'** इस पद का उच्चारण कर **'इदमर्घ्यं स्वाहा'** यह कहे। सुधी व्यक्ति इसी मन्त्र द्वारा महा-देवी को अर्घ्य दे और तब यथा-शक्ति मूल-मन्त्र का जप कर देवी के बाएँ हाथ में जप का समर्पण करे (६७)। फिर साधक देवी की प्रणाम-पूजा के लिए जल ग्रहण एवं तीर्थ को नमस्कार कर स्तव-पाठ करते-करते और इष्ट-देवता के ध्यान में तत्पर होकर याग-मण्डप में आकर हाथ-पैर का शोधन करे। तदनन्तर द्वार-देश के सामने सामान्यार्घ्य का स्थापन करे (६८-७०)। यथा—

ज्ञानवान् व्यक्ति एक त्रिकोण, उसके बाहर एक गोलाकार-मण्डल, उसके बाहर एक चतुष्कोण मण्डल बना कर उसमें **'ॐ आधार-शक्तये नमः'** इस मन्त्र से गन्ध-पुष्प द्वारा आधार-शक्ति की पूजा कर उस पर आधार स्थापित करे (७१)। फिर **'फट्'** मन्त्र से पात्र को धोकर उक्त आधार पर रखे और **'नमः'** मन्त्र से उसे जल से पूर्ण करे। तब उसमें गन्ध-पुष्प छोड़कर सब तीर्थों का उसमें आवाहन करे (७२)। आधार पर अग्नि का, पात्र में सूर्य-मण्डल का और जल में चन्द्र-मण्डल की पूजा कर दस बार माया-बीज (ह्रीं) के जप द्वारा उस जल को पवित्र करे (७३)। तब उसके ऊपर धेनु-मुद्रा और योनि-मुद्रा दिखाए। इसे ही 'सामान्यार्घ्य' कहते हैं। फिर उक्त-जल और पुष्प द्वारा द्वार-देवताओं की पूजा करे (७४)। इन द्वार-देवताओं में गणेश, क्षेत्रपाल, वटुक, योगिनी, गङ्गा, यमुना, लक्ष्मी और सरस्वती का पूजन क्रमशः निम्न मन्त्रों से करे (७५)—

गं गणेशाय नमः। क्षं क्षेत्रपालाय नमः। वं वटुकाय नमः। यां योगिन्यै नमः। गां गङ्गायै नमः। यां यमुनायै नमः। श्रीं लक्ष्म्यै नमः। ऐं सरस्वत्यै नमः।

इसके बाद ज्ञानी व्यक्ति द्वारस्थ चतुष्काष्ठ (चौखट) के बाईं ओर के काष्ठ को कुछ छूते हुए, बायाँ पैर आगे बढ़ाकर, भगवती के चरण-कमलों को स्मरण करते हुए पूजा-गृह में प्रवेश करे (७६)। फिर पूजा-गृह के मध्य में नैर्ऋत्य-कोण में निम्न मन्त्रों से गन्ध-पुष्प द्वारा वास्तु-पुरुष, ईश और ब्रह्मा का अर्चन करे—

ॐ वास्तु-पुरुषाय नमः। ॐ ईशाय नमः। ॐ ब्रह्मणे नमः।

तदनन्तर सामान्यार्घ्य जल से याग-मन्दिर को प्रोक्षित करे (७७)। फिर साधक-श्रेष्ठ एकटक दृष्टि से ऊपर की ओर देखकर सभी दिव्य विघ्नों को दूर करने की भावना करे और **'फट्'** मन्त्र से जल फेंककर आकाश-सम्बन्धी सभी विघ्न दूर करे (७८)। तब तीन बार पैर के तलवे के किनारे से पृथ्वी पर आघात कर भूमि-सम्बन्धी विघ्नों के दूर करने की भावना करे। पूजा-गृह को चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कपूर द्वारा सुगन्धित करे। अपने बैठने के लिए त्रिकोण-गर्भ चतुष्कोण-मण्डल बनाकर उसमें **'कामरूपाय नमः'** मन्त्र से काम-रूप की पूजा करे (७९-८०)। उसी मण्डल के ऊपर आसन बिछाकर काम-बीज (**क्लीं**) का उच्चारण कर **'आधार-**

शक्तये कमलासनाय नमः' इस मन्त्र से आसन की पूजा करे (८१)। धर्मज्ञ साधक पूर्व या उत्तर-मुख होकर वीरासन से उस पूजित आसन पर बैठकर विजया का शोधन करे (८२)। यथा—

तार (ॐ) और माया-बीज (ह्रीं) का उच्चारण कर 'अमृते अमृतोद्भवे अमृत-वर्षिणि अमृतमाकर्षया-कर्षय सिद्धिं देहि कालिकां मे वशमानय स्वाहा।'—यही सम्विदा के शोधन का मन्त्र है (८३-८४)। फिर उस विजया के ऊपर सात बार मूल-मन्त्र का जप कर आवाहनी, स्थापनी, सन्निधापनी, सन्निरोधिनी, सम्मुखी-करणी, धेनु और योनि-मुद्रायें दिखाये। जिस प्रकार संकेत-मुद्रा अर्थात् गुरूपदिष्ट तत्त्व-मुद्रा द्वारा सहस्रार-पद्म में विजया द्वारा तीन बार गुरु का तर्पण करे, उसी प्रकार मूल-मन्त्र का उच्चारण कर हृदय में तीन बार देवी का तर्पण करे (८५-८६)। फिर वाग्भव (ऐं) के बाद 'वद वद', उसके बाद 'वाग्वादिनि' यह पद, तब 'मम जिह्वाग्रे स्थिरीभव सर्व-सत्त्व-वशङ्करि स्वाहा'—इस मन्त्र का पाठ कर कुण्डली के मुख में विजया द्वारा आहुति दे (८७)।

उक्त प्रकार विजया ग्रहण कर बाएँ कान के ऊपर श्री गुरु को, दाएँ कान के ऊपर गणेश को और मध्य स्थान में सनातनी आद्या काली को प्रणाम करे (८८)। बुद्धिमान् साधक हाथ जोड़कर देवी का ध्यान कर सारे पूजा-द्रव्य को दाईं ओर और सुवासित जल तथा जो कुल-द्रव्य हों, उन सबको बाईं ओर रखे (८९)। मूल-मन्त्र के अन्त में 'फट्' को जोड़कर उसे पढ़ते हुए सामान्यार्घ्य के कुछ जल द्वारा सारी पूजा-सामग्री को प्रोक्षित कर उसे जल-धारा देकर वेष्ठित करे। फिर वह्नि-बीज (रं) द्वारा अग्नि-प्राचीर की भावना करे (९०)। तब कर-शुद्धि करने के लिए दोनों हाथों में चन्दन-युक्त पुष्प लेकर 'फट्' मन्त्र को पढ़ते हुए सचन्दन पुष्पों को घर्षित कर फेंक दे (९१)। हे शिवे! परस्पर मिली हुई तर्जनी और मध्यमा अँगुलियों से हथेली पर क्रमशः तीन बार ऊपर और ऊपर को ओर ताली बजाकर 'फट्' मन्त्र का पाठ करते हुए छोटिका (चुटकी-ध्वनि) द्वारा दश-दिग्बन्धन करे। तदनन्तर भूत-शुद्धि करे (९२)। यथा—

साधक-श्रेष्ठ अपनी गोद में दोनों हथेलियों को उत्तान (चित्त) रखे। फिर मन को प्रथम चक्र मूलाधार में सन्निवेशित कर हुङ्कार द्वारा कुण्डली को उठाए और फिर 'हंस' मन्त्र को पढ़ते हुए पृथिवी के सहित उसे नाभि-मूल में स्थित द्वितीय चक्र स्वाधिष्ठान में लाकर पृथिवी आदि सभी कार्य-तत्त्वों को क्रमशः जलादि कारण-तत्व में प्रविष्ट करे (९३-९४)। घ्राणेन्द्रिय, गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द-सहित पृथिवी को जल में लय करे। रसनेन्द्रिय व रसादि गुण-चतुष्टय-सहित जल को अग्नि (तेज) में विलीन करे (९५)। रूपादि गुण-त्रय और चक्षु के सहित अग्नि (तेज) को वायु में विलीन कर स्पर्श, शब्द, त्वक् इन्द्रिय सहित वायु को आकाश में लय करे (९६)। शब्द अर्थात् शब्द और श्रोतृ के सहित आकाश को अहंकार में तथा अहंकार को बुद्धि-तत्त्व में विलीन करे। बुद्धि-तत्त्व को प्रकृति में और उस सर्व-ग्रासिनी प्रकृति को ब्रह्म में लय करे (९७)। सुबुद्धि व्यक्ति इस प्रकार सभी तत्त्वों को विलीन कर बाईं कोख में कृष्ण-वर्ण, ताम्र-लोहित, शुभ्र, आरक्त-नयन, खड्ग-चर्म-धारी, क्रोधाविष्ट, अंगुष्ठ-मात्र परिमित, सदा अधोमुख रहनेवाले, सर्व-पाप-स्वरूप पुरुष का ध्यान करे (९८-९९)। यथा—

पुरुषं कृष्ण-वर्णं च रक्त-श्मश्रु-विलोचनम्। खड्ग-चर्म-धरं क्रुद्धमंगुष्ठ-परिमाणकम्।
सर्व-पाप-स्वरूपं च सर्वदाधोमुख-स्थितम्॥

इसके बाद बाईं नासिका में धूम्र-वर्ण 'यं' बीज का ध्यान कर १६ बार इसका जप करते हुए उसी बाईं नासिका से वायु खींचे। तब उत्तम साधक उस खींची हुई वायु द्वारा पाप-पुरुष की देह को सुखा डाले (१००)।

नाभि में रक्त-वर्ण 'रं' बीज का ध्यान करते हुए कुम्भक (सांस रोक) कर ६४ बार इस बीज का जप करते हुए उससे उत्पन्न अग्नि द्वारा पाप-परायण अपनी देह को जला डाले (१०१)। ललाट में शुक्ल-वर्ण वारुण बीज 'वं' का ध्यान कर खींची हुई और फिर कुम्भित निश्वास वायु को छोड़ते हुए इस बीज का ३२ बार जप करते हुए इससे उत्पन्न अमृत-जल द्वारा जले हुए शरीर को प्लावित कर दे (१०२)। इस प्रकार पैर से मस्तक तक पूर्ण रूप से करने के बाद देव-मय नवीन शरीर उत्पन्न हुआ है, ऐसी भावना करे (१०३)। फिर मूलाधार चक्र में पीत-वर्ण पृथिवी-बीज 'लं' का ध्यान करते हुए इस बीज के उच्चारण और एकटक दर्शन से शीघ्र उत्पन्न अपने शरीर को दृढ़ करे (१०४)। अपने वक्ष (छाती) पर हाथ रखकर 'आं ह्रीं क्रों हंसः' का उच्चारण कर 'सोहं' कहे और इस मन्त्र द्वारा उस नव-जात देव-मय देह में देवी की प्राण-प्रतिष्ठा करे (१०५)।

हे अम्बिके ! इस प्रकार भूत-शुद्धि का विधान कर 'मैं देवी-स्वरूप हूँ' यह सोचते हुए एकाग्र-चित्त से मातृका-न्यास करे (१०६)। यथा—

विनियोग—अस्य मातृका-न्यासस्य ब्रह्मा ऋषिः। गायत्री छन्दः। मातृका सरस्वती देवी देवता। व्यञ्जनाः वीजाः। स्वराः शक्तयः। सर्गः कीलकं। लिपि-न्यासे विनियोगः।

अर्थात् इस मातृका-न्यास के ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द, मातृका सरस्वती देवी देवता, व्यञ्जन-वर्ण वीज, स्वर-वर्ण शक्तियाँ, विसर्ग कीलक और लिपि के न्यास में विनियोग है।

इसी रूप में ऋषि-न्यास कर कर-न्यास और हृदयादि अङ्ग-न्यास करे (१०७-१०८)।

(१) 'अं आं' इन दो वर्णों के मध्य में कवर्ग (ककारादि पञ्च-वर्ण) अर्थात् 'अं' के बाद 'कं खं गं घं ङं' फिर 'आं' (इसी प्रकार अन्यत्र भी समझे) ;

(२) 'इं ईं' इन दो वर्णों के मध्य में चकारादि पञ्च-वर्ण ;

(३) 'उं ऊं' इन दो वर्णों के मध्य में टकारादि पञ्च-वर्ण ;

(४) 'एं ऐं' इनके मध्य में तकारादि पञ्च-वर्ण ;

(५) 'ओं औं' इन दो वर्णों के मध्य में पकारादि पञ्च-वर्ण ;

(६) अनुस्वार 'अं' और विसर्ग 'अः' इनके मध्य में 'य' से 'क्ष' तक के वर्ण—ये कर-न्यास और अङ्ग-न्यास में मन्त्र-रूप बताए गए हैं (१०६-११०)। न्यास-विधि के अनुसार (अर्थात् पूर्वोक्त एक-एक श्रेणी मन्त्र का उच्चारण कर उसके बाद यथा-क्रम) '१ अंगुष्ठाभ्यां नमः, २ तर्जनीभ्यां स्वाहा, ३ मध्यमाभ्यां वषट्, ४ अनामिकाभ्यां हुं, ५ कनिष्ठाभ्यां वौषट्, ६ करतल-करपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्' का उच्चारण करे—यह कर-न्यास की विधि है और इसी प्रकार उक्त मन्त्रों का क्रमशः उच्चारण करते हुए यथा-क्रम '१ हृदयाय नमः, २ शिरसे स्वाहा, ३ शिखायै वषट्, ४ कवचाय हुं, ५ नेत्र-त्रयाय वौषट्, ६ करतल-करपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्' का उच्चारण करना अङ्ग-न्यास की विधि है। इस प्रकार न्यास कर मातृका-सरस्वती का ध्यान करे (१११)—

पञ्चाशल्लिपिभिर्विभक्त-मुख-दोः-पन्मध्य-वक्षःस्थलाम्
भास्वन्मौलि-निबद्ध-चन्द्र-शकलामापीन-तुङ्ग-स्तनोम्।
मुद्रामक्ष-गुणं सुधाढ्य-कलशं विद्यां च हस्ताम्बुजै—
र्विभ्राणां विषद-प्रभां त्रिनयनां वाग्-देवतामाश्रये ॥

अर्थात् जिनका मुख, बाहु, पाद, कटि-देश और वक्षःस्थल पचास वर्णों में विभक्त है, जिनका किरीट उज्ज्वल शशि-कला से निबद्ध है, जिनके स्तन पीन और उच्च हैं तथा जो चार कर-कमलों में तत्त्व-मुद्रा, अक्ष-माला, अमृत-पूर्ण कलश और विद्या धारण किए हैं ; उन्हीं शुक्ल-वर्णा, त्रिनयना वाग्-देवता का मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ (११२)।

इस प्रकार मातृका देवी का ध्यान कर षट्-चक्रों में मातृका-न्यास करे। कुल-साधक भ्रू-मध्य में 'ह' 'क्ष' इन दो वर्णों का, कण्ठ-स्थित पद्म में अकार से विसर्ग तक के १६ स्वरों का और हृत्पद्म में 'क' से 'ठ' तक के वर्णों का न्यास कर नाभि-देश में 'ड' से 'फ' तक, लिङ्ग-मूल में वर्गीय 'ब' से 'ल' तक और चतुर्दल मूलाधार-चक्र में अन्तःस्थ 'व' से 'स' तक के वर्णों का न्यास करे। इस प्रकार अन्तर में मातृका-वर्णों का न्यास कर बहिर्देश में भी इन मातृका-वर्णों का न्यास करे (११३-११५)।

ललाट, मुख, नेत्र-द्वय, कर्ण-द्वय, नासिका-द्वय, गण्ड-द्वय, ओष्ठ, अधर, उभय दन्त-पंक्ति, मस्तक, मुख-विवर, बाहु-द्वय की सन्धि और अग्र भाग, पद-द्वय की सन्धि और अग्र भाग, पार्श्व-द्वय, पृष्ठ, नाभि, उदर, हृदय, स्कन्ध-द्वय, ककुद, हृदय से दक्षिण बाहु, हृदय से वाम बाहु, हृदय से दक्षिण पद, हृदय से वाम पद, फिर हृदय से जठर और हृदय से मुख—इन सभी स्थानों में क्रमशः सभी मातृका-वर्णों का न्यास करे।

इसी प्रकार वर्ण-न्यास कर प्राणायाम करे (११६-११८)। यथा—

माया-बीज (**ह्रीं**) का १६ बार जप करते हुए बाईं नासा से खींची हुई वायु से अपने शरीर को पूर्ण करे। दाएँ हाथ की कनिष्ठा, अनामिका और अंगुष्ठ से दोनों नासा-पुटों को बन्द कर ६४ बार जप करते हुए कुम्भक करे (११६)। फिर अंगुष्ठ को छोड़कर केवल दो अँगुलियों से बाईं नासा को बन्द कर ३२ बार जप करते हुए दाईं नासा से धीरे-धीरे वायु निकाल दे (१२०)। तीन बार यह क्रिया करना ही प्राणायाम कहा जाता है। इस प्रकार प्राणायाम कर ऋषि-न्यास करे (१२१)।

ब्रह्मा और ब्रह्मर्षि-गण इस मन्त्र के ऋषि हैं। गायत्री आदि इसके छन्द हैं। आद्या काली इसकी देवता हैं (१२२)। '**क्रीं**' इसका बीज, आद्या माया '**ह्रीं**' इसकी शक्ति, कमला '**श्रीं**' इसका कीलक है। इनका न्यास क्रमशः शिर, मुख, हृदय, गुह्य, दोनों चरणों व सर्वाङ्ग में करना है (१२३)। मूल-मन्त्र का पाठ करते हुए दोनों हाथों से चरणों से लेकर मस्तक तक और मस्तक से लेकर चरणों तक सात या तीन बार न्यास करे। यह '**व्यापक न्यास**' है, जो यथोक्त फल देने में समर्थ है (१२४)। मूल-मन्त्र के आद्य अक्षर में जो बीज होगा, उसमें क्रमशः आ, ई इत्यादि को जोड़कर अथवा उसके न होने से अंग-शुद्ध बीज द्वारा अंग-न्यास करे (१२५)। दोनों अँगूठों, दोनों तर्जनियों, दोनों मध्यमाओं, दोनों अनामिकाओं, दोनों कनिष्ठाओं और कर-तल तथा कर-पृष्ठ में क्रमशः '**नमः, स्वाहा, वषट्, हुँ, वौषट्, फट्**' मन्त्र कहे हैं। आदि में हृदय में '**नमः**', मस्तक में वह्नि-वल्लभा–'**स्वाहा**', शिखा में '**वषट्**', दोनों कवचों में '**हूं**'—ये मन्त्र कहे (१२६)। तीनों नेत्र में '**वौषट्**' और करतल तथा कर-पृष्ठ इन दोनों में '**फट्**' कहे। सुधी व्यक्ति क्रमशः इस प्रकार षडङ्ग-न्यास कर पीठ-न्यास करे (१२७)। यथा—

वीर साधक अपने हृत्पद्म में आधार-शक्ति, कूर्म, अनन्त, पृथ्वी, सुधाम्बुधि, मणि-द्वीप, पारिजात तरु, चिन्ता-मणि गृह, मणि-माणिक्य-वेदिका और उस पर स्थित पद्मासन—इन सबका न्यास करे (१२८-१३०)। दक्षिण स्कन्ध में, वाम स्कन्ध में, वाम कटि में, दक्षिण कटि में धर्म, ज्ञान, ऐश्वर्य और वैराग्य का क्रमशः न्यास करे (१३१)। उत्तम साधक मुख में, वाम पार्श्व में, नाभि में, दक्षिण पार्श्व में नम्र-पूर्वक उक्त धर्मादि (अर्थात् अधर्म, अज्ञान, अनैश्वर्य और अवैराग्य) का यथा-क्रम न्यास करे (१३२)। फिर हृदय में आनन्द-कन्द, सूर्य, सोम, अग्नि और आद्याक्षर में अनुस्वार जोड़कर सत्व, रज, तम—इन सबका कर्णिका में न्यास कर हृत्पद्म के

सभी पत्रों (दलों—पंखुड़ियों) में पीठ-नायिकाओं का न्यास करे (१३३)। अष्ट-नायिकाओं के नाम हैं—मंगला, विजया, भद्रा, जयन्ती, अपराजिता, नन्दिनी, नारसिंही, वैष्णवी (१३४)। असितांग, रुरु, चण्ड, क्रोधोन्मत्त, भयङ्कर, कपाली, भीषण और संहारी—इन अष्ट भैरवों का न्यास अष्ट-दल पद्म के प्रत्येक दल के अग्र भाग में करे। फिर प्राणायाम करे (१३५)।

इसके बाद कच्छप-मुद्रा बनाए हुए करतल में गन्ध-पुष्प लेकर हृदय पर दोनों हाथ रखकर सनातनी देवी का ध्यान करे (१३६)। ध्यान दो प्रकार के हैं—सरूप और अरूप अर्थात् साकार और निराकार। सरूप अर्थात् साकार, अरूप अर्थात् निराकार। इस प्रकार विषय-भेद से ध्यान दो प्रकार के कहे गए हैं। तुम्हारा निराकार-विषयक जो ध्यान है, वह वाक्य और मन के अगोचर है अतः अव्यक्त, सर्व-व्यापी यह रूप साधारण लोगों के लिए दुर्ज्ञेय, उपदेश से परे और बड़े कष्ट एवं बड़ी समाधि द्वारा केवल योगियों को ज्ञेय है (१३७-१३८)। इस समय मन की धारणा योग्य, शीघ्र अभीष्ट सिद्धि-दायक एवं सूक्ष्म ध्यान अर्थात् निराकार ध्यान के प्रबोध के लिए तुम्हारा स्थूल ध्यान कहता हूँ (१३९)।

वस्तुतः निराकार, काल-जननी, महा-द्युति कालिका के गुण-क्रियानुसार उनकी रूप-कल्पना की जाती है (१४०)। यथा—

मेघाङ्गीं शशि-शेखरां त्रि-नयनां रक्ताम्बरं विभ्रतीम्।
पाणिभ्यामभयं वरं च विलसद् रक्तारविन्द-स्थिताम्॥
नृत्यन्तं पुरतो निपीय मधुरं माध्वीक-मद्यं महा-
कालं वीक्ष्य विकासितानन-वरामाद्यां भजे कालिकाम्॥

अर्थात् जिनका वर्ण मेघ के समान है, जिनके ललाट पर चन्द्र-लेखा है, जो त्रि-नयना हैं, जो रक्त-वस्त्र धारण किए हैं, जो दो हाथों से वर और अभय दे रही हैं, जो खिलते हुए लाल कमल पर विराजमान हैं, मधूक-पुष्प से निर्मित मधुर मद्य का पान कर सम्मुख नाचते हुए महा-काल को देखकर जिनका मुख प्रफुल्ल हो उठा है, उन महा-कालिका का मैं भजन करता हूँ (१४१)।

साधक अपने सिर पर फूल रख कर उक्त प्रकार ध्यान कर परम भक्ति के साथ मानसोपचार से उनकी पूजा करे (१४२)। यथा—

आसन-रूप में हृदय-कमल को प्रदान करे। सहस्र-दल-कमल से निकलते हुए अमृत द्वारा दोनों चरणों में पाद्य अर्पित करे। मन को अर्घ्य करके निवेदन करे (१४३)। उसी अर्थात् सहस्र-दल-कमल से निकले अमृत द्वारा ही आचमनीय और स्नानीय जल प्रदान करे। वस्त्र-रूप में आकाश-तत्त्व और गन्ध रूप में गन्ध-तत्त्व की कल्पना करे (१४४)। चित्त को पुष्प-रूप में भावना करे। पञ्च-प्राणों को धूप-स्वरूप कल्पना करे। दीप के स्थान पर तेजस्तत्त्व, सुधाम्बुधि को नैवेद्य-रूप में, अनाहत-ध्वनि को घण्टा-ध्वनि के रूप में और वायु-तत्त्व को चामर तथा इन्द्रियों के समस्त कार्यों एवं मन की चंचलता को नृत्य-रूप में भावना करे (१४५-१४६)।

अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए विविध प्रकार के पुष्प देवी को प्रदान करे। माया-राहित्य, अहङ्कार का अभाव, राग-राहित्य, मद-राहित्य, मोह-राहित्य, दम्भ-राहित्य, द्वेष-राहित्य, क्षोभ-राहित्य, मात्सर्य-राहित्य, लोभ-राहित्य—ये दस विषय ही पुष्प कहे गए हैं (१४७-१४८)।

इसके बाद अहिंसा-रूप परम पुष्प, इन्द्रिय-निग्रह-रूप पुष्प, दया-रूप पुष्प, क्षमा-रूप पुष्प और ज्ञान-रूप पुष्प—ये पाँच पुष्प प्रदान करे (१४६)।

इस प्रकार पन्द्रह भाव-रूप पुष्पों से पूजा करे। फिर सुधा-सागर, मांस-पर्वत, भर्जित-मत्स्य का पर्वत अर्थात् प्रभूत मत्स्य, मांस, मुद्रा की राशि, उत्तम अन्न, घृताक्त पायस, कुलामृत अर्थात् शक्ति-घटित अमृत-विशेष, स्त्री-पुष्प और पीठ-क्षालन-वारि और स्त्रियों के अंग-विशेष का प्रक्षालन-जल मन-ही-मन देवी को देता हुआ विघ्न-कारक काम और क्रोध की बलि देकर जप आरम्भ करे। कुण्डली-सूत्र में गुथी हुई माला को जप-माला कहा है (१५०-१५२)। यथा—

पहले विन्दु-सहित अकार से लेकर अन्तिम लकार तक के वर्णों का उच्चारण कर मूल-मन्त्र का उच्चारण करे। यह जप—'अं ह्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा, आं ह्रीं क्रीं' इत्यादि क्रम से करने से अनुलोम जप कहा जाता है (१५३)। फिर विन्दु-युक्त लकार से अकार तक एवं प्रत्येक वर्ग के एक-एक वर्ण को लेकर आठ वर्णों को विन्दु-युक्त जप करने से विलोम जप कहा जाता है। 'क्ष'—मेरु-स्वरूप है (१५४)। तदनन्तर अष्ट-वर्गों के अर्थात् स्वर-वर्ण, ककारादि पञ्च, चकारादि पञ्च, टवर्ग-तवर्ग-पवर्ग के पञ्च-पञ्च वर्ण, यकारादि चार वर्ण, शकारादि पंच-वर्ण के अन्तिम वर्ण के साथ मूल-मन्त्र को योग कर एक सौ आठ बार जप कर निम्न मन्त्र से जप को समर्पित करे (१५५-५६)—

सर्वान्तरात्म-निलये स्वान्तर्ज्योतिः-स्वरूपिणि ! गृहाणान्तर्जपं मातराद्ये कालि ! नमोऽस्तु ते ॥

अर्थात् हे सर्वान्तःकरण-वासिनि ! हे अन्तरात्म-ज्योति-स्वरूपे ! हे मातः ! हे आद्ये कालिके ! तुमको प्रणाम करता हूँ। मेरे इस मानस जप को ग्रहण करो।

इस प्रकार जप समर्पित कर मन-ही-मन भगवती को साष्टांग प्रणाम करे। अब बाह्य पूजा आरम्भ करे (१५७)।

पहले विशेषार्घ्य का संस्कार बताता हूँ, सुनो। जिसके स्थापन मात्र से देवता प्रसन्न होता है (१५८), ब्रह्मा आदि देव-गण, योगिनी-गण और भैरव-गण अर्घ्य-पात्र का दर्शन कर नृत्य करने लगते हैं और प्रसन्न हृदय से सिद्धि प्रदान करते हैं (१५६)। अपनी बाईं ओर, सम्मुख स्थल पर, सामान्यार्घ्य के जल से एक त्रिकोण-मण्डल, उसके मध्य में माया-वीज 'ह्रीं', फिर त्रिकोण-मण्डल के बाहर एक गोलाकार मण्डल और उसके बाहर एक चतुष्कोण-मण्डल लिखे। (रेखाचित्र सं० १)

इस पर 'ह्रीं आधार-शक्तये नमः' इस मन्त्र से आधार-शक्ति की पूजा करे (१६०-१६१)। फिर उक्त मण्डल के ऊपर धुला हुआ आधार स्थापित कर उसमें 'मं वह्नि-मण्डलाय दश-कलात्मने नमः' मन्त्र से पूजा कर 'फट्' मन्त्र से अर्घ्य-पात्र को धोकर उस आधार पर स्थापित करे (१६२-६३)। फिर 'अं अर्क-मण्डलाय द्वादश-कलात्मने नमः' से हे अम्बिके ! उस पात्र में पूजा करे। तदनन्तर मूल-मन्त्र से अर्घ्य-पात्र को पूरित करे (१६४)। साधक अर्घ्य-पात्र का तीन भाग मद्य से और शेष भाग जल से पूर्ण कर उसमें गन्ध-पुष्प छोड़े। फिर 'रक्षा-मन्त्र' से उसमें पूजा करे (१६५)। 'उं चन्द्र-मण्डलाय षोडश-कलात्मने नमः' से पूजा कर बिल्व-पत्र, रक्त चन्दन लगी हुई दूर्वा (दूब), पुष्प और आतप तण्डुल एकत्र कर उस पात्र के अग्र भाग में स्थापित करे (१६६-१६७)। तब मूलमन्त्र से उसमें तीर्थों का आवाहन कर देवी का ध्यान कर गन्ध-पुष्प से पूजन करे। फिर बारह बार मल-मन्त्र का जप करे (१६८)। इसके बाद साधक धेनु और योनि मुद्राएँ दिखाकर धूप-दीप दिखावे।

तब उस जल में से कुछ प्रोक्षणी-पात्र में डालकर उस जल को अपने ऊपर और समस्त देय द्रव्यों पर छिड़के। मन्त्रज्ञ व्यक्ति पूजा के समाप्त होने तक विशेषार्घ्य पात्र को हिलावे नहीं (१६६-७०)।

हे निर्मल-स्मिते ! यह विशेषार्घ्य का संस्कार कहा, अब धर्मार्थ-काम-मोक्ष इस चतुर्वर्ग के देनेवाले यन्त्र-राज के लिखने की विधि बताता हूँ (१७१)। एक त्रिकोण-मण्डल बनाकर उसके मध्य में माया-बीज 'ह्रीं' लिखे। उसके बाहर दो गोलाकार मण्डल बनाए। इन दोनों गोलाकार मण्डलों के मध्य में दो-दो करके सोलह केशर बनाए (१७२)। इस वृत्त-द्वय के बाहर अष्टदल पद्म लिखे। इस पद्म के बाहर चतुर्द्वार-युक्त सरल रेखा-वाला सुन्दर भूपुर बनाए (१७३)। (रेखाचित्र सं० २)

कुण्ड-गोल (शक्ति-विशेष के पुष्प) द्वारा या स्वयम्भू कुसुम (अन्यान्य शक्ति-घटित पुष्प) द्वारा लिप्त, चन्दन, अगरु और कुंकुम द्वारा या केवल रक्त-चन्दन द्वारा लिप्त सुवर्ण-मय पात्र में, रजत-मय पात्र में या ताम्र-मय पात्र में स्वर्ण-शलाका या बिल्व-कण्टक द्वारा मूल-मन्त्र का उच्चारण करते-करते देवता-भाव की सिद्धि के लिए उक्त यन्त्र-राज को लिखे अथवा स्फटिक-निर्मित पात्र में या प्रवाल-निर्मित पात्र में या वैदूर्य-निर्मित पात्र में उत्तम शिल्प-कार कारीगर द्वारा मन्त्र-रेखाएँ खुदवाकर प्रतिष्ठा-पूर्वक घर के अन्दर इसे स्थापित करे। ऐसा करने से इस यन्त्र के प्रसाद से दुष्ट भूत-गण, ग्रह-समुदाय और रोग, भय आदि सब दूर होते हैं। वह घर पुत्र, पौत्र, सुख और ऐश्वर्य के प्रभाव से आनन्दित होता है और स्वयं वह व्यक्ति इस यन्त्र के प्रसाद से दाता, भर्त्ता और यशस्वी होता है (१७४-७६)।

उक्त प्रकार यन्त्र बनाकर अपने सम्मुख रत्न-सिंहासन पर उसे स्थापित कर पीठ-न्यासोक्त विधि से पीठ देवताओं की पूजा कर कर्णिका के मध्य में मूल-देवता की पूजा करे (१७६)।

अब कलश-स्थापन और चक्रानुष्ठान को बताता हूँ, जिसके करने मात्र से निश्चय ही देवता को बड़ी प्रसन्नता होती है, मन्त्र-सिद्धि होती है और इच्छा-सिद्धि होती है (१८०)।

विश्वकर्मा द्वारा देवताओं का एक-एक अंश लेकर इसकी रचना होती है, इसी से इसे **'कलश'** कहते हैं (१८१)। यह ३६ अंगुल अर्थात् डेढ़ हाथ चौड़ा, सोलह अंगुल ऊँचा होता है, चार अंगुलि इसके कण्ठ का परिमाण है। मुख का विस्तार छः अंगुलि और तल-देश का परिमाण पाँच अंगुलि है—कलश-निर्माण की यही विधि है (१८२)। देवता की प्रीति के लिए सुवर्ण, रजत, ताम्र, कांस्य, मृण्मय, पाषाण या काच का बनवाए। घट को अभग्न और अछिद्र बनवाए। इसमें धन की कंजूसी न करे (१८३)। सुवर्ण-कलश भोग प्रदान करता है, रजत-मय कलश मोक्ष-प्रद होता है, ताम्र-मय कलश प्रीति-कर होता है। कांस्य-मय कलश पुष्टि-वर्द्धक होता है। काच-मय कलश वशीकरण में प्रशस्त कहा गया है। पाषाण से बना कलश स्तम्भन-कार्य में और मृण्मय कलश सभी कार्यों में प्रशस्त है। पूर्वोक्त द्रव्यों द्वारा निर्मित सभी प्रकार के ही कलश देखने में सुन्दर और सुडौल होने चाहिए (१८४)।

अपने बाईं ओर एक षट्-कोण-मण्डल, उसके मध्य में एक शून्य और उक्त षट्कोण के बाहर एक चतुष्कोण-मण्डल बनाए (१८५)। (रेखाचित्र सं० ३)

इस प्रकार सिन्दूर-रज या रक्त-चन्दन से मण्डल बनाकर उस पर आधार-देवता की पूजा करे (१८६)। यथा—ह्रीं **आधार-शक्तये नमः** (१८७)।

इसके बाद **'नमः'** से धोकर आधार (मृत्पिण्डादि) मण्डल के ऊपर स्थापित करे। फिर **'फट्'** से कुम्भ को धोकर उसे आधार के ऊपर स्थापित करे (१८८)। मन्त्रज्ञ व्यक्ति 'क्ष' से लेकर अकार तक विपरीत क्रम

में वर्ण-समुदाय को विन्दु-युक्त कर उच्चारण कर मूल-मन्त्र का उच्चारण करते हुए कारण (मद्य) द्वारा कुम्भ को पूरित करे (१८६)। कुलाचारज्ञ व्यक्ति देवी-भाव-परायण होकर आधार में वह्नि-मण्डल का, कुम्भ में सूर्य-मण्डल का और कुम्भ-स्थित मद्य में चन्द्र-मण्डल का पूजन करे (१६०)। फिर रक्त चन्दन, सिन्दूर, रक्त माला, आदि से अनुलेपन कर कलश को विभूषित कर 'पञ्चीकरण' करे (१६१)। यथा—

'फट्' का उच्चारण करते हुए कुश द्वारा कलश पर 'ताडना' कर 'हूं' का उच्चारण कर अवगुण्ठन मुद्रा द्वारा कलश को अवगुण्ठित करे। फिर 'ह्रीं' का उच्चारण करते हुए अपलक दृष्टि से कलश को अच्छी तरह देखकर '**नमः**' का उच्चारण करते हुए जल से कलश को अभ्युक्षित करे। मूलमन्त्र से कलश में तीन बार चन्दन छिड़के। इसी को '**पञ्चीकरण**' कहते हैं (१६२)।

फिर कलश को प्रणाम कर उसमें स्थित सुरा को रक्त पुष्प प्रदान कर निम्न मन्त्रों से सुरा का शोधन करे (१६३)—

एकमेव परं ब्रह्म स्थूल-सूक्ष्म-मयं ध्रुवम्। कचोद्भवां ब्रह्म-हत्यां तेन ते नाशयाम्यहम्॥

अर्थात् परं ब्रह्म अद्वितीय स्थूल और सूक्ष्म तथा नित्य है। मैं उसके द्वारा कच-जनित ब्रह्म-हत्या का नाश करता हूँ (१६४)।

सूर्य-मण्डल-मध्यस्थे वरुणालय-सम्भवे ! अमा-वीज-मये देवि ! शुक्र-शापाद् विमुच्यताम्॥

अर्थात् हे देवि ! हे सूर्य-मण्डल-मध्यस्थे ! हे समुद्र-गर्भ-सम्भूते ! हे अमा-वीज-मयि ! तुम शुक्राचार्य के शाप से मुक्त हो जाओ (१६५)।

वेदानां प्रणवो वोजं ब्रह्मानन्द-मयं यदि। तेन सत्येन ते देवि ! ब्रह्म-हत्या व्यपोहतु॥

अर्थात् ब्रह्मानन्द-मय प्रणव वेदों का वोज-स्वरूप है। हे देवि ! उस सत्य द्वारा तुम्हारी ब्रह्म-हत्या नष्ट हो जाय (१६६-६७)।

ह्रीं हंसः शुचिसद् वसुरन्तरिक्ष-सद्धोता, वेदिसदतिथिर्दुरोणसत्।
नृसद्वर सदृत-सद्-व्योम-सदब्जा गोजा, ऋतजा अद्रिजा ऋतं वृहत्॥

अर्थात् परमहंस तेजोमय स्वर्ग में रहता है; वसु-रूप में स्वर्ग व पृथ्वी के मध्य अन्तरिक्ष में वह घूमता है। पृथ्वी पर वह वैदिक अग्नि और 'होता'-रूप में है। उसकी पूजा अतिथि-रूप में होती है। वह गृहस्थ की अग्नि में, मनुष्य की चेतनता में है और सत्य-लोक में रहता है। सत्य व आकाश में वह स्थित है।

वरुण-वीज '**वं**' में क्रमशः छः दीर्घ स्वर लगाकर '**ब्रह्म-शाप**' शब्द के बाद '**विमोचितायै**' कहे, फिर '**सुधा-देव्यै नमः**' कहे। इस मन्त्र का सात बार पाठ करने से ब्रह्म का शाप दूर होता है। पूरा मन्त्र है (१६८)–

वां वीं वूं वैं वौं वः ब्रह्म-शाप-विमोचितायै सुधा-देव्यै नमः।

अंकुश अर्थात् '**क्रों**' में छः दीर्घ स्वर लगाकर श्री-वीज '**श्रीं**' और माया-वीज 'ह्रीं' जोड़े। फिर '**सुधा**' शब्द के बाद '**कृष्ण-शापं मोचय अमृतं स्रावय स्रावय**' कहकर अन्त में '**स्वाहा**' कहे (१६६)।

इस प्रकार शाप-मोचन कर एकाग्र-हृदय से उसमें आनन्द-भैरव और आनन्द-भैरवी की पूजा करे (२००)। '**सहक्ष-मल**' पद के बाद '**वरयूं**' के साथ मिलाकर '**आनन्द-भैरवाय**' कहे और अन्त में '**वषट्**' रहेगा। यह आनन्द-भैरव का मन्त्र है (२०१)। आनन्द-भैरवी की पूजा के समय '**सहक्षमलवरयूं**' इस मन्त्र के 'आस्य' अर्थात् मुख के दो वर्णों को विपरीत अर्थात् '**हस**' पढ़े और 'श्रवण' अर्थात् उकार के स्थान पर 'वाम-लोचना'

अर्थात् ईकार पाठ करे, बाद में **'सुधा-देव्यै वौषट्'** इन दो पदों का प्रयोग करे। (इस प्रकार पूरा मन्त्र हुआ— **सहक्षमलवरयीं आनन्द-भैरव्यै वौषट्**)। उसी कलश में आनन्द-भैरव और आनन्द-भैरवी की सम-रसता का ध्यान कर उनके अमृत द्वारा उसे संसिक्त भावना कर उसके ऊपर बारह बार मूल-मन्त्र का जप करे (२०२-३)।

तब देवता-बुद्धि से उस मद्य के ऊपर मूल-मन्त्र का पाठ करते हुए तीन बार पुष्पाञ्जलि प्रदान करे। फिर घण्टा-ध्वनि के साथ उसे धूप-दीप दिखाये (२०४)।

देव-पूजा, व्रत, होम, विवाह और अन्य उत्सवों में इसी प्रकार सुरा का संस्कार करे (२०५)।

सम्मुख स्थित त्रिकोण-मण्डल के ऊपर मांस-पात्र को लाकर **'फट्'** से अभ्युक्षित कर वायु-वीज (यं) और वह्नि-वीज (रं) द्वारा उसे तीन बार अभिमन्त्रित करे (२०६)। फिर कवच अर्थात् 'हूं' का पाठ करते हुए अव-गुण्ठन-मुद्रा से उसे अवगुण्ठित कर **'अस्त्र'** अर्थात् **'फट्'** से उसकी रक्षा करे। तब 'वं' मन्त्र पढ़कर धेनु-मुद्रा से उसे अमृतीकृत कर निम्न मन्त्र पढ़े (२०७)—

विष्णोर्वक्षसि या देवी या देवी शङ्करस्य च। मांसं मे पवित्री-कुरु कुरु तद्-विष्णोः परमं पदम् ॥

अर्थात् जो देवी विष्णु के वक्षःस्थल पर और जो देवी शङ्कर के वक्षःस्थल पर विराजती हैं, वह मेरे इस मांस को पवित्र करे; वह मेरे सम्बन्ध में विष्णु का प्रधान पद निश्चित करे।

यह मांस-शोधन-विधि है (२०८)। इसी प्रकार कुल-धर्मज्ञ व्यक्ति मत्स्य-पात्र को लाकर उक्त मांस-शोधन-मन्त्रों से उसे शोधित कर निम्न मन्त्र से उसे अभिमन्त्रित करे (२०९)—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि-वर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॥

अर्थात् जैसे सूर्य को देखते हैं, वैसे ही विष्णु का परम पद सदा दिखाई देता है। जो अपने मन को वश में रखता है और जागता रहता है, वह विष्णु के परम पद का दर्शन करता है।

हे प्रिये! इसके बाद मुद्रा-पात्र को लाकर उसी प्रकार शोधित कर निम्न मन्त्रों से अभिमन्त्रित करे—

ॐ तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः, दिवीव चक्षुराततम्।

ॐ तद् विप्रासो विपण्यवो जागृवांसः समिन्धते। विष्णोर्यत् परमं पदम्।

अर्थात् उस त्र्यम्बक (शिव) की हम पूजा करते हैं, जो पुष्टि-कारक और सुगन्धिवाला है। उर्वारुक का फल जैसे अपने आप गिर जाता है, उसी प्रकार हम बन्धनों से छूट जायँ और अन्त में मुक्त होकर परमात्मा में लय हो जायँ।

अथवा मूल-मन्त्र द्वारा ही पञ्च-तत्त्वों का शोधन करे। जिसे मूल-मन्त्र पर श्रद्धा है, उसे शाखा-पल्लव से क्या प्रयोजन (२१२)? केवल मूल-मन्त्र से जो द्रव्य शोधित होता है, वही देवता की प्रीति के लिए सबसे अधिक प्रशस्त है, यह मैं कहता हूँ (२१३)। जिस समय साधक को अवसर न हो, तब सभी द्रव्यों को मूल-मन्त्र से ही शोधित कर महा-देवी को निवेदित करे (२१४)। मूल-मन्त्र से शोधित सभी तत्त्वों को देवी को निवेदन करने से कोई दोष नहीं होगा, किसी अङ्ग के कम होने का दोष नहीं होगा। यह सत्य है, सत्य है, पुनः कहता हूँ कि यह सत्य है, यह शङ्कर का शासन है (२१५)।

●※●

छठा उल्लास : पात्र-स्थापन और होम, चक्र, करणादि

श्री देवी ने जिज्ञासा की—हे नाथ ! आपने पूजादि कर्म के समय मुझे **'पञ्च-तत्त्व'** बताए हैं। इस समय यदि मेरे प्रति आपकी कृपा हो तो उन्हें विशेष रूप से बताइए (१)।

श्री सदाशिव ने कहा—उत्तम सुरा तीन प्रकार की है : १. गौड़ी, २. पैष्टी और ३. माध्वी। यह सुरा ताल और खर्जूर से बनने से विविध रूप की कही गई है। देश-भेद से और विभिन्न द्रव्य-भेद से सुरा अनेक प्रकार की है। यह सभी सुरा देवी की अर्चना के लिए प्रशस्त हैं (२)।

यह सुरा जिस किसी रूप से समुत्पन्न हो, जिस किसी व्यक्ति द्वारा लाई गई हो, शोधित होने पर सब सिद्धियाँ प्रदान करती है। सुरा के सम्बन्ध में जाति का विचार नहीं है (३)।

मांस तीन प्रकार का है—१. जलचर, २. भूचर और ३. खेचर। यह मांस जिस किसी स्थान से आया हो, जिस किसी व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किया गया हो, वह सभी देवता को प्रसन्न करता है, इसमें सन्देह नहीं (४)।

देवता को देय वस्तु के सम्बन्ध में साधक की इच्छा ही बलवती है। जो वस्तु अपने को प्रिय है, वही इष्ट-देवता को प्रदान करे (५)। हे देवि ! बलि-दान में पुरुष पशु ही विहित है। महादेव के शासन के कारण स्त्री-पशु का हनन न करे (६)।

शाल, वोयाल और रोहू—यही तीन प्रकार की मत्स्य उत्तम हैं (७)। अन्य कण्टक-हीन मत्स्य मध्यम और बहुत कण्टकवाली मत्स्य अधम हैं। बहुत कण्टकवाली मत्स्य को भी अच्छी तरह भूनकर देवी को दे सकते हैं (८)।

मुद्रा भी उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार की है। जो चन्द्र-बिम्ब के समान शुभ्र है, जो शालि-तण्डुल से प्रस्तुत की गई है अथवा जो यव या गेहूँ द्वारा बनी है और जो घी में पको तथा मनोहर है, वही मुद्रा उत्तम है। जो भ्रष्ट धान्य से बनी है, वह मध्यम मुद्रा है। जो अन्य प्रकार की वनस्पति--शाक द्वारा प्रस्तुत है, वह अधम मुद्रा कही गई है (९-१०)।

देवी को सुधा देते समय जो मांस, मत्स्य, मुद्रा, फल-मूल आदि दिया जाता है, उस सबको **'शुद्धि'** कहते हैं (११)। शुद्धि के बिना देवी को सुरा देकर पूजा या तर्पण करने से सारा कर्म निष्फल होता है और देवता प्रसन्न नहीं होती (१२)। शुद्धि के बिना मद्य-पान करने से वह केवल विष-पान होता है और ऐसा व्यक्ति चिर-रोगी तथा स्वल्पायु होकर शीघ्र ही मर जाता है (१३)।

हे महेशानि ! कलि के प्रबल होने पर शेष-तत्त्व का शोधन एकमात्र सर्व-दोष-विवर्जिता स्वकोया पत्नी से ही सम्पन्न होगा (१४)। हे प्राण-वल्लभे ! मैंने जो स्वयम्भू-कुसुमादि की बात कही है, उनके प्रतिनिधि के स्थान पर **'रक्त-चन्दन'** को बताया है (१५)।

उक्त पञ्च-तत्त्व एवं फल-मूल, पत्र बिना शोधन किए देवी को न दे, अन्यथा करनेवाला नरक-गामी होगा (१६)।

गुण-शीला अपनी पत्नी से श्रीपात्र का स्थापन करे और उस पत्नी को कारण या सामान्यार्घ्य के जल से अभिषिक्त करे (१७)। अभिषेक का मन्त्र यह है—

पहले 'बाला' ('ऐं क्लीं सौः') कहे, फिर '**त्रिपुरायै**' का उच्चारण कर '**नमः**' अन्त में कहे। तब '**इमां-शक्तिं**' कहकर '**पवित्रीं कुरु**'—इस शब्द के बाद '**नमः शक्तिं कुरु स्वाहा**' कहे (१८-१६)।

यदि नारी अदीक्षिता हो, तो उसके कान में माया-बीज 'ह्रीं' का उच्चारण करे। मैथुन-तत्त्व के सम्पादन के लिए अन्य जो परकीया शक्ति हों, उन सबका पूजन करे (२०)। फिर अपने और यन्त्र के मध्य में एक त्रिकोण-मण्डल लिखकर उसके मध्य में माया-बीज 'ह्रीं' लिखे। इस त्रिकोण-मण्डल के बाहर एक षट्कोण-मण्डल लिख कर उसके बाहर एक चतुष्कोण-मण्डल लिखे (२१)। (चित्र सं० ४)

तदनन्तर उत्तम साधक चतुष्कोण-मण्डल के चार कोणों में १. '**पूं पूर्ण-शैलाय पीठाय नमः**, २. '**उं उड्डीयानाय पीठाय नमः**, ३. '**जां जालन्धराय पीठाय नमः**, ४. '**कां काम-रूपाय पीठाय नमः**' से क्रमशः पूर्ण-शैल, उड्डीयान, जालन्धर और कामरूप पीठों का पूजन करे (२२)। फिर षट्कोण के छः कोणों में '**ह्रां नमः**, **ह्रीं नमः**, **ह्रूं नमः**, **ह्रैं नमः**, **ह्रौं नमः**, **ह्रः नमः**' इन छः मन्त्रों से षट्-कोण की अधिष्ठात्री देवताओं को पूजा करे। तब त्रिकोण-मण्डल में '**ह्रीं आधार-शक्तये नमः**' से आधार-देवता की पूजा करे (२३)। इसके बाद '**नमः**' से प्रक्षालित आधार को पूर्ववत् उस स्थान पर स्थापित कर उसमें आदि अक्षर के उच्चारण-सहित वह्नि की दश कलाओं की पूजा करे (२४)। दश कलाओं के नाम हैं—१. धूम्रा, २. अर्चिः, ३. ज्वालिनी, ४. सूक्ष्मा, ५. ज्वालिनी, ६. विस्फुलिङ्गिनी, ७. सुश्री, ८. सुरूपा, ९. हव्यवहा, १०. कव्यवहा (२५)। इन सब नामों में चतुर्थी विभक्ति लगाकर अन्त में '**नमः**' जोड़कर वह्नि की दस कलाओं की पूजा करे (२६)। तब '**मं वह्नि-मण्डलाय दश-कलात्मने नमः**' से वह्नि-मण्डल की पूजा करे (२७)। फिर '**फट्**' कार से विशोधित अर्घ्य-पात्र लाकर आधार पर स्थापित कर '**क** से '**ठ ड**' तक के वर्ण-बीजों को पहले उच्चारण कर सूर्य की द्वादश कलाओं का पूजन करे (२८)। द्वादश कलाओं के नाम हैं—१. तपिनी, २. तापिनी, ३. धूम्रा, ४. मरीचि, ५. ज्वालिनी, ६. रुचि, ७ सुधूम्रा, ८. भोगदा, ९. विश्व, १०. बोधिनी, ११. धारिणी, १२. क्षमा (२९)। तब अर्घ्य-पात्र में '**अं सूर्य-मण्डलाय द्वादश-कलात्मने नमः**' इस मन्त्र से सूर्य-मण्डल की पूजा करे (३०)। फिर मन्त्रज्ञ व्यक्ति क्षकार से अकार तक विलोम-मातृका वर्ण और उनके अन्त में मूल-मन्त्र का उच्चारण करते हुए कलशस्थ सुरा से अर्घ्य-पात्र के तीन भाग को पूर्ण करे (३१)। इसके बाद एकाग्र-चित्त से विशेषार्घ्य के जल से अर्घ्य-पात्र के शेष भाग को पूर्णकर सोलह स्वर-बीजों के अन्त में चतुर्थ्यन्त नाम का उच्चारण कर अन्त में '**नमः**' शब्द का प्रयोग कर चन्द्रमा की षोडश कलाओं की पूजा करे (३२)। षोडश कलाओं के नाम हैं—१. अमृता, २. मानदा, ३. पूजा, ४. तुष्टि, ५. पुष्टि, ६. रति, ७. धृति, ८. शशिनी, ९. चन्द्रिका, १०. कान्ति, ११. ज्योत्स्ना, १२. श्री, १३. प्रीति, १४. अङ्गदा, १५. पूर्णा और १६. पूर्णामृता। ये सोलह कलायें काम-दायिनी अर्थात् अभीष्ट कामना को पूर्ण करनेवाली हैं (३३)। फिर उक्त अर्घ्य-पात्र के जल में '**उं सोम-मण्डलाय षोडश-कलात्मने नमः**' से सोम-मण्डल की पूजा करे (३४)। तब दूर्वा, अक्षत, रक्त-पुष्प, बबंरा-पत्र, अपराजिता-पुष्प—ये सब लेकर 'ह्रीं' मन्त्र से पात्र में छोड़कर उसमें तीर्थों का आवाहन करे (३५)। फिर 'हूं' बीज से अवगुण्ठन-द्वारा अर्घ्य-पात्रस्थ सुरा का अवगुण्ठन कर अस्त्र-मुद्रा द्वारा उसकी रक्षा करे। तब धेनु-मुद्रा से उसे अमृतीकृत कर उसे मत्स्य-मुद्रा से आच्छादित करे (३६)। फिर उस अर्घ्य-पात्रस्थ सुरा के ऊपर दस बार मूल-मन्त्र का जप कर उसमें इष्ट-देवता का आवाहन कर पुष्पाञ्जलि देकर निम्न पाँच मन्त्रों से सुधा को अभिमन्त्रित करे (३७)—

अखण्डैक-रसानन्दाकरे पर-सुधात्मनि ! स्वच्छन्द-स्फुरणामृत्र निधेहि कुल-रूपिणि ।।१।।

हे कुल-रूपिणि ! तुम इस परम सुधा-मयी वस्तु से अखण्ड एकमात्र सान्द्र रस और सान्द्रानन्द-प्रदायिनी हो। तुम स्वाधीन स्फूर्ति प्रदान करो (३८)।

अनङ्गस्थामृताकारे शुद्ध-ज्ञान-कलेवरे ! अमृतत्त्वं निधेह्यस्मिन् वस्तुनि क्लिन्न-रूपिणि ।।२।।

तुम अनङ्गस्थ अमृत-स्वरूपा हो, विशुद्ध ज्ञान ही तुम्हारा शरीर है। तुम क्लिन्न-रूप इस वस्तु में अमृतत्व स्थापित करो (३९)।

तद्-रूपेणैकरस्यं च कृत्वार्घ्यं तत्-स्वरूपिणि ! भूत्वा कुलामृताकारं मयि विस्फुरणं कुरु ।।३।।

हे सुरा-स्वरूपिणि ! तुम प्रधान माधुर्य-रस-रूप में इस पूजार्घ्य-रूप मद्य को ऐकरस्य अर्थात् प्रधान माधुर्य-विशिष्ट कर कुलामृत-स्वरूप होकर हमारी स्फूर्ति का साधन करो (४०)।

ब्रह्माण्ड-रस-सम्भूतमशेष-रस-सम्भवम् । आपूरितं महा-पात्रं पीयूष-रसमावह ।।४।।

सुधा से पूर्ण यह महा-पात्र ब्रह्माण्ड-रस से युक्त, अशेष रस का आकर है, इसे पीयूष-रस-मय करो (४१)।

अहन्ता-पात्र-भरितमिदन्ता-परमामृतम् । पराहन्ता-मये वह्नौ होम-स्वीकार-लक्षणम् ।।५।।

आत्म-भाव-रूप पात्र में धारित इदं-भाव-रूप परम अमृत को परात्म-रूप वह्नि में अहन्तादि पात्र को इदन्तादि के सहित स्वीकार करने के लक्षण वाली होमाहुति प्रदान करो (४२)।

इस प्रकार सुरा को अभिमन्त्रित कर शिव और शिवानी की समरसता का ध्यान-पूजन कर धूप-दीप दिखाये (४३)। कुल-पूजा-विषय में यह **'श्रीपात्र-संस्कार'** तुमसे कहा गया। मन्त्रज्ञ व्यक्ति यदि इस प्रकार संस्कार नहीं करता, तो वह पाप-भागी होता है और उसकी पूजा निष्फल होती है (४४)।

ज्ञानी व्यक्ति घट और श्रीपात्र के मध्य स्थान में गुरु-पात्र, भोग-पात्र, शक्ति-पात्र, योगिनी-पात्र, वीर-पात्र, बलि-पात्र, आचमन-पात्र और पाद्य-पात्र—श्रीपात्र को मिलाकर ये नौ पात्र स्थापित करे। सामान्यार्घ्य-स्थापन की विधि के अनुसार पात्र-स्थापन करना चाहिए (४५-४६)। फिर इन सभी पात्रों का तीन भाग कलशस्थ सुधा से भरकर इन सब पात्रों में माष-बराबर शुद्धि-खण्ड छोड़े (४७)। तब बाएँ हाथ के अंगुष्ठ और अनामिका से पात्र-स्थित अमृत शुद्धि-खण्ड के सहित लेकर तत्त्व-मुद्रित दाएँ हाथ से सभी पात्रों से तर्पण करे। इस तर्पण की विधि बाद में कहूँगा (४८)।

श्रीपात्र से शुद्धि-सहित परम विन्दु अर्थात् सुधा-विन्दु लेकर आनन्द-भैरव और आनन्द-भैरवी का तर्पण करे (४९)। फिर गुरु-पात्रस्थ अमृत से गुरु-समूह का तर्पण करे। ब्रह्म-रन्ध्र में स्थित सहस्र-दल-कमल में पत्नी के साथ अपने गुरु का तर्पण कर वाग्भव वीज 'ऐं' को आदि में जोड़कर गुरु-चतुष्टय अर्थात् १ गुरु, २ परम गुरु, ३ परापर गुरु और ४ परमेष्ठी गुरु के नामों को उच्चारण करते हुए तर्पण करे (५०)।

मन्त्रज्ञ व्यक्ति, इसके बाद, अपने हृदय-कमल में भोग-पात्रस्थ अमृत से पहले **'आत्म-वीज'**—'ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा' फिर **'आद्यां कालीं तर्पयामि'** और अन्त में **'स्वाहा'**—इस मन्त्र से तीन बार इष्ट-देवता का तर्पण करे। इसी प्रकार शक्ति-पात्र के अमृत से अङ्ग-देवताओं और आवरण-देवताओं का तर्पण करे (५१-५२)।

योगिनी-पात्रस्थ अमृत से अस्त्र एवं परिकर के सहित वर्तमान आद्या कालिका का तर्पण कर बटुकादि को पंच-बलियाँ प्रदान करे (५३)।

१—सुधी व्यक्ति अपने बाईं ओर एक सामान्य चतुष्कोण-मण्डल बनाए। फिर उसकी पूजा कर उस पर मद्य-युक्त सामिष अन्न स्थापित करे (५४)। वाक्—'ऐं', माया—'ह्रीं', कमला—'श्रीं' और 'वं' के बाद **'बटुकाय नमः'**— इस मन्त्र से मण्डल के पूर्व-भाग में बटुक को बलि दे (५५)।

२—तदनन्तर **'यां योगिनीभ्यः स्वाहा'** इस मन्त्र से मण्डल के दक्षिण में योगिनियों को बलि दे (५६)।

३—फिर छः दीर्घ-स्वर-युक्त सम्वर्त्त (क्ष) अर्थात् 'क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः' के बाद **'क्षेत्र-पालाय नमः'** इस मन्त्र से मण्डल के पश्चिम में क्षेत्रपाल को बलि दे (५७)।

४—छः दीर्घ स्वर-युक्त **'ख'** वर्ण के अन्त के वीज (ग) अर्थात् **'गां गीं गूं गैं गौं गः'** का उद्धार कर चतुर्थी के एक-वचनान्त 'गणपति' शब्द—**'गणपतये'** का उच्चारण कर वह्निजाया—**'स्वाहा'** कह कर इस मन्त्र से मण्डल की उत्तर दिशा में गणेश को बलि दे।

५—इसी प्रकार मण्डल के मध्य भाग में यथा-विधि सर्व-भूत को बलि दे (५८)। **'ह्रीं श्रीं सर्व'** इस पद का उच्चारण कर **'विघ्न-कृद्भ्यः'** पद का उच्चारण करे। फिर **'सर्व-भूतेभ्यः'** यह पद कहकर **'हूँ फट् स्वाहा'** इस प्रकार उच्चारण करे! यही सर्व-भूत का बलि-मन्त्र कहा गया है (५९-६०)।

इसके बाद निम्न मन्त्र पढ़कर यथा-विधि शिवा को एक बलि प्रदान करे—

गृह्ण देवि ! महा-भागे ! शिवे ! कालाग्नि-रूपिणि ! शुभाशुभ फलं व्यक्तं ब्रूहि गृह्ण बलिं तव 'मूलं' (ह्रीं श्रीं इत्यादि) एष बलिः शिवायै नमः।

अर्थात् हे देवि ! हे महा-भागे ! हे शिवे ! हे कालाग्नि-रूपिणि ! ग्रहण करो ! मेरे शुभ-अशुभ को स्पष्ट रूप से बताओ। अपनी बलि ग्रहण करो। यह बलि शिवा को देता हूँ।

हे शिवे ! यह मैंने चक्रानुष्ठान तुमसे बताया है (६१-६२)।

तदनन्तर चन्दन, अगरु, कस्तूरी द्वारा अति सुगन्धित पुष्प को कच्छप-मुद्रा-युक्त दोनों हाथों में लेकर अपने हृदय-पद्म में परात्परा काली को लाकर ध्यान करे (६३-६४)। फिर सुषुम्ना-रूप ब्रह्म-पथ से भगवती को सहस्रार के महा-पद्म में ले जाकर निर्मल सुधा से उसे आनन्दित कर गहरे निःश्वास-रूप पथ के द्वारा जैसे एक दीप से दूसरा दीप प्रज्वलित होता है, उसी प्रकार भगवती को अपने हाथों में स्थित उक्त पुष्प में संक्रमित करते हुए उसे यन्त्र में स्थापित कर मन्त्रज्ञ व्यक्ति गहरी भक्ति के साथ हाथ जोड़कर इष्ट-देवता से प्रार्थना करे (६५-६६)—

देवेशि ! भक्ति-सुलभे ! परिवार-समन्विते ! यावत् त्वां पूजयिष्यामि तावत् त्वं सुस्थिरा भव ।।

अर्थात् हे देवेशि ! हे भक्ति-सुलभे ! हे बहु-परिवार-वृते ! मैं जब तक तुम्हारी पूजा करूँ, तब तक तुम सुस्थिर होकर रहो (६७)।

'क्रीं आद्ये कालिके देवि ! परिवारादिभिः सह इहागच्छ इहागच्छ।'

यह कहकर निम्न मन्त्र का उच्चारण करे—

इह तिष्ठ इह तिष्ठ, इह सन्निधेहि, इह सन्निरुद्धस्व, मम पूजां गृहाण।

इस प्रकार देवी का आवाहन कर प्राण-प्रतिष्ठा करे (६८-७०)। यथा—

आं ह्रीं क्रों श्रीं स्वाहा आद्या-काली-देवतायाः प्राणा इह प्राणाः, आं ह्रीं क्रों श्रीं स्वाहा आद्या-काली-देवतायाः जीव इह स्थितः, आं ह्रीं क्रों श्रीं स्वाहा आद्या-काली-देवतायाः सर्वेन्द्रियाणि, आं ह्रीं क्रों स्वाहा आद्या-काली-देवतायाः वाङ्-मनो-नयन-घ्राण-श्रोत्र-त्वक्-प्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।

अर्थात् आद्या काली के प्राण इस स्थान में प्राण, आद्या काली की जीवात्मा इस स्थान में रहे, आद्या काली की सभी इन्द्रियाँ, आद्या काली के वाक्य, मन, चक्षु, नासा, कर्ण, त्वक् और प्राण यहाँ आकर बहु काल तक सुख से रहें (७१-७४)।

इस प्रकार प्राण-प्रतिष्ठा-मन्त्र का तीन बार पाठ कर लेलिहान-मुद्रा से यन्त्र के मध्य में देवी को प्राण-प्रतिष्ठा कर हाथ जोड़कर निम्न मन्त्रों से उनका स्वागतादि करे (७५)—

आद्ये कालि ! स्वागतं ते सुस्वागतमिदं तव। आसनं चेदमत्र त्वयाऽऽस्यतां परमेश्वरि !

अर्थात् हे आद्ये कालि ! तुम्हारा स्वागत है, यह तुम्हारा सुस्वागत है। यह तुम्हारा आसन है। हे परमेश्वरि ! तुम यहाँ विराजो (७६)।

फिर देवता-शुद्धि के निमित्त तीन बार मूल-मन्त्र का उच्चारण कर विशेषार्घ्य-जल से देवी को प्रोक्षित करे। तब षडङ्ग-मन्त्र से सकलीकरण करे। देवता के अङ्गों में षडङ्ग-न्यास करना ही सकलीकरण है। इसके बाद षोडश उपचारों से देवी की पूजा करे (७७)।

१. पाद्य, २. अर्घ्य, ३. आचमनीय, ४. स्नान, ५. वसन, ६. भूषण, ७. गन्ध, ८. पुष्प, ९. धूप, १०. दीप, ११. नैवेद्य, १२. पुनः आचमनीय, १३. अमृत, १४. ताम्बूल, १५. तर्पण, १६. नमस्कार—देवी-पूजा के समय यही षोडश उपचार प्रयोग करे (७८-७९)।

आद्या-बीज—'ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा'—'इदं पाद्यं आद्यायै काल्यै नमः।' इस मन्त्र से दोनों चरणों में पाद्य प्रदान करे। फिर इसी प्रकार ('नमः' पद में परिवर्तन करते हुए) अन्त में 'स्वाहा' लगाकर मस्तक पर अर्घ्य निवेदित करे। ज्ञानी साधक इसी प्रकार अन्त में 'स्वधा' लगाकर मुख में आचमनीय और उक्त मन्त्र से देवी के मुख-कमल में मधुपर्क प्रदान करे। इसी मन्त्र के अन्त में ('स्वधा' के स्थान पर) 'निवेदयामि' लगाकर देवी के सर्वाङ्ग में स्नानीय, वस्त्र, भूषण—ये सब प्रदान करे (८०-८२)।

सर्व-प्रथम मन्त्र के समान अन्त में 'नमः' जोड़कर मध्यमा-अनामिका से देवी के हृदय-कमल में गन्ध लगावे। फिर 'नमः' के स्थान में 'वौषट्' लगाकर पुष्प प्रदान करे (८३)।

तब धूप, दीप को सामने स्थापित कर प्रोक्षणादि से उन्हें संशोधित कर मन्त्र के अन्त में ('वौषट्' के स्थान में) 'निवेदयामि' लगाकर उन्हें देकर ज्ञानी व्यक्ति निम्न मन्त्र से घण्टा की पूजा करे—

जय-ध्वनि-मन्त्र-मातः स्वाहा।

फिर बाँएँ हाथ से घण्टा बजाते हुए दाएँ हाथ से धूप लेकर देवी की नासिका के निकट रखकर दीपक को देवी के सम्मुख नेत्रों तक दस बार घुमावे (८४-८६)।

तब पान-पात्र एवं शुद्धि (मांसादि) दोनों हाथों में ले मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए यन्त्र के मध्य में निवेदित कर, निम्न मन्त्र से प्रार्थना करे (८७)। यथा—

परमं वारुणी-कल्पं कोटि-कल्पान्त-कारिणि ! गृहाण शुद्धि-सहितं देहि मे मोक्षमव्ययम् ।

अर्थात् हे कोटि-कल्पान्त करनेवाली ! इस श्रेष्ठ वारुणी-कल्प को शुद्धि के साथ ग्रहण करो और मुझे अक्षय मुक्ति प्रदान करो (८८)।

इसके बाद सामान्य विधि से अपने सामने मण्डल लिखकर उस पर नैवेद्य-पूर्ण पात्र को स्थापित करे (८९) फिर 'फट्' से नैवेद्य का प्रोक्षण, 'हुं' से अवगुण्ठन, 'फट्' से रक्षाकरण, 'वं' से अमृतीकरण कर मूलमन्त्र से सात बार उसे अभिमन्त्रित कर अर्घ्य-जल द्वारा उसे निवेदित करे (९०)। यथा—

मूलं एतत्तु सिद्धान्नं सर्वोपकरणान्वितम्। निवेदयामीष्ट-देव्यै जुषाणेदं हविः शिवे !

अर्थात् सभी सामग्रियों से युक्त पके हुए अन्न को इष्ट-देवता के लिए निवेदन करता हूँ। हे शिवे ! इस 'हवि' (भोज्य-पदार्थ) को ग्रहण करो (९१)।

इसके बाद प्राणादि पञ्च-मुद्राएँ दिखाकर देवी को हवि (भोज्य पदार्थ) को खिलावे (९२)। फिर बाएँ हाथ से प्रस्फुटित पद्माकृति वाली नैवेद्य-मुद्रा दिखाये। तब मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए पीने के लिए तीर्थ (सुरा) से पूर्ण कलश एवं पुनराचमनीय निवेदन कर श्रीपात्र के अमृत से तीन बार तर्पण करे (९३-९४)।

साधक मूल-मन्त्र से देवी के शिर, हृदय, मूलाधार, दोनों चरणों और सर्वाङ्ग में पाँच पुष्पाञ्जलियाँ अर्पित कर हाथ जोड़कर प्रार्थना करे। यथा—

तव आवरण-देवान् पूजयामि नमः ।

अर्थात् तुम्हारे आवरण देवताओं की पूजा करता हूँ (९५-९६)।

यन्त्र के अग्नि, नैऋत्य, वायु, ईशान कोणों में, सामने और पीछे के भाग में क्रमशः षडङ्ग-पूजा कर गुरु-पंक्ति की अर्चना करे (९७)। गुरु, परम-गुरु, परापर-गुरु और परमेष्ठि-गुरु—इन सब कुल-गुरुओं की पूजा करे (९८)। गुरु-पात्र के अमृत से तीन-तीन बार इनका तर्पण करे। तर्पण मन्त्र—ॐ **गुरुं तर्पयामि नमः**, ॐ **परम-गुरुं तर्पयामि नमः**, ॐ **परापर-गुरुं तर्पयामि नमः**, ॐ **परमेष्ठि-गुरुं तर्पयामि नमः**।

इसके बाद अष्ट-दलों के मध्य में अष्ट-नायिकाओं की पूजा करे (९९)। १. मङ्गला, २. विजया, ३. भद्रा, ४. जयन्ती, ५. अपराजिता, ६. नन्दिनी, ७. नारसिंही और ८. कौमारी—ये ही अष्ट-मातायें हैं (१००)। पूजन-मन्त्र— '**ॐ मङ्गलायै नमः**' इत्यादि।

साधक-श्रेष्ठ दलों के अग्र-भाग में १. असिताङ्ग, २. रुरु, ३. चण्ड, ४. क्रोधोन्मत्त, ५. भयङ्कर, ६. कपाली, ७. भीषण और ८. संहार—इन अष्ट-भैरवों की पूजा करे (१०१-१०२)।

भूपुर के मध्य में इन्द्रादि दश दिक्पालों की पूजा करे और उसके बहिर्भाग में दिक्पालों के अस्त्रों की पूजा करे। फिर दिक्पालों का तर्पण करे (१०३)।

इसी प्रकार एकाग्र-चित्त से पाद्यादि सभी उपचारों से देवी की पूजा कर बलि प्रदान करे (१०४)। १. मृग, २. छाग, ३. मेष, ४. महिष, ५. शूकर, ६. शल्लकी, ७. शशक, ८. गोधा, ९. कूर्म, १०. गण्डार ये दस

पशु (बलि के लिए प्रशस्त) कहे गये हैं (१०५)। साधक की इच्छानुसार अन्यान्य पशुओं की भी बलि दी जा सकती है (१०६)। मन्त्रज्ञ साधक रोगादि-शून्य सुलक्षण पशु को देवी के सम्मुख स्थित कर अर्घ्य जल से उसका प्रोक्षण और धेनु-मुद्रा से अमृतीकरण कर **'छागाय पशवे नमः'** मन्त्र से यथा-सम्भव गन्ध, सिन्दूर, पुष्प, नैवेद्य और जल से उसकी पूजा कर पशु के दाएँ कान में पशु-पाश-विमोचनी पशु-गायत्री का जप करे (१०७-१०८)। यथा—

पशु-पाशाय विद्महे, विश्व-कर्मणे धीमहि, तन्नो जीवः प्रचोदयात्।

तब श्रेष्ठ साधक खड्ग को लेकर कूर्च-बीज 'हूँ' से क्रमशः खड्ग के अग्र, मध्य और मूल प्रदेश में वागीश्वरी-ब्रह्मा, लक्ष्मी-नारायण और उमा-महेश्वर की पूजा करे (१०६-११२)। फिर निम्न मन्त्र से खड्ग की पजा करे (११३)—

ब्रह्म-विष्णु-शिव-शक्ति-युताय खड्गाय नमः।

तदनन्तर महा-वाक्य द्वारा पशु का उत्सर्ग कर हाथ जोड़कर प्रार्थना करे (११४)—

यथोक्तेन विधानेन तुभ्यमस्तु समर्पितम्।

इस प्रकार विधि-पूर्वक निवेदन कर पशु को भूमि पर स्थित करे (११५) देवी-भक्ति-परायण होकर तीक्ष्ण प्रहार से पशु का छेदन करे। पशु-छेदन स्वयं, भ्राता, भ्रातृ-पुत्र, सुहृद् या सपिण्ड इन सबके द्वारा कर्त्तव्य है। शत्रु-पक्ष को इस कार्य में कभी न लगाए (११६)। फिर **'एष कवोष्ण-रुधिर-बलिः ॐ बटुकेभ्यो नमः'** इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए कुछ उष्ण (तुरन्त निकले हुए) रुधिर को बलि प्रदान करे और **'एष स-प्रदीप शीर्ष-बलिः ॐ ह्रीं देव्यै नमः'** से देवी को शीर्ष-बलि प्रदान करे (११७)। कौलिकों के कुलार्चन में इसी प्रकार बलि-विधि कही गई है। इसे किए बिना देवता की प्रीति कदापि नहीं मिलती (११८)।

हे प्रिये! इसके बाद होम करे। उसकी विधि बताता हूँ, सुनो (११९)। श्रेष्ठ साधक अपनी दाईं ओर बालुका-राशि से चार हाथ लम्बा-चौड़ा चतुष्कोण-मण्डल बनाकर मूल-मन्त्र से वीक्षण, अस्त्र (**फट्**) से ताड़न, उसी से प्रोक्षण और कूर्च-बीज 'हूं' से अवगुण्ठन कर देवता-नाम का उच्चारण करते हुए **'स्थण्डिलाय नमः'** से स्थण्डिल की पूजा करे (१२०-१२१)। फिर स्थण्डिल में प्रादेश-बराबर तीन पूर्वाग्र और तीन उत्तराग्र रेखाएँ बनाए और उन पर निम्न देवताओं की पूजा करे (१२२)। पूर्वाग्र तीन रेखाओं में मुकुन्द, ईश, पुरन्दर और उत्तराग्र तीन रेखाओं में ब्रह्मा, वैवस्वत और इन्दु की क्रमशः पूजा करे (१२३)। फिर साधक स्थण्डिल के मध्य में त्रिकोण-मण्डल बनाए, जिसके मध्य में **'हसौः'** लिखे। त्रिकोण-मण्डल के बाहर षट्कोण, उसके बाहर वृत्त और उसके बाहर अष्ट-दल पद्म तथा उसके बाहर भूपुर लिखे। इस प्रकार उत्तम यन्त्र की रचना करे (१२४)। फिर मूल-मन्त्र से पुष्पाञ्जलि देकर यन्त्र की पूजा कर प्रणव से होम-द्रव्य का प्रोक्षण करे। अष्ट-दल पद्म की कर्णिका में माया-बीज **'ह्रीं'** से आधार-शक्तियों की एक बार में पूजा करे या अलग-अलग उनकी पूजा करे (१२५)। यन्त्र के अग्नि आदि चार कोणों में धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य की और पूर्वादि चार दिशाओं में अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्य की क्रमशः पूजा कर साधक मध्य में अनन्त, पद्म, कला-सहित सूर्य और सोम-मण्डलों की पूजा कर प्रागादि केशरों में क्रमशः अग्नि की जिह्वाओं की पूजा करे—पीता, श्वेता, अरुणा, कृष्णा, धूम्रा, तीव्रा, स्फुलिङ्गिनी, रुचिरा, ज्वलिनी (१२६-१२६)।

सर्वत्र देवताओं के नाम के आदि में प्रणव और अन्त में **'नमः'** लगाकर पूजा करे।

'रं वह्नेरासनाय नमः' इस मन्त्र से वह्नि के आसन को पूजा करे (१३०)। फिर साधक ऋतु-स्नाता, नील-नलिनी-लोचना, वागीश्वर-युता वागीश्वरी देवी का ध्यान कर उक्त वह्न्यासन में माया-वीज **'ह्रीं'** से उन वागीश्वर और वागीश्वरी की पूजा करे। तब विधि-पूर्वक अग्नि को लाकर मूल-मन्त्र से उसका वीक्षण और **'फट्'** से आवाहन करे (१३१-१३२)।

'ॐ वह्नेर्योग-पीठाय नमः' से वह्नि-पीठ की पूजा कर पीठ पर पूर्वादि चार दिशाओं में वामा, ज्येष्ठा, रौद्री और अम्बिका की क्रमशः पूजा करे (१३३)। तब **'अमुक्या देवतायाः स्थण्डिलाय नमः'** से स्थण्डिल की पूजा कर उसके मध्य में मूल-रूपिणी वागीश्वरी देवी का ध्यान कर वह्नि-वीज **'रं'** का उच्चारण कर अग्नि को उठाकर **'मूलं हूं फट् क्रव्यादेभ्यो स्वाहा'** से राक्षस-गण को देय अंश दक्षिण दिशा में डाल दे।

तदनन्तर अस्त्र-वीज **'फट्'** से अग्नि का वीक्षण कर, कूर्च-वीज **'हूं'** से अवगुण्ठन (तर्जनी घुमाकर वह्नि-वेष्ठन) करे (१३४-१३६)। धेनु-मुद्रा से अमृतीकरण कर दोनों हाथों से अग्नि को उठाकर प्रदक्षिण-क्रम से स्थण्डिल के ऊपर उसे तीन बार घुमाकर अग्नि को शम्भु-वीर्य समझते हुए, घुटनों से भूमि को स्पर्श करते हुए, निजाभिमुख कर योनि-यन्त्र के ऊपर स्थापित करे (१३७-१३८)।

इसके बाद साधक **'ह्रीं वह्नि-मूर्तये नमः'** से और **'रं वह्नि-चैतन्याय नमः** से वह्नि-मूर्ति और वह्नि-चैतन्य की पूजा करे। **'नमः'** मन्त्र से वह्नि-मूर्ति और वह्नि-चैतन्य की भावना मन ही मन करते हुए निम्न मन्त्र से अग्नि को प्रज्वलित करे (१३६-४०)—

ॐ चित्पिङ्गल हन हन, दह दह, पच पच, सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा।

इसी मन्त्र से अग्नि जलाने का निर्देश है। फिर हाथ जोड़कर अग्नि की वन्दना करे (१४१-४२)—

अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्। सुवर्ण-वर्णममलं समिद्धं सर्वतोमुखम्॥

अर्थात् प्रज्वलित, सुवर्ण-तुल्य, निर्मल, प्रदीप्त और सर्वतोमुख, जातवेद, हुताशन की मैं वन्दना करता हूँ (१४३)।

इस प्रकार अग्नि की वन्दना कर कुश से स्थण्डिल को आच्छादित करे। फिर अपने इष्ट-देवता का नाम लेकर वह्नि-नाम का उच्चारण कर अभ्यर्थना करे (१४४)। यथा—

ॐ वैश्वानर ! जातवेद ! इहावहावह लोहिताक्ष ! सर्व-कर्माणि साधय स्वाहा।

तब हिरण्यादि सात जिह्वाओं का पूजन करे (१४५)। फिर बुद्धिमान साधक **'सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः'** से हृदयादि वह्नि-षडङ्ग की पूजा कर वह्नि-मूर्ति की पूजा करे (१४६-४७)। जातवेद आदि वह्नि की अष्ट-मूर्तियाँ पहले ही बताई हैं (१४८)। फिर ब्राह्मी आदि अष्ट-शक्तियों की पूजा कर पद्मादि अष्ट-निधियों की पूजा कर इन्द्रादि दिक्-पतियों की पूजा करे (१४९)। इसी प्रकार दिक्-पतियों के वज्रादि अस्त्रों की पूजा कर प्रादेश-बराबर दो कुश-पत्र लेकर घृत के मध्य में स्थापित करे (१५०)। घृत के बाईं ओर इडा, दाईं ओर पिंगला और मध्य में सुषुम्ना नाड़ी का ध्यान कर एकाग्र-चित्त से दाईं ओर से घी लेकर निम्न मन्त्रों से अग्नि के दाएँ नेत्र में आहुति प्रदान करे (१५१)— **ॐ अग्नये स्वाहा।**

फिर बाईं ओर से घी लेकर अग्नि के बाएँ नेत्र में आहुति दे (१५२-१५३)—**ॐ सोमाय स्वाहा।**

तब मध्य भाग से घी लेकर अग्नि के ललाट में आहुति दे—**ॐ अग्नी-षोमाभ्यां स्वाहा।**

इसके बाद **'नमः'** से दाएँ भाग से पुनः घी लेकर अग्नि के मुख में होम करे—

ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा ।

फिर तीन व्याहृतियों से होम करे (१५४-१५६)। यथा—

ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा ।

तदनन्तर निम्न मन्त्र से तीन आहुतियाँ प्रदान करे (१५७)—

ॐ वैश्वानर ! जातवेद ! इहावहावह लोहिताक्ष ! सर्व-कर्माणि साधय स्वाहा ।

इसके बाद अग्नि में अपने इष्ट-देवता का आवाहन कर पीठादि-सहित उसकी पूजा कर स्वाहान्त मूल-मन्त्र (**मूलं स्वाहा**) से अग्नि के मध्य में पचीस आहुतियाँ प्रदान करे और अपनी बुद्धि द्वारा वह्नि, देवी एवं अपनी आत्मा के ऐक्य-भाव का चिन्तन करता हुआ मूल-मन्त्र से ग्यारह आहुतियाँ अंग-देवता के उद्देश्य से प्रदान करे। तदनन्तर अपनी कामना-पूर्ति के लिए तिल, घृत और मधु-मिश्रित पुष्प, बिल्व-दल अथवा यथा-विहित वस्तु द्वारा यथा-शक्ति आहुतियों से होम करे। आठ से कम आहुतियाँ न दे (१५८-१६१)।

अन्त में स्वाहान्त मूल-मन्त्र से अग्नि में फल और ताम्बूल से युक्त पूर्णाहुति प्रदान करे। फिर संहार-मुद्रा से देवी का अग्नि से लाकर हृदय-कमल में स्थापित करे (१६२)। तब '**अग्ने क्षमस्व**' कहकर अग्नि का विसर्जन करे। फिर दक्षिणा देकर अच्छिद्रावधारण करे (१६३)। इसके बाद हवन से शेष द्रव्य अर्थात् घृत-मिश्रित भस्म को दोनों भौंहों के मध्य में धारण करे (१६४)।

सभी आगम-कर्मों में इसी प्रकार होम को विधि कही है। होम-कर्म समाप्त कर साधक जप करे (१६५)।

हे देवेशि ! जिस प्रकार विद्या प्रसन्न होती है, मैं उस प्रकार के जपानुष्ठान का विधान बताता हूँ, सुनो। मन-ही-मन देवता, गुरु और मन्त्र के ऐक्य का चिन्तन करे (१६६)। मन्त्र-वर्ण को देवता कहा गया है और देवता गुरु-रूपिणी है। जो व्यक्ति इन तीनों में अभेद जानता हुआ पूजा करता है, उसे उत्तम सिद्धि मिलती है (१६७)। मस्तक में गुरु का ध्यान कर हृदय-कमल में देवता का और जिह्वा में तेजोरूपा मूल-मन्त्रात्मिका विद्या का ध्यान कर गुरु, देवता और मूल-मन्त्र—इन तीनों के तेज द्वारा एकीभूत आत्मा का ध्यान करे (१६८)।

मूल-मन्त्र को प्रणव से सम्पुटित कर उसका सात बार जप करे। फिर मातृका से पुटित कर उसे सात बार स्मरण करे (१६९)। चतुर साधक अपने शिरोदेश में माया-बीज 'ह्रीं' का दस बार जप करे। उसी प्रकार अपने मुख में दस बार प्रणव का जप करे। पुनः हृदय-कमल में सात बार माया-बीज का जप कर प्राणायाम करे (१७०)। तदनन्तर प्रवाल (मूँगा) आदि से बनी माला लेकर निम्न मन्त्र से उस माला की पूजा करे—

माले ! माले ! महा-माले ! सर्व-शक्ति-स्वरूपिणि ! चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ॥

अर्थात् हे माले ! हे माले ! हे महा-माले ! हे सर्व-शक्ति-स्वरूपिणि ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों वर्ग तुममें विन्यस्त हैं। इसलिए तुम मुझे सिद्धि प्रदान करो।

इस मन्त्र से माला की पूजा कर मूलमन्त्र का उच्चारण कर श्रीपात्र के अमृत से तीन बार माला का तर्पण कर स्थिर-चित्त से एक सहस्र आठ या एक सौ आठ बार मूल-मन्त्र का जप करे (१७१-१७३)। तब प्राणायाम कर श्रीपात्र के जल और पुष्प द्वारा देवी के बाएँ कर-कमल में निम्न मन्त्र से तेजोरूप जप-फल समर्पित करे—

गुह्याति-गुह्य-गोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्-कृतं जपम् । सिद्धिर्भवतु मे देवि! त्वत्-प्रसादान्महेश्वरि ॥

अर्थात् हे देवि ! हे महेश्वरि ! तुम गुह्या, अति गुह्या और रक्षा-कर्त्री हो। तुम मेरे किए हुए जप को ग्रहण करो। तुम्हारे प्रसाद से मुझे सिद्धि मिले।

इस प्रकार समर्पण कर पृथ्वी पर प्रणाम करे। तब हाथ जोड़कर **'स्तव'** और **'कवच'** का पाठ करे (१७४-१७६)। फिर प्रदक्षिणा करके विलोम मन्त्र का उच्चारण करते हुए संस्थापित विशेषार्घ्य से विलोमार्घ्य प्रदान कर निम्न मन्त्र से आत्म-समर्पण करे—

इतः पूर्वं प्राण-बुद्धि-देह-धर्माधिकारतः, जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्त्यवस्थासु, मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यां उदरेण शिश्नया यत् कृतं, यत् स्मृतं, यदुक्तं, तत् सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु। मां मदीयं सकलं आद्या-काली-पदाम्भोजे अर्पयामि ॐ तत् सत्।

अर्थात् इसके पूर्व प्राण-बुद्धि-देह-धर्म के अधिकार में जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं में मन, वाक्य, कर्म, दोनों हाथों, दोनों पैरों, उदर और उपस्थ द्वारा यथा-सम्भव जो कुछ किया गया, स्मरण हुआ और कहा गया—वह सभी ब्रह्म को अर्पित हो। मैं और वह सभी वस्तु, जो मेरी कहकर अभिमान होता है, आद्या-काली के श्रीचरण-कमलों में अर्पित करता हूँ।

यही **'आत्म-समर्पण मन्त्र'** है (१७७-१८१)। इसके बाद हाथ जोड़कर इष्ट-देवता से प्रार्थना करे—

ह्रीं श्रीआद्ये कालिके ! यथा-शक्त्या पूजितासि, क्षमस्व।

इस प्रकार विसर्जन कर संहार-मुद्रा से गृहीत पुष्प को सूँघ कर इष्ट-देवता को अपने हृदय में स्थापित करे (१८२-८३)। तब ईशान-कोण में एक सुन्दर त्रिकोण-मण्डल बनाकर उस पर निर्माल्य पुष्प और जल द्वारा निम्न मन्त्र से निर्माल्य-वासिनी देवी की पूजा करे (१८४)—**ह्रीं निर्माल्य-वासिन्यै नमः।**

इसके बाद साधक ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि सभी देव-गण को नैवेद्य बाँट कर फिर स्वयं ग्रहण करे (१८५)।

अपने बाईं ओर भिन्न आसन पर अपनी शक्ति को बैठाकर अथवा उसके साथ एक ही आसन पर बैठकर पानादि मनोरम पात्र स्थापित करे (१८६)। पात्र का परिमाण पाँच तोले से अधिक और तीन तोले से कम न हो। स्वर्ण, रजत, काच या नारिकेल का पात्र बनवाए। शुद्धि-पात्र के दाईं ओर आधार के ऊपर उसे स्थापित कर साधक महा-प्रसाद को लाकर स्वयं या भाई या पुत्र द्वारा ज्येष्ठता के क्रम से पात्रों में उसे रखवाए (१८७-१८९)। पान-पात्र में सुधा और शुद्धि-पात्र में शुद्धि (मांस-मत्स्यादि) प्रदान करे। तब देवी-पूजा के समय आए हुए लोगों के साथ पान-भोजन करे (१९०)।

पहले आस्तरण के लिए उत्तम शुद्धि ग्रहण करे। फिर सभी कुल-साधक अत्यन्त आनन्द-चित्त से उत्कृष्ट मद्य से पूरित अपने-अपने पात्र लेकर मूलाधार से जिह्वा तक व्याप्त चैतन्य-स्वरूपा **'कुल-कुण्डलिनी'** का ध्यान कर उसके मुख-कमल में, मूल-मन्त्र का उच्चारण करते हुए, एक-दूसरे की अनुमति लेकर परमामृत को होम करे। (१९१-९३)। कुल-स्त्रियों के लिए मद्य की गन्ध का ग्रहण करना ही अलि-पान है। गृहस्थ साधकों के लिए पञ्च-पात्र तक मद्य-पान करना अलि-पान कहा गया है। कुल-साधकों के लिए अतिरिक्त पान करना सिद्धि-हानि-कारक होता है (१९४-९५)। जब तक दृष्टि में चंचलता न हो, तभी तक पान करना चाहिए। इससे अधिक पान पशु-पान के समान है (१९६)। पान करने से जिसके चित्त में व्याकुलता हो और जो शक्ति-साधक से घृणा करे, वह किस प्रकार यह कह सकता है कि 'मैं आद्या काली का भजन करता हूँ (१९७)?' जिस प्रकार ब्रह्म को समर्पित अन्नादि के छूने में दोष नहीं है (अर्थात् जाति-भेद वर्जित रहता है), उसी प्रकार तुम्हारे प्रसाद के सम्बन्ध में जाति-भेद का विचार न करे (१९८)। इसी प्रकार विधि के अनुसार पान-भोजन करे। तुम्हारे नैवेद्य के सेवन में हाथ धोने की विधि नहीं है। वस्त्र या जल से हस्त-लेप को दूर करे (१९९)। तदनन्तर बुद्धिमान साधक मस्तक पर निर्माल्य-पुष्प को धारण कर लेप-द्रव्य को भ्रू-मध्य में धारण करे और देव-तुल्य होकर भू-तल पर विचरण करे (२००)।

●●

सातवाँ उल्लास : स्तोत्र, कवच और कुल-तत्व के लक्षणों का कथन

महा-फल-जनक, सौभाग्य और मोक्ष-प्रद, ब्रह्म-ज्ञान के लाभ का अद्वितीय साधन आद्या-काली का मन्त्रोद्धार, प्रातःकृत्य, स्नान, सन्ध्या, सम्विदा-शोधन, बाह्य और मानस-भेद से न्यास एवं पूजा-विधान, बलिदान, होम, भैरवी और तत्त्व-चक्रानुष्ठान तथा मुद्रा-प्रसाद-ग्रहण को सुनकर प्रसन्न-चित्ता पार्वती देवी ने विनय से झुककर शंकर से कहा (१-३)—

हे सदाशिव ! हे जगन्नाथ ! हे जगत् के हितकर्त्ता ! हे देव ! तुमने कृपा के वशीभूत होकर मुझसे प्राणियों के लिए हितकर, भोग और मोक्ष के अद्वितीय साधन—विशेषकर कलियुग में जीवों के लिए शीघ्र सिद्धि-दायक परमा प्रकृति का साधन बताया है (४-५)। तुम्हारे वाक्य-रूपी अमृत-सागर में क्रमशः निमग्न-प्राय मेरा मन कुछ-कुछ ऊपर उठने के लिए चेष्टा नहीं करता, अपितु पुनः उसे प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करता है (६)। महादेवी की पूजा-विधि में स्तोत्र और कवच-पाठ की सूचना दी है किन्तु उन्हें प्रकाशित नहीं किया है। हे देव ! इस समय उन्हें प्रकट करें (७)।

श्री सदाशिव ने कहा—हे जगद्-वन्द्ये ! हे देवि ! यह सर्वोत्तम स्तोत्र कहता हूँ, सुनो, जिसका पाठ या श्रवण करने से व्यक्ति सर्व-सिद्धियों का ईश्वर होता है (८)। इसके द्वारा असौभाग्य का नाश और सुख-सम्पत्ति का वर्द्धन होता है। यह अकाल-मृत्यु को दूर करता है और आपत्तियों का निवारण करता है (९)। हे शिवे ! इस स्तोत्र से आद्या कालिका देवी का सुख-दायक सान्निध्य प्राप्त होता है। मैं इसी स्तोत्र के फल-स्वरूप 'त्रिपुरारि' हुआ हूँ (१०)। हे देवि ! इस स्तोत्र के ऋषि सदाशिव, छन्द अनुष्टुप्, देवता आद्या कालिका और विनियोग धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष इस चतुर्वर्ग के हेतु बताया गया है (११)। यथा—

विनियोग :

अस्य स्तोत्रस्य ऋषिः सदाशिवः, छन्दो अनुष्टुप्, देवता आद्या कालिका, धर्मार्थ-काम-मोक्षेषु विनियोगः ।

स्तोत्र :

ह्रीं काली श्रीं कराली च क्रीं कल्याणी कलावती । कमला कलि-दर्पघ्नी कपर्दीश-कृपान्विता ॥१॥
कालिका काल-माता च कालानल-सम-द्युतिः । कर्पादिनी करालास्या करुणामृत-सागरा ॥२॥
कृपा-मयी कृपाधारा कृपापारा कृपागमा । कृशानुः कपिला कृष्णा कृष्णानन्द-विवर्द्धिनी ॥३॥
काल-रात्रिः काम-रूपा काम-पाश-विमोचनी । कादम्बिनी कलाधारा कलि-कल्मष-नाशिनी ॥४॥
कुमारी-पूजन-प्रीता कुमारी-पूजकालया । कुमारी-भोजनानन्दा कुमारी-रूप-धारिणी ॥५॥
कदम्ब-वन-सञ्चारा कदम्ब-वन-वासिनी । कदम्ब-पुष्प-सन्तोषा कदम्ब-पुष्प-मालिनी ॥६॥

किशोरी कल-कण्ठा च कल-नाद-निनादिनी । कादम्बरी-पान-रता तथा कादम्बरी-प्रिया ॥७॥
कपाल-पात्र-निरता कङ्काल-माल्य-धारिणी । कमलासन-सन्तुष्टा कमलासन-वासिनी ॥८॥
कमलालय-मध्यस्था कमलामोद-मोदिनी । कल-हंस-गतिः क्लैव्य-नाशिनी काम-रूपिणी ॥९॥
काम-रूप-कृतावासा काम-पीठ-विलासिनी । कमनीया कल्पलता कमनीय-विभूषणा ॥१०॥
कमनीय-गुणाराध्या कोमलाङ्गी कृशोदरी । कारणामृत-सन्तोषा कारणानन्द-सिद्धिदा ॥११॥
कारणानन्द-जापेष्टा कारणार्चन-हर्षिता । कारणार्णव-सम्मग्ना कारण-व्रत-पालिनी ॥१२॥
कस्तूरी-सौरभामोदा कस्तूरी-तिलकोज्ज्वला । कस्तूरी-पूजन-रता कस्तूरी-पूजक-प्रिया ॥१३
कस्तूरी-दाह-जननी कस्तूरी-मृग-तोषिणी । कस्तूरी-भोजन-प्रीता कर्पूरामोद-मोदिता ॥१४
कर्पूर-मालाभरणा कर्पूर-चन्दनोक्षिता । कर्पूर-कारणाह्लादा कर्पूरामृत-पायिनी ॥१५
कर्पूर-सागर-स्नाता कर्पूर-सागरालया । कूर्च-बीज-जप-प्रीता कूर्च-जाप-परायणा ॥१६
कुलीना कौलिकाराध्या कौलिक-प्रिय-कारिणी । कुलाचारा कौतुकिनी कुल-मार्ग-प्रदर्शिनी ॥१७
काशीश्वरी कष्ट-हर्त्री काशीश-वर-दायिनी । काशीश्वर-कृतामोदा काशीश्वर-मनोरमा ॥१८
कल-मञ्जीर-चरणा क्वणत्-काञ्ची-विभूषणा । काञ्चनाद्रि-कृतागारा काञ्चनाचल-कौमुदी ॥१९
काम-बीज-जपानन्दा काम-बीज-स्वरूपिणी । कुमतिघ्नी कुलीनार्ति-नाशिनी कुल-कामिनी ॥२०
क्रीं ह्रीं श्रीं-मन्त्र-वर्णेन काल-कण्टक-घातिनी । इत्याद्या-कालिका-देव्याः शतनाम प्रकीर्त्तितम् ॥२१
ककार-कूट-घटितं काली-रूप-स्वरूपकम् ॥२२॥

फल-श्रुति

पूजा-काले पठेद्यस्तु कालिका-कृत-मानसः । मन्त्र-सिद्धिर्भवेदाशु तस्य कालो प्रसीदति ॥
बुद्धि विद्यां च लभते गुरोरादेश-मात्रतः । धन-वान् कीर्ति-मान् भूयाद् दान-शीलो दयान्वितः ॥
पुत्र-पौत्र-सुखैश्वर्यैर्मोदते साधको भुवि । भौमावस्या निशा-भागे म-पञ्चक-समन्वितः ॥
पूजयित्वा महाकालीमाद्यां त्रि-भुवनेश्वरीम् । पठित्वा शत-नामानि साक्षात् काली-मयो भवेत् ॥
नासाध्यं विद्यते तस्य त्रिषु लोकेषु किञ्चन । विद्यायां वाक्-पतिः साक्षात् धने धनपतिर्भवेत् ॥
समुद्र इव गाम्भीर्ये बले च पवनोपमः । तिग्मांशुरिव दुष्प्रेक्ष्यः शशि-वत् शुभ-दर्शनः ॥
रूपे मूर्त्ति-धरः कामो योषितां हृदयङ्गमः । सर्वत्र जयमाप्नोति स्तवस्यास्य प्रसादतः ॥
यं यं कामं पुरस्कृत्य स्तोत्रमेतदुदीरयेत् । तं तं काममवाप्नोति श्रीमदाद्या-प्रसादतः ॥
रणे राज-कुले द्यूते विवादे प्राण-सङ्कटे । दस्यु-ग्रस्ते ग्राम-दाहे सिंह-व्याघ्रावृते तथा ॥
अरण्ये प्रान्तरे दुर्गे ग्रह-राज-भयेऽपि वा । ज्वर-दाहे चिर-व्याधौ महा-रोगादि-संकुले ॥

बाल-ग्रहादि-रोगे च तथा दुःस्वप्न-दर्शने । दुस्तरे सलिले वापि पोते वात-विपद्-गते ॥
विचिन्त्य परमां मायामाद्यां कालीं परात्पराम् । यः पठेच्छत-नामानि दृढ़-भक्ति-समन्वितः ॥
सर्वापद्भ्यो विमुच्यते देवि सत्यं न संशयः । न पापेभ्यो भयं तस्य न रोगेभ्यो भयं क्वचित् ॥
सर्वत्र विजयस्तस्य न कुत्रापि पराभवः । तस्य दर्शन-मात्रेण पलायन्ते विपद्-गणाः ॥
स वक्ता सर्व-शास्त्राणां स भोक्ता सर्व-सम्पदाम् । स कर्त्ता जाति-धर्माणां ज्ञातीनां प्रभुरेव सः ॥
वाणी तस्य वसेद् वक्त्रे कमला निश्चला गृहे । तन्नाम्ना मानवाः सर्वे प्रणमन्ति ससम्भ्रमाः ॥
दृष्ट्या तस्य तृणायन्ते ह्यणिमाद्यष्ट-सिद्धयः । आद्या-काली-स्वरूपाख्यं शत-नाम प्रकीर्त्तितम् ॥
अष्टोत्तर-शतावृत्त्या पुरश्चर्याऽस्य गीयते । पुरस्क्रियान्वितं स्तोत्रं सर्वाभीष्ट-फल-प्रदम् ॥
शतनाम-स्तुतिमिमामाद्या-काली-स्वरूपिणीम् । पठेद् वा पाठयेद् वापि शृणुयाच्छ्रावयेदपि ॥
सर्व-पाप-विनिर्मुक्तो ब्रह्म-सायुज्यमाप्नुयात् ॥

अर्थात् १ ह्रीं-रूपा कालो, २ श्रीं-रूपा करालो और ३ क्रीं-रूपा कल्याणो । ४ कलावतो, ५ कमला, ६ कलि-दर्प-नाशिनी, ७ महादेव के प्रति कृपा-वती । ८ कालिका, ९ काल-माता अर्थात् काल की भी आदि-भूता, १० कालानल-सम-द्युति अर्थात् जिनका तेज प्रलय-कालीन अग्नि के समान है, ११ कर्पदिनी, १२ कराल-वदना, १३ करुणा-रूप अमृत के समुद्र के तुल्य अर्थात् जिनको करुणा अपार, अपरिमेय और अक्षय है । १४ कृपा-मयी, १५ कृपाधारा, १६ कृपापारा, १७ कृपागमा अर्थात् जिनकी अपनी कृपा से ही जिन्हें जान सकते हैं । १८ कृशानु अर्थात् अग्नि-रूपा, १९ कपिला, २० कृष्णा, २१ कृष्णानन्द-विवर्द्धिनी । २२ काल-रात्रि, २३ काम-रूपा, २४ काम-पाश-विमोचनी अर्थात् काम के बन्धन को काटनेवाली, २५ कादम्बिनी (मेघ-माला-रूपी), २६ कलाधारा, २७ कलि-पाप-हारिणी । २८ कुमारी-पूजन-प्रीता अर्थात् जो कुमारी-पूजन से प्रसन्न होती हैं, २९ कुमारी-पूजकालया अर्थात् कुमारी-पूजन करनेवाले के निकट ही रहती हैं । ३० कुमारी-भोजनानन्दा अर्थात् कुमारियों को भोजन कराने से आनन्दित होती हैं, ३१ कुमारी-रूप-धारिणी । ३२ कदम्ब-वन-संचारा अर्थात् कदम्ब-वन में विचरण करती हैं, ३३ कदम्ब-वन-वासिनी, ३४ कदम्ब-पुष्प-सन्तोषा अर्थात् कदम्ब के पुष्प से सन्तुष्ट होती हैं, ३५ कदम्ब-पुष्प-मालिनी अर्थात् जो कदम्ब के फूलों की माला पहिने हैं । ३६ किशोरी, ३७ कल-कण्ठा अर्थात् जिनका कण्ठ-स्वर बड़ा मधुर है, ३८ कल-नाद-निनादिनी अर्थात् कोयल के समान सुन्दर स्वरवाली, ३९ कादम्बरी-पान-रता अर्थात् मद्य-पान करती हैं, ४० कादम्बरी-प्रिया । ४१ कपाल-पात्र-निरता अर्थात् जिनका पान-पात्र नर-कपाल है, ४२ कङ्काल-माल्य-धारिणी अर्थात् जो अस्थि-माला पहिने हैं । ४३ कमलासन-सन्तुष्टा अर्थात् ब्रह्मा से सन्तुष्ट, ४४ कमलासन-वासिनी अर्थात् पद्मासीना । ४५ कमलालय-मध्यस्था, ४६ कमलामाद-मोदिनी अर्थात् कमल की सुगन्ध से जो आनन्दित होती हैं । ४७ कल-हंस-गति अर्थात् राज-हंस के समान सुन्दर चालवाली, ४८ क्लैव्य-नाशिनी अर्थात् भक्तों के दुःख को दूर करनेवाली, ४९ काम-रूपिणी, ५० काम-रूप-कृतावासा अर्थात् कामरूप-प्रदेश में जिनका निवास है, ५१ काम-पीठ-विलासिनी, ५२ कमनीया, ५३ कल्प-लता अर्थात् जो कल्प-लता के समान साधकों के अभीष्ट को पूर्ण करती है, ५४ कमनीय-विभूषणा । ५५ कमनीय-गुणाराध्या अर्थात् सुन्दर गुणों से जिनको आराधना हो सकती है । ५६ कोमलाङ्गी, ५७ कृशोदरी, ५८ कारणामृत-सन्तोषा अर्थात् मद्य-रूप अमृत से जो सन्तुष्ट होती हैं । ५९ कारणानन्द-सिद्धिदा अर्थात् कारण के पान से जो आनन्दित होती

हैं, भाव यह है कि जो यथार्थ कुल-साधक हैं, उन्हें सिद्धि देती हैं। ६० कारणानन्द-जापेष्टा अर्थात् कुल-साधक जपादि द्वारा जिनकी अर्चना करते हैं, ६१ कारणार्चन-हर्षिता अर्थात् कारण द्वारा पूजा करने से जो प्रसन्न होती हैं, ६२ कारणार्णव-संमग्ना अर्थात् त्रिलोकाधार कारण-समुद्र के अन्दर जो विद्यमान हैं, ६३ कारण-व्रत-पालिनी। ६४ कस्तूरी-सौरभामोदा अर्थात् कस्तूरी की सुगन्ध से जो प्रसन्न होती हैं, ६५ कस्तूरी-तिलकोज्ज्वला अर्थात् कस्तूरी का तिलक लगाने से जिनको कान्ति विलक्षण है, ६६ कस्तूरी-पूजन-रता अर्थात् कस्तूरी द्वारा पूजन करने से जो बहुत सन्तुष्ट होती हैं, ६७ कस्तूरी-पूजक-प्रिया अर्थात् कस्तूरी द्वारा पूजा करनेवाला उन्हें प्रिय है। ६८ कस्तूरी-दाह-जननी, ६९ कस्तूरी-मृग-तोषिणी, ७० कस्तूरी-भोजन-प्रीता, ७१ कर्पूरामोद-मोदिता अर्थात् कपूर की सुगन्ध से आनन्दित होती हैं, ७२ कर्पूर-मालाभरणा अर्थात् कपूर से सुगन्धित माला धारण करती हैं, ७३ कपूर-चन्दनोक्षिता अर्थात् जो कपूर-मिश्रित चन्दन लगाए हैं। ७४ कर्पूर-कारणाह्लादा अर्थात् कपूर-मिश्रित सुरा से जिन्हें आनन्द मिलता है। ७५ कर्पूरामृत-पायिनी अर्थात् जो कपूर से सुवासित सुरा का पान करती हैं। ७६ कर्पूर-सागर-स्नाता अर्थात् जो कपूर से सुवासित जल-राशि से स्नान करती हैं, ७७ कर्पूर-सागरालया अर्थात् जो कपूर के सागर मे रहती हैं। ७८ कूर्च-बीज-जप-प्रीता अर्थात् जो 'हूं'—वीज के जप से प्रसन्न होती हैं। ७९ कूर्च-जप-परायणा, ८० बुलीना, ८१ कौलिकाराध्या अर्थात् कौलिकों द्वारा उपास्या हैं, ८२ कौलिक-प्रिय-कारिणी अर्थात् जो कौलिकों के प्रिय कार्यों को सिद्ध करती हैं। ८३ कुलाचारा, ८४ कौतुकिनी, ८५ कुल-मार्ग-प्रदर्शिनी। ८६ काशीश्वरी, ८७ कष्ट-हर्त्री, ८८ काशीश-वर-दायिनी अर्थात् शिव को वर देनेवाली। ८९ काशीश्वर-कृतामोदा अर्थात् महादेव जिन्हें आनन्दित करते हैं, ९० काशीश्वर-मनोरमा अर्थात् शिव के मन को मोहित करनेवाली। ९१ कल-मञ्जीर-चरणा अर्थात् जिनके दोनों पैरों में मधुर शब्द करनेवाले नूपुर विराजमान हैं, ९२ क्वणन्-काञ्ची-विभूषणा अर्थात् शब्दायमान करधनी पहने हैं। ९३ कांचनाद्रि-कृतागारा अर्थात् सुमेरु-पर्वत-वासिनी, ९४ कांचनाचल-कौमुदी अर्थात् सुमेरु पर्वत की ज्योत्स्ना के स्वरूपवाली। ९५ काम-बीज-जपानन्दा अर्थात् जो 'क्लीं'—वीज के जप से प्रसन्न होती हैं, ९६ काम-बीज-स्वरूपिणी। ९७ कुमतिघ्नी अर्थात् दुर्बुद्धि-नाशिनी, ९८ कुलीनार्त्ति-नाशिनी अर्थात् कुलाचारी लोगों के दुःख दूर करती हैं, ९९ कुल-कामिनी। १०० 'क्रीं ह्रीं श्रीं' मन्त्र-वर्णों के प्रभाव से काल-कण्टक-घातिनी अर्थात् यम के भय को नष्ट करनेवाली।

हे देवि ! ककार-राशि से घटित काली-रूप के समान आद्या-कालिका देवी का यह शतनाम-स्तोत्र कहा गया है। जो व्यक्ति कालिका को मन अर्पित कर पूजा-काल में इस स्तोत्र का पाठ करता है, उसे शीघ्र ही मन्त्र-सिद्धि मिलती है और काली उस पर प्रसन्न होती हैं। गुरु के उपदेश मात्र से उसे बुद्धि और विद्या का लाभ होता है अर्थात् उसे परिश्रम नहीं करना पड़ता। वह धनवान, यशस्वी, दाता और दयालु होता है। और वह साधक पृथिवी पर पुत्र-पौत्र-सुख-ऐश्वर्य से आनन्दित रहता है।

मंगलवार अमावास्या के निशा-काल में मद्य आदि पञ्च-तत्त्वों के सहित त्रिभुवनेश्वरी आद्या काली की पूजा कर शतनाम-स्तोत्र का पाठ करने से साक्षात् काली-स्वरूप होता है। त्रिभुवन में उसे कुछ भी असाध्य नहीं रहता। विद्या में साक्षात् वृहस्पति, धन में कुबेर, गम्भीरता में समुद्र और बल में पवन के समान होता है। सूर्य के समान दुर्दर्शनीय और चन्द्रमा के समान सौम्य-दर्शन होता है। इस प्रकार मूर्तिमान कामदेव के समान होकर स्त्रियों के हृदय में वह शोभा पाता है। इस स्तव के फल-स्वरूप सर्वत्र विजय पाता है। जो-जो कामना करके इस स्तव का पाठ करेगा, श्री आद्या कालिका की कृपा से वह-वह अभीष्ट फल प्राप्त होगा। युद्ध में, राज-सभा में, द्यूत-क्रीड़ा में, विवाद (मुकदमा) में, प्राण-सङ्कट के समय में, ग्राम में आग लगने पर, दस्यु-पूर्ण स्थान में, सिंह-व्याघ्रादि हिंसक जन्तुओं से भरे स्थान में, दुर्ग में, ग्रह का भय होने पर, राज-भय होने पर, ज्वर-

दाह में, पुरानी व्याधि में, महा-रोग का आक्रमण होने पर, बाल-ग्रहादि के योग में, दुःस्वप्न देखने पर, दुस्तर समुद्र में अथवा तूफान से आई विपत्ति से ग्रस्त जहाज में, विपत्ति में जो व्यक्ति परात्परा, परमा माया, आद्या काली का ध्यान कर दृढ़ भक्ति के साथ इस शतनाम स्तोत्र का पाठ करेगा, वह सचमुच ही सभी विपत्तियों से मुक्ति पाएगा। हे देवि, इसमें संदेह नहीं। उसे किसी भी स्थान में पाप का भय, रोग का भय नहीं होगा। उसकी सर्वत्र जय होगी, कहीं भी उसकी पराजय नहीं होगी और उसके दर्शन मात्र से विपत्तियाँ दूर हो जायँगी। वह व्यक्ति सब शास्त्रों का वक्ता होगा, वह सभी सम्पत्तियों का भोग करेगा। वह जाति और धर्म का कर्त्ता होगा और जातियों का स्वामी होगा। सरस्वती उसके मुख में और लक्ष्मी स्थिर होकर उसके घर में वास करेंगी। सभी मनुष्य उसके नाम को सुनकर ही सादर उसे प्रणाम करेंगे। अणिमादि सिद्धियाँ उसके दर्शन-मात्र से ही तृण-वत् प्रतीत होंगी अर्थात् ऐसे पुरुष के दर्शन मात्र से अणिमादि अष्ट सिद्धियाँ या उनसे भी अधिक कोई भी विषय सुलभ होगा। यह 'आद्या काली स्वरूप' नामक शतनाम स्तोत्र कहा गया।

इस स्तोत्र का पुरश्चरण १०८ बार पाठ करने से होता है। पुरश्चरण करने से यह स्तोत्र सभी अभीष्ट फलों को देता है। जो व्यक्ति इस आद्या-काली-स्वरूपिणी शतनाम-स्तुति का पाठ करता है, या इसका पाठ कराता है; इसे सुनता है या सुनवाता है, वह सब पापों से छूटकर ब्रह्म के सायुज्य को प्राप्त करता है। श्री सदाशिव ने कहा कि हे देवि ! तुमसे परंब्रह्म-स्वरूप प्रकृति का महत् स्तोत्र मैंने कहा। (१२-५४)

अब आद्या श्री कालिका के **'कवच'** को सुनो। इस **'त्रैलोक्य-विजय कवच'** के ऋषि शिव, छन्द अनुष्टुप्, देवता आद्या काली, बीज माया (ह्रीं), शक्ति रमा-वीज (श्रीं), कीलक **'क्रीं'** और विनियोग काम्य-सिद्धि के लिए है (५५-५७)—

आद्यायाः श्रीकालिकायाः कवचं शृणु साम्प्रतम्।

विनियोग—त्रैलोक्य-विजयस्य कवचस्य शिवः ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, आद्या काली देवता, ह्रीं वीजं, श्रीं शक्तिः, क्रीं कीलकं, काम्य-सिद्धौ विनियोगः।

ह्रीमाद्या मे शिरः पातु श्रीं कालो वदनं मम। हृदयं क्रीं परा-शक्तिः पायात् कण्ठं परात्परा ॥१
नेत्रे पातु जगद्धात्री कर्णौ रक्षतु शङ्करी। घ्राणं पातु महा-माया रसनां सर्व-मङ्गला ॥२
दन्तान् रक्षतु कौमारी कपोलौ कमलालया। ओष्ठाधरौ क्षमा रक्षेत् चिबुकं चारु-हासिनी ॥३
ग्रीवां पायात् कुलेशानी ककुत् पातु कृपा-मयी। द्वौ बाहू बाहुदा रक्षेत् करौ कैवल्य-दायिनी ॥४
स्कन्धौ कपर्दिनी पातु पृष्ठं त्रैलोक्य-तारिणी। पार्श्वे पायादपर्णा मे कटिं मे कमठासना ॥५
नाभौ पातु विशालाक्षी प्रजा-स्थानं प्रभावती। ऊरू रक्षतु कल्याणी पादौ मे पातु पार्वती ॥६
जयदुर्गाऽवतु प्राणान् सर्वाङ्गं सर्व-सिद्धिदा। रक्षा-हीनं तु यत् स्थानं वर्जितं कवचेन च ॥७
तत् सर्वं मे सदा रक्षेदाद्या काली सनातनी। इति ते कथितं दिव्यं त्रैलोक्य-विजयाभिधम् ॥८
कवचं कालिका-देव्या आद्यायाः परमाद्भुतम्॥

फल-श्रुति

पूजा-काले पठेद् यस्तु आद्याधिकृत-मानसः। सर्वान् कामानवाप्नोति तस्याद्या सुप्रसीदति ॥९

मन्त्र-सिद्धिर्भवेदाशु किङ्करा: क्षुद्र-सिद्धय: । अपुत्रो लभते पुत्रं धनार्थी प्राप्नुयाद् धनम् ।।१०
विद्यार्थी लभते विद्यां कामो कामानवाप्नुयात् । सहस्रावृत्ति-पाठेन वर्मणोऽस्य पुरस्क्रिया ।।११
पुरश्चरण-सम्पन्नं यथोक्त-फलदं भवेत् । चन्दनागरु-कस्तूरो-कुंकुमै रक्त-चन्दनैः ।।१२
भूर्जे विलिख्य गुटिकां स्वर्णस्थां धारयेद् यदि । शिखायां दक्षिणे बाहौ कण्ठे वा साधकः कटौ ।।१३
तस्याद्या कालिका वश्या वांच्छितार्थं प्रयच्छति । न कुत्रापि भयं तस्य सर्वत्र विजयी कविः ।।१४
अरोगी चिर-जीवी स्यात् बलवान् धारण-क्षमः ।सर्व-विद्यासु निपुणः सर्व-शास्त्रार्थ-तत्त्व-वित् । १५
वशे तस्य महो-पाला भोग-मोक्षौ कर-स्थितौ । कलि-कल्मष-युक्तानां निःश्रेयस-करं परम् ।।१६

अर्थात् '**ह्रीं**'-रूपा आद्या मेरे मस्तक को और '**श्रीं**'-रूपा काली मेरे मुख की रक्षा करे। '**क्रीं**'-रूपा परा-शक्ति हृदय की और परात्परा कण्ठ की रक्षा करे। जगद्धात्री दोनों नेत्रों की रक्षा करे, शङ्करी दोनों कानों की रक्षा करे। महामाया नासिका को और सर्व-मङ्गला जिह्वा को रक्षा करे। कौमारी दन्त-श्रेणी की और कमलालया दोनों कपोलों की रक्षा करे। क्षमा ओष्ठाधर की और चारु-हासिनी चिबुक (ठोडी) की रक्षा करे। कुलेशानी गरदन की और कृपा-मयी ककुत् (कन्धे) की रक्षा करे। बाहुदा दोनों बाहों की और कैवल्य-दायिनी दोनों हाथों की रक्षा करे। कपर्दिनी दोनों कंधों की और त्रैलोक्य-तारिणी पीठ की रक्षा करे। अपर्णा मेरे दोनों पार्श्वों की और कमठासना मेरे [illegible]-देश की रक्षा करे। विशालाक्षी मेरे नाभि-देश की और प्रभावती प्रजा-स्थान को रक्षा करे। कल्याणी दोनों उरुओं की और पार्वती मेरे दोनों पैरों की रक्षा करे। जयदुर्गा पञ्च-प्राणों की और सर्व-सिद्धिदा मेरे सर्वाङ्ग की रक्षा करे। जो स्थान कवच में वर्जित और रक्षाहीन हैं अर्थात् उल्लिखित अङ्ग-प्रत्यङ्ग के सिवा अन्य स्थानों की रक्षा सनातनी आद्या कालो सदा करें।

हे देवि ! तुमसे आद्या देवी कालिका का 'त्रैलोक्य-विजय' नामक दिव्य कवच कहा। जो व्यक्ति पूजा-काल में आद्या-मय चित्त से इस परमाद्भुत कवच का पाठ करता है, उसे सभी अभीष्ट फल प्राप्त होते हैं और आद्या कालो उस पर बहुत प्रसन्न होती हैं। उसे शीघ्र मन्त्र की सिद्धि होती है। क्षुद्र अणिमादि सिद्धियाँ उसको सेविका होती हैं। पुत्र-हीन व्यक्ति पुत्र पाता है, धनार्थी धन पाता है और विद्यार्थी विद्या पाता है, कामो व्यक्ति काम्य फलों को पाता है।

एक सहस्र बार पाठ करने से इस कवच का पुरश्चरण होता है। पुरश्चरण से सम्पन्न इस कवच से यथोक्त फल होता है। यदि साधक अगरु, चन्दन, कस्तूरी, कुंकुम या रक्त-चन्दन से भूर्ज-पत्र पर इस कवच को लिखकर, भूर्ज-पत्र-रूपा गुटिका को स्वर्णस्थ करके अपनो शिखा, दाईं भुजा, कण्ठ या कटि-देश में धारण करे, तो आद्या कालो उसके वशीभूत होकर उसे वांछित फल देती हैं। कहीं भी उसे भय नहीं होता। वह सभी स्थानों में विजयी, कवि, अरोगी, बलवान, धारण-क्षम, चिर-जीवी, सर्व विद्याओं में निपुण और सर्व-शास्त्रार्थ-तत्त्व का मर्मज्ञ होता है। राजा उसके वशीभूत होते हैं और भोग-मोक्ष उसके हाथ में रहते हैं।

यह कवच कलि-काल में पाप-युक्त मनुष्यों के लिए मोक्ष-दायक है, अतः अत्यन्त श्रेष्ठ है। (५८-७४)

श्री देवो ने कहा— हे नाथ ! तुमने कृपा करके स्तोत्र और कवच बताए। हे विभो ! अब पुरश्चरण की विधि सुनने को इच्छा करती हूँ (७५)।

श्री सदाशिव ने कहा—ब्रह्म-मन्त्र के पुरश्चरण की जो विधि है, वही आद्या कालिका के मन्त्र की भी कही है (७६)। हे देवि ! साधक जप, पूजा, होमादि करने में यदि असमर्थ हो, तो संक्षेप से पूजा और पुरश्चरण

करे (७७)। क्योंकि न करने से कुछ करना उत्तम है। हे भद्रे ! ऐसे लोगों के लिए पहले संक्षिप्त पूजा-विधि कहता हूँ, सुनो (७८)। मूल-मन्त्र से आचमन कर ऋषि-न्यास करे। फिर कर-शुद्धि, कर-न्यास और अङ्ग-न्यास करे। तब सर्वाङ्ग-व्यापक न्यास कर प्राणायाम, ध्यान, पूजा और जप करे। संक्षिप्त पूजा की यही विधि है (७९-८०)। मन्त्र के पुरश्चरण में जिस मन्त्र की जितनी संख्या निर्दिष्ट है, होमादि न करने पर, उसका चौगुना जप करने से ही पुरश्चरण सम्पन्न होता है (८१)।

अथवा अन्य प्रकार से पुरश्चरण-विधि कही है—मङ्गल या शनिवार को कृष्णा चतुर्दशी होने पर, उसी दिन रजनी-योग में पञ्च-तत्त्व लाकर जगन्मयी की पूजा कर, महा-निशा में एकाग्र मन से दस हजार बार मन्त्र का जप करे। फिर ब्रह्म-निष्ठ ब्राह्मणों को भोजन कराकर पुरश्चरण पूर्ण करे (८२-८३)।

अथवा एक मङ्गलवार से आरम्भ कर लगातार अगले मङ्गलवार तक प्रतिदिन एक हजार मन्त्र जप कर आठ हजार मन्त्र-जप से ही पुरश्चरण हो जाता है (८४-८५)।

हे देवि ! आद्या कालिका के सभी मन्त्र 'सिद्ध मन्त्र' हैं ; सभी समयों में, सब युगों में सुसिद्धि प्रदान करते हैं, विशेषकर कलि-काल में (८६)। हे पार्वति ! कलि-काल में बहुत प्रकार के काली-रूप जाग्रत् हैं। विशेषकर प्रबल कलि-काल में यही रूप जगत् के लिए हित-कारी है (८७)। इस मन्त्र में सिद्धादि चक्र-गणना की अपेक्षा नहीं है। अरि-मित्रादि दोष नहीं हैं। इस मन्त्र में विशेष नियमानियम नहीं हैं। इस मन्त्र का जप कर आद्या काली को प्रसन्न करे (८८)। इस मन्त्र का जप करने से श्रीमदाद्या काली के प्रसाद से ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त होता है। ब्रह्म-ज्ञान से युक्त मनुष्य जीवन्मुक्त है, इसमें सन्देह नहीं (८९)। हे प्रिये ! इस मन्त्र की साधना में विशेष प्रयास नहीं करना पड़ता, शरीर को कष्ट नहीं होता। आद्या काली के साधकों की साधना सुख-साध्य है (९०)।

इस विषय में **'चित्त-शुद्धि'** ही साधकों के लिए फल-दायिनी होती है (९१)। साधक जब तक चित्त की मलिनता दूर करने में समर्थ नहीं होता, तब तक **'कुल-भक्ति'** से समन्वित होकर कर्म करे (९२), क्योंकि यथा-विधि कर्मानुष्ठान ही चित्त-शुद्धि का उपाय है। ब्रह्म-मन्त्र के समान इस मन्त्र को पहले गुरु-मुख से ग्रहण करे (९३)। प्रातःकृत्यादि नियमानुष्ठान के साथ पुरश्चरण करे। हे महेशानि ! चित्त के शुद्ध होने पर ही ब्रह्म-ज्ञान उत्पन्न होता है और ब्रह्म-ज्ञान के उत्पन्न होने पर अन्य कृत्याकृत्य रहते नहीं (९४)।

श्रीपार्वती ने कहा—हे परमेशान ! हे विभो ! **'कुल'** क्या है ? **'कुलाचार'** क्या है ? यह सब और **'पञ्च-तत्त्व'** के लक्षण यथार्थ रूप में सुनने की इच्छा करती हूँ (९५)।

श्रीसदाशिव ने कहा—हे कुलेशानि ! तुम साधकों की हितैषिणी हो। तुमने उत्तम प्रश्न किया है। तुम्हारी प्रसन्नता के लिए मैं यह सब यथार्थ रूप में बताता हूँ, सुनो (९६)।

जीव, प्रकृति-तत्त्व, दिक्, आकाश, पृथिवी, जल, तेज और वायु **'कुल'**-नाम से कहे गए हैं (९७)। हे आद्ये ! इन सब वस्तुओं में ब्रह्म-बुद्धि द्वारा जो विकल्प-शून्य आचरण होता है, वही **'कुलाचार'** है और यही **'कुलाचार'** धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष इस चतुर्वर्ग का दाता है। तपस्या, दान और कठोर ब्रह्मचर्यादि द्वारा बहुजन्मा-र्जित पुण्य के फल-स्वरूप निष्पाप हुए साधकों की ही **'कुलाचार'** में प्रवृत्ति होती है (९८-९९)। **'कुलाचार'** में लगी बुद्धि शीघ्र ही निर्मल हो जाती है। तब उनकी मति आद्या काली के चरण-कमलों में लग जाती है (१००)। सद्गुरु की सेवा से परात्परा इस मन्त्र-रूपा विद्या को प्राप्त कर **'कुलाचार'** में तत्पर हो **'पञ्च-तत्त्व'** द्वारा कुलेश्वरी आद्या कालिका की पूजा में परायण व्यक्ति **'कुलज्ञ'** और साधकोत्तम हैं। ये लोग इस लोक में समस्त सुभोग्य वस्तुओं का भोग कर अन्त में मोक्ष प्राप्त करते हैं (१०१-१०२)।

सभी जीवों के लिए जो महौषध महत् दुःखों को भुलानेवाली और आनन्द-दायक है, वही **'आद्य-तत्त्व'**

का लक्षण है (१०३)। यह तत्त्व शोधित न होने पर केवल मोह-दायक, भ्रमोत्पादक और विषाद तथा रोग का कारण होता है। हे प्रिये ! कौलिक-गण उसका सर्वथा परित्याग करें (१०४)।

ग्राम्य (छागादि), वायव्य (हारोतादि पक्षी), वन्य (मृगादि)—जिनके शरीर से उत्पन्न तत्व पुष्टि-वर्द्धक और बुद्धि, तेज एवं बल-दायक है, वही **'द्वितीय तत्त्व'** का लक्षण है (१०५)।

हे कल्याणि ! जो जल से उत्पन्न अति-लोभनोय, सुख-दायक और प्रजा-वृद्धि-कारक तत्त्व है, वही **'तृतीय तत्त्व'** का लक्षण है (१०६)।

जो तत्त्व सुलभ, भूमि से उत्पन्न, जोवों का जोवन-स्वरूप और त्रिभुवन के परमायु का निदान है, वही **'चतुर्थ तत्त्व'** का लक्षण है (१०७)।

हे देवि ! महानन्द-जनक, प्राणियों की सृष्टि का कारण ओर आद्यन्त-रहित जगत् का जो मूल है, वही शेष—**'पञ्चम तत्त्व'** का लक्षण है (१०८)।

हे प्रिये ! आद्य तत्त्व को **'तेज'**, द्वितोय तत्त्व को **'पवन'**, तृतोय तत्त्व को **'जल'**, चतुर्थ तत्त्व को **'पृथिवी'** और पंचम तत्त्व को जगदाधार **'नभो'** मण्डल समझो (१०९-१०)।

हे कुलेशानि ! मनुष्य इसी प्रकार **'कुल'**, **'पञ्च-तत्व'** और **'कुल-धर्म के आचार'** को जानकर तदनुसार कर्म कर जीवन्मुक्त होते हैं (१११)।

•—•

आठवाँ उल्लास—वर्णाश्रम-आचार-धर्म का कथन

संसार-मोचिनी भवानो माता ने जगत् के हित के लिए शङ्कर से पुनः कहा (१)—इस लोक और परलोक में भो सुख-दायक, धर्म-अर्थ-काम-प्रद तथा मोक्ष-जनक, विघ्न-नाशक धर्म को कथा सुनना चाहती हूँ (२)। हे विभो ! अब **'वर्ण'** ओर **'आश्रम'** तथा उन-उन वर्णों और आश्रमों में जो **'आचार'** विहित हैं, उन्हें सुनने को इच्छा है। कृपया वह सब कहिए (३)।

श्री सदाशिव ने कहा—हे सुव्रते ! सत्य आदि चार युगों में चार **'वर्ण'**, चार **'आश्रम'** और उन-उन वर्णों तथा आश्रमों के **'आचार'** भिन्न-भिन्न रूप में कहे हैं, किन्तु कलि-काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं सामान्य—ये पाँच प्रकार के 'वर्ण' कहे हैं (४-५)। इन सभी वर्णों के लिए आश्रम दो प्रकार के हैं। हे आद्ये, हे महेश्वरि ! तुमसे उन सभी वर्णों और आश्रमों के आचार तथा धर्म कहता हूँ, सुनो (६)।

कलि-काल में उत्पन्न मनुष्यों की कथा पहले ही कह चुका हूँ। तपस्या और वेद-पाठ-विहीन, अल्पायु, क्लेश और प्रयास में अशक्त मनुष्यों के लिए शारीरिक परिश्रम असम्भव है (७)। हे प्रिये ! कलियुग में ब्रह्मचर्याश्रम नहीं है, वानप्रस्थ आश्रम भो नहीं है। गार्हस्थ्य और भैक्षुक—यही दो आश्रम हैं (८)। हे शिवे ! कलि-काल में गृहस्थों के सभो कार्य आगमोक्त अर्थात् तन्त्र-मत के अनुसार कर्तव्य हैं। गृहस्थों को अन्य किसो पथ से कदापि क्रिया-सिद्धि न होगी (९)। हे देवि, हे तत्त्वज्ञे ! कलियुग में भैक्षुकाश्रम में भी वेदोक्त दण्ड-धारण नहीं है क्योंकि वह वैदिक-संस्कार है (१०)। हे भद्रे ! कलि-काल में शैव-संस्कार-विधि से अवधूताश्रम-धारण

ही 'संन्यास-ग्रहण' कहा है (११)। हे देवि ! कलि-युग के प्रबल होने पर ब्राह्मण एवं अन्य सभी वर्णों को इन्हीं दो आश्रमों का अधिकार होगा (१२)। शैव विधि से ही सभी संस्कार और क्रिया-कलाप होंगे, किन्तु ब्राह्मण एवं अन्य वर्णों की कर्म-प्रणाली अलग-अलग होगी (१३)। हे महेश्वरि ! मनुष्य जन्म से ही गृहस्थ होता है। फिर संस्कार के बल से आश्रमी होता है। पहले यथा-विधि गार्हस्थ्य आश्रम करे (१४)। तत्त्व-ज्ञान अर्थात् संसार में निश्चित दुःखादि ज्ञान के समुत्पन्न होने पर जब वैराग्य हो, तब सब कुछ त्यागकर संन्यासाश्रम करे (१५)।

बाल्य-काल में विद्योपार्जन, यौवनावस्था में धनोपार्जन और विवाह, प्रौढ़ावस्था में धर्म-जनक कर्म करे। फिर 'सुधी' अर्थात् क्षण-भंगुर संसार के वास्तविक मर्म का ज्ञाता होकर चतुर्थ अवस्था अर्थात् वृद्ध वयस में संन्यासाश्रम करे (१६)। वृद्ध पिता-माता, पतिव्रता भार्या या शिशु सन्तान का त्यागकर अवधूताश्रम प्राप्त नहीं होता (१७)। जो व्यक्ति माता-पिता, शिशु पुत्र, पत्नी, स्वजन ज्ञाती-वर्ग और बन्धु-बान्धव इत्यादि का त्याग कर प्रव्रज्या करता है, वह महा-पातकी होता है (१८)। जो व्यक्ति अपने पित्रादि को तृप्त न करके भिक्षुकाश्रम में जाता है, वह मातृ-हन्ता, पितृ-हन्ता, स्त्री-घाती एवं ब्रह्म-घातक होता है। अर्थात् इन सब कार्यों से जैसा पाप होता है, वह व्यक्ति वैसे ही पाप से कलुषित होता है (१९)।

ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर लोग शैव पथ के अनुसार ही अपने विहित संस्कार का अनुष्ठान करें, यही कलि-युग का धर्म है (२०)।

श्री देवी ने कहा—हे विभो ! गृहस्थ का धर्म क्या है ? अथवा भिक्षुक का धर्म क्या है ? यह सब और विप्र तथा विप्रेतर अन्य सबके संस्कारादि को मुझे बताइये (२१)।

श्री सदाशिव ने कहा—हे कौलिनि ! गार्हस्थ्य धर्म ही सब मनुष्यों का आदि एवं धर्म-जनक है। अतएव पहले यथार्थ रूप से उसे ही कहता हूँ, सुनो (२२)। गृहस्थ ब्रह्म-निष्ठ हो और ब्रह्म-ज्ञान-परायण रहे। जो-जो कर्म करे, उन सबको ब्रह्म को समर्पित करे (२३)। गृहस्थ्य मिथ्या बात न कहे, शठता न करे और देवता, अतिथि के पूजन में तत्पर रहे (२४)। माता-पिता को गृहस्थ साक्षात् प्रत्यक्ष देवता जानकर सदा सब प्रकार से प्रयत्न कर उनको सेवा करे (२५)। हे शिवे, हे पार्वति ! माता-पिता के सन्तुष्ट होने से तुम्हारी प्रसन्नता होगी। हे देवि ! तुम्हारी प्रसन्नता होने से परब्रह्म प्रसन्न होंगे (२६)। हे आद्ये ! तुम्हीं जगत् की माता हो और परब्रह्म ही जगत् के पिता हैं। अतएव जिन-जिन कार्यों से गृहस्थ लोग तुम्हारी प्रसन्नता प्राप्त कर सकते हैं, उनके सिवा अन्य कौन सी तपस्या है (२७) ? उन-उन अवसरों को विवेचना कर माता-पिता को आसन, शय्या, वस्त्र, पानीय और भोज्य वस्तु प्रदान करे (२८)। कुल-पावन सत्पुत्र उन्हें कोमल वचन सुनावे। सदा उनके प्रिय कार्य करे। माता-पिता का आज्ञाकारी बने। यदि अपने मङ्गल की कामना है, तो कदापि माता-पिता के पास उद्धत परिहास, तर्जन या अप्रिय वचन का प्रयोग न करे (२९-३०)। पिता का शासन माननेवाला पुत्र माता-पिता को देखते ही उन्हें प्रणाम कर उठ खड़ा हो और उनकी आज्ञा के बिना बैठे नहीं (३१)। जो व्यक्ति विद्या और धन के घमण्ड में चूर होकर माता-पिता की अवज्ञा करता है, वह इस लोक में सब धर्मों का अनधिकारी होकर अन्त में घोर नरक में जाता है (३२)। गृहस्थ कण्ठ-गत प्राण होने पर भी माता-पिता, पुत्र, भार्या, अतिथि और सहोदर—इनका त्यागकर भोजन न करे (३३)। जो व्यक्ति सभी गुरुओं (माता-पिता आदि) और सभी बन्धुओं (सहोदर आदि) को वञ्चित कर भोजन करता है, वह अपना ही पेट भरनेवाला इस लोक में निन्दित होता है और पर-लोक में नरक में जाता है (३४)। गृहस्थ पत्नी की रक्षा करे, पुत्रों को विद्या की शिक्षा दे, स्वजन और बन्धुओं का पोषण करे। यही सनातन धर्म है (३५)।

जननी से देह की वृद्धि होती है, जनक से देह प्रयोजित होती है और स्वयं व स्वजनों से प्रीति-पूर्वक शिक्षा प्राप्त होती है। जो इन सबका त्याग करता है, वह अधम है (३६)। हे महेशानि ! इन सबके लिए सौ-सौ कष्ट भी उठाकर यथा-सम्भव इन्हें सदा प्रसन्न रखे, यही सनातन धर्म है (३७)।

जो मनुष्य पृथिवी पर ब्रह्म-निष्ठ और सत्य-प्रतिज्ञ है, वही महा-पुरुष धन्य है और वही पुरुष परमार्थ का ज्ञाता है (३८)।

भार्या की ताड़ना कभी न करे, माता के समान सदा उसका पालन करे। यदि वह साध्वी और पतिव्रता है तो घोर कष्ट में पड़ने पर भी उसका त्याग न करे (३९)। विज्ञ व्यक्ति अपनी पत्नी के विद्यमान रहते दुष्ट भाव से पर-स्त्री को छुए तक नहीं अन्यथा अर्थात् छूने से नरक-गामी होगा (४०)। प्राज्ञ व्यक्ति पर-स्त्री के साथ एकान्त में सोने, रहने और अयुक्त बातचीत करने का त्याग करे और स्त्रियों को वीरता न दिखावे (४१)। धन, वस्त्र, प्रेम, श्रद्धा, मधुर वचनों से भार्या को निरन्तर सन्तुष्ट रखे, कभी उससे अप्रिय आचरण न करे (४२)। सांसारिक तत्त्व का ज्ञाता व्यक्ति उत्सव, लोक-यात्रा, तीर्थ एवं अन्य व्यक्ति के घर में पुत्र अथवा सह-योगी के साथ बिना उसे कभी न भेजे (४३)। हे महेशानि ! पतिव्रता भार्या जिस पुरुष से सन्तुष्ट रहती है, उसके सभी धर्म पूर्ण होते हैं अर्थात् ऐसा व्यक्ति सभी धर्मानुष्ठानों से होनेवाले फलों को प्राप्त करता है और तुम्हारा प्रिय होता है (४४)।

पिता पुत्र का पालन चार वर्ष तक करे, उसके बाद सोलह वर्ष तक उसे विद्या और सभी गुणों की शिक्षा दे (४५)। पालन और शिक्षा में बीस वर्ष बीतने पर बीस वर्ष से अधिक आयुवाले पुत्रादि को गृह-कार्य में लगावे। फिर अर्थात् गृह-कार्य के उपयुक्त होने पर उसे आत्म-तुल्य समझकर उस पर स्नेह प्रकट करे (४६)। कन्या का भी इसी प्रकार पालन करे और बड़े यत्न से उसे शिक्षा दे। कन्या को धन-रत्न से समन्वित कर ज्ञानवान् वर को प्रदान करे (४७)। इसी प्रकार गूही भाई, बहन, भांजे, भतीजे, ज्ञाति, मित्र और भृत्यों (सेवकों) का पालन कर उन्हें सन्तुष्ट करे (४८)। तदनन्तर अर्थात् भाई आदि के पालन में समर्थ होने के बाद गृहस्थ स्वधर्म में तत्पर एक-ग्राम-वासियों, अभ्यागतों और उदासीन लोगों का भी पालन करे (४९)। हे देवि ! ऐश्वर्य होने पर गृहस्थ यदि इस प्रकार आचरण नहीं करता, तो वह 'पशु' ही माना जाना चाहिए और वह पापी लोक-समाज में निन्दित होता है। निद्रा, आलस्य, देह के प्रति यत्न, केश-विन्यास, भोजन एवं वस्त्र में आसक्ति—ये आवश्यकता से अधिक न करे (५०-५१)। गृहस्थ परिमित-भोजी, परिमित-निद्रा, निर्मल-प्रकृति, परिमित-भाषी, परिमित-मैथुन, नम्र, शुचि, निपुण, निरालस्य और सब कर्मों में तत्पर रहे। शत्रु के सामने शूर और बान्धव एवं गुरु के पास विनीत रहे। निन्दित व्यक्ति का आदर न करे, सम्मानित लोगों की अवज्ञा न करे (५२-५३)।

सहवास और विचार द्वारा व्यक्ति का स्वभाव, सौहार्द, व्यवहार, प्रवृत्ति और प्रकृति जानकर उस पर विश्वास करे (५४)। बुद्धिमान व्यक्ति क्षुद्र शत्रु होने पर भी उससे शङ्कित रहे और अवसर देखकर ही अपना भाव प्रकट करे, किन्तु धर्म का लङ्घन न करे (५५)। धर्मज्ञ व्यक्ति अपना यश, पौरुष और जिसे प्रकट करने से अन्य लोग विरोध करें तथा जो परोपकार के लिए किया गया हो, उसे प्रकाशित न करे (५६)। यशस्वी व्यक्ति जय की निश्चित सम्भावना होने पर भी कभी लोक-निन्दित कार्य में प्रवृत्त न हो और गुरु या लघु व्यक्ति से विवाद न करे (५७)। मान-पूर्वक विद्या, धन, यश और धर्म का उपार्जन करे। असत्य, व्यसन (द्यूत-क्रीड़ा आदि), कुसंग, मिथ्यालाप, पर-द्रोह का त्याग करे (५८)। चेष्टा अवस्था के अनुसार और क्रिया समय के अनुसार होती है, अतः 'अवस्था' और 'समय' का विचार कर कर्म करे (५९)। गूही लोग योग-क्षेम में अर्थात् अलब्ध

वस्तु के अर्जन और लब्ध वस्तु के रक्षण में लगा रहे। दक्ष धार्मिक व्यक्ति स्वभाव से ही मित-भाषी और मित-हास्य होता है अर्थात् न अधिक बोलता है और न उच्च स्वर से अधिक हँसता ही है, विशेष कर मान्य व्यक्ति के सामने (६०)। जितेन्द्रिय, निर्मल-स्वभाव, सुचिन्त्य, दृढ़ व्रती, प्रमाद-रहित और दूर-दर्शी होकर विषयोपभोग का कर्तव्याकर्तव्य विचार करे (६१)। धीर व्यक्ति सत्य, कोमल, सन्तोष-जनक, शुभ-कारक वाक्य का प्रयोग करे। आत्म-गौरव का प्रकाश और पर-निन्दा न करे (६२)।

जो लोग मार्ग में जलाशय, विश्राम-गृह और सेतु की प्रतिष्ठा करते हैं, वे त्रिभुवन को जय करते हैं अर्थात् सबसे उत्कृष्ट पद को पाते हैं (६३)। माता-पिता जिससे सन्तुष्ट हों, मित्र लोग जिसके प्रेमी हों, लोग जिसका यशोगान करते हों, वही त्रिभुवन को जीतता है (६४)। सत्य ही जिसका व्रत है, जिसमें दोनों के प्रति सदा दया रहती है, काम और क्रोध जिसके वश में हैं, वही त्रिभुवन को जीतता है (६५)। जो व्यक्ति पर-स्त्री से विरक्त है, दूसरे के वस्तु की अभिलाषा से जो रहित है, जो दम्भ और मात्सर्य से हीन है, वही त्रिभुवन को जीतता है (६६)। जो क्षत्रिय युद्ध में डरता नहीं और पराङ्-मुख नहीं होता और जो धर्म-युद्ध में मरता है, वही त्रिभुवन को जीतता है (६७)। जिसके मन में संदेह नहीं है, जो व्यक्ति विश्वास-युक्त है, पाशुपत आचार में तत्पर है और जो मेरी आज्ञा का पालन करता है, वही त्रिभुवन को जीतता है। जो ज्ञानी शत्रु और मित्र के प्रति सम-दृष्टि रखकर केवल संसार-यात्रा के निर्वाह के लिए विहित कर्मों का अनुष्ठान करता है, वही संसार को जीतता है (६८-६९)।

हे देवि ! 'शौच' दो प्रकार के हैं—बाह्य और अभ्यन्तर। ब्रह्म में आत्म-समर्पण अर्थात् परमात्मा में मन की एकाग्रता ही आन्तरिक शौच कहा गया है (७०)। जल या भस्म द्वारा मैल को दूर करने से जो देह-शुद्धि होती है, उसे बाह्य शौच कहते हैं (७१)। हे प्रिये ! क्षुद्र जलाशय, कूप, वापी, ह्रद, नदी, गङ्गा और स्वर्नदी—ये सब यथा-क्रम अधिक पवित्रता-दायक हैं अर्थात् इन सब तीर्थ-जलों में स्नान करने से देह शुद्ध होती है (७२)। हे सुव्रते ! बाह्य शौच के सम्बन्ध में याज्ञिक भस्म ही प्रशस्त है। निर्मल मिट्टी द्वारा भी इस प्रकार स्नान से शुद्धि होती है। वस्त्र, मृग-चर्म, तृण आदि भी मिट्टी के समान शुद्धि-दायक हैं (७३)। हे शिवे ! इस शौच और अशौच के विषय में अधिक कहना आवश्यक नहीं है। जिससे मन पवित्र हो, वही आचारण गृहस्थ करे (७४)। निद्रा के बाद, मैथुन के बाद, मल-मूत्र-त्याग के बाद, आहार के बाद और मल के छू जाने पर उक्त प्रकार बहिः शौच की विधि करे (७५)।

त्रिकाल में अर्थात् प्रातः, मध्याह्न और अपराह्न में वैदिकी और तान्त्रिकी सन्ध्या क्रमशः सम्पन्न करे और उपासना-भेद यथा-शास्त्र पूजा करे (७६)। हे प्रिये ! जो ब्रह्म-मन्त्रोपासक हैं, वे गायत्री के जप-काल में गायत्री के प्रतिपाद्य ब्रह्म हैं, इस प्रकार की भावना करें। ऐसा करने पर वैदिक सन्ध्या होगी (७७)। जो ब्रह्मोपासक नहीं हैं, उनकी वैदिक सन्ध्या सूर्यार्घ्य-दान और गायत्री-जप से होगी (७८)। हे भद्रे ! सभी आह्निक कार्यों में १००८ या १०८ या १० बार जप करने का नियम है (७९)। हे देवि ! शूद्र और साधारण जाति को केवल आगमोक्त विधि का ही अधिकार है। उसी से उनको सब प्रकार की सिद्धि होगी (८०)।

प्रातः-सन्ध्या सूर्योदय के समय करे। इसी प्रकार मध्याह्न-सन्ध्या और सायं-सन्ध्या क्रमशः मध्याह्न-काल में तथा सूर्यास्त के समय करें। इस सन्ध्या-वन्दन का समय 'त्रिकाल' निर्दिष्ट है।

श्री देवी ने कहा—हे नाथ ! तुमने स्वयं कहा है कि कलि के प्रबल होने पर ब्राह्मण आदि सभी वर्गों के लिए एकमात्र तान्त्रिक क्रिया ही प्रशस्त है (८१-८२)। हे देवदेव ! इस समय किसलिए तुम ब्राह्मणों को वैदिक क्रिया में नियोजित करते हो ? यह सब विशेष रूप से वर्णन करो (८३)।

श्री सदाशिव ने कहा—हे तत्त्वज्ञे ! तुमने यथार्थ ही कहा है। कलि-युग में सभी वर्णों के लिए एकमात्र तान्त्रिकी क्रिया ही भोग और मोक्ष की निमित्त है और सभी कार्यों में वह सिद्धि देती है (८४)। यह ब्रह्म-सावित्री जिस प्रकार वैदिकी है, उसी प्रकार तान्त्रिकी भी है। अतः दोनों ही कर्म प्रशस्त है (८५)। हे देवि ! इसीलिए मैंने यहाँ कहा है कि कलि के प्रबल होने पर ब्राह्मणों का गायत्री में ही अधिकार होगा, अन्य किसी वैदिक मन्त्र में नहीं (८६)। कलि-काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की गायत्री क्रमशः 'ॐ', 'श्रीं' और 'ऐं' पूर्विका होगी अर्थात् ब्राह्मण गायत्री के पूर्व 'ॐ', क्षत्रिय गायत्री के पूर्व 'श्रीं' और वैश्य गायत्री के पूर्व 'ऐं' लगावें (८७)। हे परमेश्वरि ! शूद्रों से द्विजों को अलग करने के लिए द्विजों के आह्निक में पूर्व काल में वैदिक सन्ध्या की विधि कही है (८८)। अन्यथा अर्थात् वैदिक सन्ध्या न करने से भी केवल शैव पद्धति द्वारा सिद्धि मिलेगी। यह सत्य, सत्य, विशेष सत्य है, इसमें सन्देह नहीं (८९)। हे देव-वन्दिते ! अनातुर मुमुक्षु व्यक्ति सन्ध्या का यथोक्त समय बीत जाने पर भी 'ॐ तत् सत् ब्रह्म' का उच्चारण कर इस सन्ध्या को करे (९०)। अर्थात् आतुर के लिए विशेष नियम रखने के उद्देश्य से 'अनातुर' विशेषण दिया है। आसन, वस्त्र, पात्र, शय्या, यान, गृह, गृह-सामग्री आदि परिष्कृत होते हुए भी और भी परिष्कृत हों, तो अधिक उत्तम है (९१)। गृहस्थ आह्निक कार्य समाप्त कर स्वाध्याय या गृह-कर्म करे, बिना उद्यम खाली न बैठा रहे (९२)। पुण्य तीर्थ में, पुण्य तिथि में, चन्द्र-ग्रहण और सूर्य-ग्रहण-काल में जप और दान करने से मङ्गल होता है (९३)। कलि-युग में मनुष्यों के प्राण अन्न में रहते हैं, अतः उपवास करना ठीक नहीं है। कलियुग में 'उपवास' के स्थान पर एकमात्र 'दान' ही प्रशस्त है (९४)। हे महेशानि ! कलि-युग में 'दान' सब सिद्धियों का देनेवाला है। सत् क्रिया करनेवाले दरिद्र व्यक्ति ही 'दान' के पात्र हैं (९५)। हे अम्बिके ! मास, वर्ष और पक्ष के प्रारम्भिक दिन में, चतुर्दशी, अष्टमी, शुक्ल-पक्ष की एकादशी, अमावास्या, अपना जन्म-दिन, पिता-माता की मृत्यु-तिथि और निर्दिष्ट उत्सव के दिन—ये सब पुण्य काल कहे गए हैं (९६-९७)। गङ्गा नदी, महा-नदी, गुरु-गृह और प्रसिद्ध देवता-क्षेत्र पुण्य-तीर्थ कहे हैं (९८)। अध्ययन, माता-पिता की सेवा, पत्नी की रक्षा को छोड़कर तीर्थ करने से पुरुष नरक जाते हैं (९९)। स्त्रियों के लिए पति की सेवा से बढ़कर तीर्थ-सेवा नहीं है, उपवासादि क्रिया नहीं है, व्रत का नियम नहीं है अर्थात् इन सब कर्मों से मिलनेवाला फल मात्र पति-सेवा से ही उन्हें मिल जाता है अतः ये सब कर्म उनके लिए निर्दिष्ट नहीं हैं (१००)। पति ही स्त्रियों के लिए तीर्थ, तपस्या, दान, व्रत और गुरु हैं। अतः स्त्री पूरे अन्तः-करण से पति-सेवा करे (१०१)। वचनों से, सेवा से सदा पति का प्रिय कार्य करे और सदा उनकी आज्ञा के अनुसार चलती हुई पति के बान्धवों को सन्तुष्ट करे (१०२)। पतिव्रता स्त्री पति को कठोर दृष्टि से न देखे, दुर्वचन भी न सुनाए, मन से भी स्वामी को अप्रिय लगनेवाला कार्य न करे (१०३)। जो स्त्री शरीर, मन और वचन से सदा प्रिय कार्य-रूपी अनुष्ठान द्वारा पति को सन्तुष्ट करती है, वह ब्रह्म-पद को पाती है (१०४)। पति की आज्ञाकारिणी स्त्री दूसरे पुरुष का मुख न देखे, दूसरे पुरुष के साथ बात न करे (१०५)। स्त्री बचपन में पिता के अधीन, युवावस्था में पति के अधीन और बुढ़ापे में पति के बान्धवों के अधीन रहती है। किसी भी अवस्था में वह स्वाधीन नहीं रहती (१०६)। पिता और पति की मर्यादा, पति-सेवा तथा धर्म-शासन को न जाननेवाली बालिका कन्या का विवाह न करे (१०७)।

नर-मांस, नराकृति-पशु-मांस, उपकारी गाय और रस-हीन मांस-भोजी जन्तु का मांस न खाए (१०८)। हे शिवे ! भूमि से उत्पन्न ग्राम्य एवं जंगली विविध प्रकार के फल-मूल स्वेच्छापूर्वक खा सकते हैं (१०९)।

ब्राह्मण के लिए अध्यापन और याजन—यही दो वृत्तियाँ उत्तम हैं। इनमें अशक्त हो, तो क्षत्रिय-वृत्ति और उसमें भी अशक्त हो, तो वैश्य-वृत्ति से निर्वाह करे (११०)। क्षत्रिय के लिए संग्राम और प्रजा-पालन—यही सद्-

वृत्तियाँ हैं। यदि इनमें अशक्त हो, तो वैश्य-वृत्ति और उसमें भी अशक्त हो, तो शूद्र-वृत्ति का सहारा ले (१११)। हे परमेशानि ! वाणिज्य में असमर्थ वैश्यों के लिए शूद्र-वृत्ति का सहारा लेना अनुचित नहीं है। शूद्रों के लिए सेवा-वृत्ति विहित है (११२)। हे देवेशि ! सामान्य वर्ण अर्थात् पञ्चम-वर्ण को ब्राह्मण-वृत्ति को छोड़कर अन्य सभी वृत्तियों का अधिकार है (११३)। अपनी वृत्ति में स्थित ब्राह्मण द्वेष-रहित, ममता-शून्य, शान्त, सत्य-वादी, जितेन्द्रिय, मात्सर्य-रहित और निष्कपट होता है (११४)। सत्पथावलम्बी शिष्यों को पुत्र के समान अध्ययन कराता है, सब लोगों का हितैषी और पक्षपात-रहित होता है (११५)। ब्राह्मण मिथ्या कथन, असूया, व्यसन (मृगया, द्यूत आदि), अप्रिय वचन, नीचों का सङ्ग और दम्भ कभी न करे (११६)। हे वरानने ! क्षत्रियों को सन्धि होने पर युद्ध की इच्छा करना निन्दनीय है। सम्मान-पूर्वक सन्धि को स्थिर रखे और युद्ध में जय या मृत्यु दोनों ही उत्तम समझे। राजा प्रजा के धन का लोभ न करे और नियम से ही कर ग्रहण करे। स्वीकृत धर्म की रक्षा करते हुए प्रजा का पुत्र-वत् पालन करे (११७)। न्याय, युद्ध, सन्धि एवं अन्यान्य सभा राजकीय कार्यों में राजा सदा मन्त्रियों के साथ विचार करे (११८-११९)। धर्म-सम्मत युद्ध करे, न्यायतः दण्ड और पुरस्कार दे तथा बलानुसार यथा-शास्त्र सन्धि करे (१२०)। उपाय करके कार्य सम्पन्न करे और शत्रुओं को युद्ध तथा सन्धि उपायों द्वारा नियन्त्रित करे क्योंकि उपाय से ही सभी प्रकार के जय, मङ्गल और ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं (१२१)। नीचों का संग न करे, सदा पण्डितों का प्रिय रहे, कार्य-कुशल, सुशील, मित-व्ययी और विपत्ति के समय धैर्य-शाली रहे (१२२)। दुर्ग-संस्कार में निपुण, शस्त्र-शिक्षा में विचक्षण और अपने सैनिकों के भाव का ज्ञाता हो तथा उन्हें रण-कौशल सिखावे (१२३)। हे देवि ! युद्ध में मूर्छित, शस्त्र-हीन, भागने को तत्पर या बलपूर्वक लाए गए शत्रु को और शत्रु के स्त्री-शिशु-सन्तानादि को मारे नहीं (१२४)। जो सारी वस्तुएँ विजय में या सन्धि द्वारा प्राप्त हों, उन्हें यथा-योग्य सैनिकों में बाँट दे (१२५)। योद्धाओं की वीरता और चरित्र को राजा को अलग-अलग जानना चाहिए। अपना हितेच्छु राजा एक व्यक्ति को बहुत सेना का अधिपति न बनावे (१२६)। राजा एक व्यक्ति पर पूरा विश्वास न करे, एक ही व्यक्ति को विचार करने में नियुक्त न करे। नीच लोगों के प्रति न समता-भाव दिखावे, न उनके साथ क्रीड़ा या परिहास करे (१२७)। अनेक शास्त्रों का ज्ञानी, मित-भाषी, जिज्ञासु, स्वाभिमानी और दम्भ-शून्य रहे। दण्ड देते समय या प्रसन्नता के समय धीर रहे अर्थात् दोनों ही समय आकार और मुद्रा से सम-भाव रहे (१२८)। राजा स्वयं या गुप्तचरों द्वारा प्रजा के भाव को जानता रहे और अपने स्वजनों तथा सेवकों के भाव को समझता रहे (१२९)। तत्त्व-दर्शी शासक क्रोध, दम्भ या प्रमाद के वश में होकर सहसा किसी का सम्मान या अपमान न करे (१३०)। सेनाओं के सेनापति और मन्त्रियों की स्त्री-कन्या-पुत्र-भृत्य का पालन राजा करे। यदि दोषी हों, तो यथा-विधि उन्हें दण्डित करे (१३१)। उन्मत्त, असमर्थ, बालक, पीड़ित और वृद्ध—ऐसे लोग यदि बान्धव-रहित हों, तो राजा पिता के समान उनकी रक्षा करे (१३२)।

कृषि-वाणिज्य को ही वैश्यों की सनातन वृत्ति माना है और उसके द्वारा सभी लोगों की शरीर-रक्षा होती है (१३३)। हे देवि ! इसीलिए वाणिज्य और कृषि-कर्म में असावधानी, व्यसन, आलस्य, मिथ्या-व्यवहार, शठता—कभी किसी प्रकार न करे (१३४)। हे शिवे ! क्रेता और विक्रेता-दोनों की सम्मति से वस्तु और उसका मूल्य निश्चित कर परस्पर-स्वीकृति से 'क्रय' सिद्ध होता है (१३५)। हे प्रिये ! मत्त, विक्षिप्त, शोकार्त्त, विशेष उत्कण्ठित, बालक, शत्रु-गृहीत और रोग से भ्रान्त-बुद्धि—ऐसे लोगों को किया गया दान और विक्रय असिद्ध होता है (१३६)। अदृष्ट-वस्तु का गुण सुनकर हो क्रय सिद्ध होता है किन्तु उस गुण में विपर्यय होने से विक्रय असिद्ध हो जाता है। हाथी, ऊँट, घोड़ा आदि के गुण सुनकर क्रय-सिद्धि होती है किन्तु यदि वर्णित गुण उनमें न हुआ, तो वह क्रय असिद्ध होता है। हाथी, ऊंट, घोड़े आदि का गुप्त दोष प्रकट होने पर एक वर्ष बाद भी वह

क्रय अन्यथा किया जा सकता है (१३७-३८)। हे कुलेश्वरि! मानव-देह धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष को भाजन-स्वरूप है। इसलिए हमारे शासन के कारण इस शरीर का क्रय सिद्ध नहीं है (१३६)। हे प्रिये! जौ, गेहूँ और धान्य में वर्ष के अन्त में (ऋण देने पर) मूल का चतुर्थांश मात्र लाभ होता है। धातु-द्रव्य में एक वर्ष में अष्टमांश लाभ लेना निर्दिष्ट है (१४०)। ऋण, कृषि-कार्य, वाणिज्य और अन्य सभी कार्यों में शास्त्र के द्वारा स्वीकृत नियमानुसार ही मनुष्य कार्य करें (१४१)।

सेवा-वृत्ति में लगे व्यक्ति कार्य-कुशल, पवित्र, सत्यवादी, जित-निद्र, जितेन्द्रिय, सावधान और निरालस्य रहें (१४२)। इस लोक और पर-लोक में सुख चाहनेवाले सेवक स्वामी को विष्णु के समान, उनकी पत्नी को माता के समान और उनके बान्धवों को देवता के समान आदर दें (१४३)। स्वामी के मित्रों को अपना मित्र, उनके शत्रुओं को अपना शत्रु समझें। सभी समय स्वामी की आज्ञा की प्रतीक्षा करते हुए भय-पूर्वक उपस्थित रहें (१४४)। अपमान, घर के छिद्र, गोपनीय अन्य बातों और जिससे स्वामी को ग्लानि होती हो, ऐसी बातों को अति यत्न-पूर्वक छिपा कर रखें (१४५)। स्वामी के धन में लोभ न करें, सदा स्वामी के हित में लगे रहें। उनके निकट असद् वाक्य, क्रीडा और हँसी का त्याग करें (१४६)। स्वामी की दासियों आदि को पाप-मन से न देखें, उनके साथ एकान्त में न सोयें और न हँसी-खेल करें (४७)। स्वामी की शय्या, आसन, यान, वसन, पानादि-पात्र, पादुका, भूषण, शस्त्र अपने उपयोग में न लायें (१४८)। यदि सेवक से अपराध हो, तो उसके लिए स्वामी से क्षमा माँगे। स्वामी के सामने धृष्टता, लम्बी-चौड़ी बात, आदि छोड़ दे (१४६)।

हे शिवे! भैरवी-चक्र और तत्त्व-चक्र के बाहर सभी वर्ण अपने-अपने वर्ण में ही ब्राह्म-विवाह और भोजन करें किन्तु हे महेशानि! उक्त दो स्थानों अर्थात् तत्त्व-चक्र और भैरवी चक्र में शैव-विवाह कहा है। इनमें भोजन और पान करते समय वर्ण का भेद-भाव नहीं किया जाता। तात्पर्य यह है कि शैव-विवाह में वर्ण-विचार नहीं है और शैव-विवाह द्वारा विवाहिता स्त्री दोनों चक्रों में तथा अन्य सभी कार्यों में ब्राह्म विवाह द्वारा विवाहिता स्त्री प्रशस्त है। इसी प्रकार चक्रों में भोजन करते समय जाति-भेद का विचार नहीं है किन्तु अन्य समयों में विचार करना चाहिए (१५०-१५१)।

श्री देवी ने कहा—यह **'भैरवी-चक्र'** क्या है? अथवा **'तत्त्व-चक्र'** किस प्रकार का है? मैं वह सब सुनना चाहती हूँ, कृपा करके बताइए (१५२)।

श्री सदाशिव ने कहा—हे देवि! कुल-पूजा की विधि से **'चक्र'** का अनुष्ठान होता है। उत्तम साधकों को विशेष पूजा-समयों में उसे करना चाहिए (१५३)। हे प्रिये! **'भैरवी-चक्र'** के सम्बन्ध में समयादि का कोई नियम नहीं है। किसी भी समय यह शुभ **'भैरवी-चक्र'** किया जा सकता है (१५४)। साधकों के लिए मंगल-कारी **'भैरवी-चक्र'** का विधान बताता हूँ, जिसके द्वारा भगवती की आराधना करने से प्राणी को अभीष्ट फल मिलता है (१५५)।

कुलाचार्य सुन्दर स्थल पर उत्तम आसन बिछा कर **'कामाद्य-अस्त्र'** अर्थात् **'क्लीं फट्'** मन्त्र से उक्त आसन का शुद्ध कर उस पर बैठे (१५६)। सिन्दूर, रक्त-चन्दन या केवल जल से त्रिकोण-चतुष्कोण मण्डल बनाए (१५७)।

एक सुन्दर घट लेकर उसे क्रमशः दही, अक्षत, फल, पल्लव, सिन्दूर तिलक से युक्त कर जल से भरे और प्रणव का उच्चारण करते हुए उसे उक्त मण्डल पर स्थापित कर उसे धूप-दीप दिखाए (१५८-१५६)। गन्ध-पुष्प से पूजन कर इष्ट-देवता का ध्यान करे और संक्षिप्त पूजा-विधि से उसमें पूजा करे (१६०)। हे सुर-वन्दिते! इसमें जो विशेष है, उसे कहता हूँ, सुनो—

इस चक्र में गुरु आदि नौ पात्र स्थापन करने की आवश्यकता नहीं है (१६१)। यथेच्छ तत्त्व अपने सामने रखकर '**अस्त्र**' अर्थात् '**फट्**' मन्त्र से उन्हें प्रोक्षित कर 'दिव्य-दृष्टि' अर्थात् एकटक दृष्टि से उन्हें देखे (१६२)। फिर 'अलि-यन्त्र' अर्थात् मद्य-पात्र में गन्ध-पुष्प देकर उसमें आनन्द-भैरवी देवी और आनन्द-भैरव का ध्यान करे (१६३)। यथा—

नव-यौवन-सम्पन्नां तरुणारुण-विग्रहाम्, चारु-हासामृताभाषोल्लसद्-वदन-पङ्कजाम्।
नृत्य-गीत-कृतामोदां नानाभरण-भूषिताम्, विचित्र-वसनां ध्यायेत् वराभय-करांबुजाम्॥

अर्थात् बाल-सूर्य के समान दीप्तिवाला शरीर है, मनोरम हास्य-सुधा की कमनीय कान्ति से मुख-कमल शोभायमान है, नृत्य-गीत से आनन्दिता हैं, नाना अलङ्कारों से सज्जिता हैं, विलक्षण वस्त्र पहने हैं और हाथों में वर-अभय मुद्राएँ हैं।

इस प्रकार आनन्द-भैरवी का ध्यान कर आनन्द-भैरव का स्मरण करे (१६४)। यथा—

कर्पूर-पूर-धवलं कमलायताक्षम्, दिव्याम्बराभरण-भूषित-देह-कान्तिम्।
वामेन पाणि-कमलेन सुधाढ्य-पात्रं, दक्षेण शुद्धि-गुटिकां दधतं स्मरामि॥

अर्थात् कर्पूर-राशि के समान शुक्ल वर्ण है, कमल के समान बड़े नेत्र हैं, दिव्य वस्त्र और अलंकारों से शरीर की कान्ति शोभायमान है, बाएँ हाथ में सुधा-पूर्ण पात्र और दाएँ हाथ में शुद्धि की गुटिका लिए हैं (१६५-६७)।

इस प्रकार दोनों का ध्यान कर साधक उक्त सुरा-पात्र में इन दोनों की सम-रसता का चिन्तन करते हुए आदि में प्रणव (ॐ) और अन्त में '**नमः**' जोड़कर नाम-मन्त्र का पाठ कर गन्ध-पुष्प से पूजा करने के बाद सुरा का शोधन करे (१६८)। यथा—

कुल-पूजक '**स्वाहान्त-पाशबीज-त्रय**' अर्थात् '**आं ह्रीं क्रों स्वाहा**' का १०८ बार जप कर सुरा का शोधन करे (१६९)। प्रबल कलि-काल में गृहस्थ केवल गृह-कार्य की कामना से एकाग्र-चित्त हो पूजन करे। गृहस्थ के लिए आद्य-तत्व (सुरा) के प्रतिनिधि (अनुकल्प) रूप में '**मधुर-त्रय**' का निर्देश है (१७०)। दूध, चीनी और शहद—ये '**मधुर-त्रय**' कहे हैं। इन्हें अलि-रूप अर्थात् '**मद्य**'-स्वरूप मानकर देवता को निवेदन करे (१७१)। कलि-युग के सभी मनुष्य स्वभावतः काम-द्वारा भ्रान्त चित्तवाले अतः सामान्य बुद्धिवाले होते हैं, जिससे वे '**शक्ति**' अर्थात् नारी को शक्ति-रूपा नहीं समझ पाते (१७२)। हे पार्वति ! इसी से उनके लिए '**शेष-तत्त्व**' अर्थात् '**मैथुन**'-तत्त्व के प्रतिनिधि (अनुकल्प) रूप में देवी के चरण-कमलों का ध्यान और इष्ट-मन्त्र का जप निर्दिष्ट है (१७३)। मांस आदि जो प्राप्त हों अर्थात् कलि-काल में अदूषित प्रत्येक '**तत्व**' को उक्त मन्त्र (**आं ह्रीं क्रों स्वाहा**) से १०० बार अभिमन्त्रित करे (१७४)। फिर लाई हुई समस्त वस्तुओं को ब्रह्म-मय समझते हुए दोनों आँखें बन्द कर उन्हें भगवती काली को निवेदित करे, तब स्वयं पान और भोजन करे (१७५)।

हे भद्रे ! यह '**भैरवी-चक्र**' सार का सार—श्रेष्ठ है। सभी तन्त्रों में गुप्त है, इसे तुमसे कहा है (१७६)। हे पार्वति ! '**भैरवी-चक्र**' और '**तत्व-चक्र**' में शैव-पद्धति से विवाह करना श्रेष्ठ साधकों का कर्त्तव्य है (१७७)। बिना विवाह किए शक्ति-सेवी वीर साधक पर-स्त्री-गमन के पाप को प्राप्त करते हैं, इसमें संदेह नहीं (१७८)। '**भैरवी-चक्र**' के आरम्भ होने पर सभी जातियों के व्यक्ति श्रेष्ठ द्विज हो जाते हैं। '**भैरवी-चक्र**' के समाप्त होने पर सभी अलग-अलग वर्ण के हो जाते हैं (१७९)। इस '**भैरवी-चक्र**' में जाति-विचार नहीं है, उच्छिष्ट (जूठे) का भी विचार नहीं है। '**चक्र**' में विद्यमान वीर मेरे ही स्वरूप होते हैं, अन्य नहीं (१८०)।

इस 'चक्र' में देश-काल का नियम नहीं है, पात्र का विचार नहीं है। किसी भी व्यक्ति के लाए द्रव्य को प्रयोग कर सकते हैं (१८१)। वीराचारी या पश्वाचारी द्वारा दूर-देश से लाया पका या बिना पका द्रव्य 'चक्र' में रखने से ही पवित्र हो जाता है (१८२)। हे महेश्वरि! 'भैरवी-चक्र' के आरम्भ में वीरों के ब्रह्म-तेज के प्रभाव से सभी विघ्न उद्विग्न और भयभीत होकर भाग जाते हैं (१८३)। पिशाच, गुह्यक, यक्ष, वेताल और अन्य क्रूर प्राणी 'भैरवी-चक्र' का नाम सुनते ही भय से दूर चले जाते हैं (१८४)। उस स्थान में सारे तीर्थ, महा-तीर्थ और देव-राज-सहित सभी देवता आदरपूर्वक आ जाते हैं (१८५)। हे शिवे! 'चक्र' का स्थान 'महा-तीर्थ' है, अतः सभी तीर्थों से श्रेष्ठ है, जिसमें देवता भी तुम्हें उत्तम नैवेद्य देने की इच्छा करते हैं (१८६)। म्लेच्छ, श्वपच, किरात या हूण आदि द्वारा लाए कच्चे या पके द्रव्य वीर के हाथ में देने से ही पवित्र हो जाते हैं (१८७)। कलि के पाप से दूषित व्यक्ति 'भैरवी-चक्र' और मेरे स्वरूप साधकों का दर्शन करने से ही पाप के पाश से छूट जाते हैं (१८८)। प्रबल कलि-काल में चक्रानुष्ठान को गोपनीय रखने की आवश्यकता नहीं है। वीराचारी सभी स्थानों में सभी समयों में 'कुल-साधना' करे (१८९)।

'चक्र' में व्यर्थ की बातचीत, चञ्चलता, वाचालता, छींकना-पादना और वर्ण-भेद अर्थात् वर्ण-विचार न करे (१९०)। क्रूर, दुष्ट, पश्वाचारी, पापी, नास्तिक, कुल-दूषक और कुल-शास्त्र के निन्दकों को 'चक्र' से दूर ही छोड़ दे (१९१)। स्नेह, भय या अनुराग के वश पश्वाचारी आदि को 'चक्र' में प्रवेश देने से वीराचारी भी 'कुल-धर्म' से भ्रष्ट होकर नरक में जाता है (१९२)। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या सामान्य जाति वाला 'कुल-धर्मावलम्बी' हो, उसे सदा देववत् पूज्य माने (१९३)। जो वर्णाभिमान के वश 'चक्र' में वर्ण-भेद करता है, वह वेदान्त-वेत्ता होने पर भी घोर नरक में जाता है (१९४)। 'चक्र' के अन्दर पवित्र-मनवाले, साधु और साक्षात् शिव-स्वरूप कौलिकों के सम्बन्ध में पाप की शङ्का कैसे हो सकती है (१९५)? शैव-मार्गावलम्बी विप्रादि लोग जब तक 'चक्र' में रहें, तब तक शिव के आदेशानुसार शाम्भवाचार का पालन करें (१९६)। ये सब 'चक्र' से बाहर होने पर लोक-यात्रा-निर्वाह के लिए अपने-अपने वर्ण और आश्रम के लिए निर्दिष्ट कर्मों का अलग-अलग पालन करें (१९७)।

शवासन, मुण्डासन और चितासन पर बैठकर सौ पुरश्चरण करने से जो फल मिलता है, वह ज्ञानी साधक 'चक्र' में एक बार जप करने से ही पा जाता है (१९८)। 'भैरवी-चक्र' का माहात्म्य कहने में कौन व्यक्ति समर्थ है? इसे एक बार करने से सारे पापों से छुटकारा मिल जाता है (१९९)। छः मास करने से भूपति, और एक वर्ष करने से साधक मृत्युञ्जय होता है। नित्य करने से निर्वाण-मुक्ति प्राप्त होती है (२००)। हे कालिके! इस विषय में अधिक कहने से क्या प्रयोजन? हे सुव्रते! सत्य जानो कि इस 'कुल-पद्धति' के अतिरिक्त और कोई दूसरा उपाय ऐहिक तथा पारलौकिक सुख पाने का नहीं है (२०१)।

सर्व-धर्म-शून्य कलि की प्रधानता के समय में 'कुल-धर्म' को छिपाने से कौल भी नरक को जाता है (२०२)। भोग और मोक्ष के एक-मात्र साधन 'भैरवी-चक्र' को मैंने कहा। हे कुलेश्वरि! अब 'तत्त्व-चक्र' को बताता हूँ, उसे सुनो (२०३)।

'तत्त्व-चक्र' सब चक्रों का राजा है। इसे 'दिव्य-चक्र' कहा गया है। ब्रह्मज्ञ साधक के सिवा अन्य को इसे करने का अधिकार नहीं है (२०४)। जो लोग परब्रह्म के उपासक हैं; ब्रह्मज्ञ, ब्रह्म-तत्पर, पवित्र अन्तःकरणवाले, सब प्राणियों का हित करने में लगे हुए, शान्त, निर्विकार, तन्त्र और गुरु-वाक्य पर विश्वास रखनेवाले, दया-शील, दृढ़-व्रती, सत्य-सङ्कल्प और ब्राह्म हैं, वही इस 'तत्त्व-चक्र' के करने के अधिकारी हैं (२०५-२०६)। हे तत्त्वज्ञे! जो इस चराचर को ब्रह्म-भाव से देखते हैं, उन्हीं तत्त्वज्ञ पुरुषों को इस 'तत्त्व-चक्र' के करने का अधिकार है

(२०७)। हे देवि ! जिन्हें इस प्रकार का भाव है कि 'सब कुछ ब्रह्म ही है, वही **'तत्त्व-चक्र'** हैं अर्थात् उन्हें ही **'तत्त्व-चक्र'** करने का अधिकार है (२०८)। इसमें घट की स्थापना नहीं होती, विस्तृत रूप में पूजा नहीं होती। सभी स्थानों में ब्रह्म-भाव से तत्त्व-साधन करे (२०९)। हे प्रिये ! ब्रह्म-मन्त्रोपासक और ब्रह्म-निष्ठ व्यक्ति चक्रेश्वर बने। ब्रह्मज्ञ साधकों के साथ **'तत्त्व-चक्र'** का आरम्भ करे (२१०)।

रमणीय, अत्यन्त निर्मल और साधकों को सुखदायक प्रदेश में विचित्र आसन लाकर विमल आसन की कल्पना करे (२११)। हे शिवे ! चक्रेश्वर ऐसे स्थान में ब्रह्म-साधकों के साथ बैठकर तत्त्व-समुदाय को एकत्र करे और तब उन्हें सामने स्थापित करे (२१२)। चक्रेश्वर सभी तत्त्वों पर तार-प्रणव अर्थात् 'ॐ हंसः' मन्त्र का सौ बार जप कर निम्न मन्त्र का पाठ करे (२१३)—

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म-हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्। ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्म-कर्म-समाधिना ॥

अर्थात् जिसके द्वारा यज्ञ में घृतादि अर्पित किया जाता है, उसे **'अर्पण'** कहते हैं अर्थात् स्रुवा आदि—वह ब्रह्म है। जो वस्तु अर्पित की जाती है अर्थात् घृत आदि—वह भी ब्रह्म है। ब्रह्म-अग्नि में स्वयं ब्रह्म द्वारा आहुति दी जाती है अर्थात् अग्नि और होम-कर्त्ता भी ब्रह्म हैं। इस प्रकार ब्रह्म-कर्म में जिसका चित्त एकाग्र होता है, वही ब्रह्म को प्राप्त करता है (२१४)।

उक्त मन्त्र **'ब्रह्मार्पणं·····समाधिना'** को सात या तीन बार जप कर सभी तत्त्वों का शोधन करे (२१५)। तब ब्राह्म मन्त्र से उन सबको परमात्मा को समर्पित कर ब्रह्मज्ञ साधकों के सहित एक साथ पान और भोजन करे (२१६)।

हे महेश्वरि ! इस **'तत्त्व-चक्र'** में जाति-गत पृथकता को छोड़ दे। इसमें देश-काल या पात्र का नियम नहीं है (२१७)। जो मूढ़ लोग इस **'दिव्य-चक्र'** में असावधानी से वंश-गत या जाति-गत भेद-भाव करते हैं, उन्हें अति निकृष्ट गति प्राप्त होती है (२१८)। अतः ब्रह्मज्ञ साधक धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष के लिए सब यत्न करके **'तत्त्व-चक्र'** का अनुष्ठान करे (२१९)।

श्री देवी ने कहा—हे प्रभो ! आपने गृहस्थों के धर्म को विस्तार से कहा है। अब कृपया संन्यास में विहित धर्मों को कहिए (२२०)।

श्री सदाशिव ने कहा—हे देवि ! कलि-युग में अवधूताश्रम ही संन्यास कहा गया है। जिस विधि से संन्यास आश्रम कर्त्तव्य है, उसे अब सुनो (२२१)। ब्रह्म-ज्ञान के उत्पन्न होने पर, सभी काम्य कर्मों से रहित होने पर, अध्यात्म-विद्या में विशारद व्यक्ति संन्यासाश्रम का अवलम्बन करे (२२२)। वृद्ध पिता-माता, शिशु पुत्र, पतिव्रता भार्या, असमर्थ बन्धु-वर्ग—इन सबको छोड़कर जो प्रव्रज्या करते हैं, वे नरक को जाते हैं (२२३)। कुलावधूत-संस्कार में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और सामान्य जाति—इन पाँचों वर्णों को अधिकार है (२२४)। साधक गृहस्थोचित कर्म सम्पन्न कर, अपने सभी स्वजनों को सन्तुष्ट कर, ममता और कामना-शून्य होकर तथा जितेन्द्रिय हो गृह से बाहर निकले (२२५)। गृहस्थाश्रम त्याग कर जाने की अभिलाषा रखनेवाला व्यक्ति अपने स्वजन बन्धुओं और आश्रित लोगों तथा गाँव के निवासियों को बुलाकर प्रेम-पूर्ण मन से अनुमति देने की प्रार्थना करे (२२६)। फिर सबकी अनुमति लेकर अभीष्ट देवता को प्रणाम कर गाँव की प्रदक्षिणा कर निरपेक्ष-हृदय से घर से बाहर निकले (२२७)। संसार-बन्धन से मुक्त होकर परमानन्द से सुखी होकर कुलावधूत ब्रह्मज्ञ के पास जाकर यह प्रार्थना करे (२२८)—

गृहाश्रमे पर-ब्रह्मन् ! ममैतद् विगतं वयः। प्रसादं कुरु मे नाथ ! संन्याम-ग्रहणं प्रति ॥

अर्थात् हे पर-ब्रह्मन् ! गृहस्थाश्रम में मेरी इतनी आयु बीत चुकी है। हे नाथ ! मैं अब संन्यास लेने के लिए आया हूँ, मुझ पर प्रसन्न हों (२२६)।

गुरुदेव विचार करके गृह-कर्म से निवृत्त उस व्यक्ति को शास्त्र और विवेक से युक्त देखकर द्वितीय आश्रम का आदेश प्रदान करें (२३०)। तब शिष्य स्नान कर संयतात्मा होकर आह्निक कर्म सम्पन्न कर तीन ऋणों से मुक्त होने के लिए देवताओं, ऋषियों और पितरों का तर्पण करे (२३१)। ब्रह्मा, विष्णु, अनुचरों सहित रुद्र—ये देव-गण, ब्रह्मर्षि-गण और सभी पितृ-गण संन्यास लेते समय पूज्य हैं। उन सबको बताता हूँ, सुनो (२३२-३३)।

हे देवि ! पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, पितामही, प्रपितामही, मातामह, प्रमातामह, वृद्ध-प्रमातामह, मातामही, प्रमातामही, वृद्ध-प्रमातामही की पूजा करे (२३४)। संन्यास लेते समय पूर्व दिशा में देव-गण एवं ऋषिगण और पश्चिम दिशा में मातामह-पक्ष की पूजा करे (२३५)। पूर्व-दिशा से आरम्भ कर दो-दो आसन स्थापित करे। इन आसनों पर क्रमशः देवादि का आवाहन कर पूजा आरम्भ करे (२३६)। फिर सबका अर्चन कर अलग-अलग पिण्ड-दान करे। इस प्रकार पिण्ड-दान की विधि के अनुसार यथा-क्रम पिण्ड देकर पितृ-गण एवं देव-गण से हाथ जोड़कर प्रार्थना करे (२३७)—

तृप्यध्वं पितरो देवा देवर्षि-मातृका-गणाः। गुणातीत-पदे यूयमनृणी-कुरुताऽचिरात्॥

अर्थात् हे पितृ-गण ! हे मातृ-गण ! हे देवर्षि-गण ! मैं गुणातीत पद को जा रहा हूँ। आप लोग मुझे शीघ्र ऋण से मुक्त कर दें (२३८)।

इस प्रकार देव, ऋषि, पितृ और मातृ-गण को बारम्बार प्रणाम कर और उनसे अपनी ऋण-मुक्ति की प्रार्थना कर ऋण-त्रय से छूटकर साधक आत्म-श्राद्ध करे (२३९)।

आत्मा ही सबकी पिता, पितामह और प्रपितामह है। अतः ज्ञानी व्यक्ति परमात्मा को आत्म-समर्पण करने के लिए अपना श्राद्ध करे (२४०)। हे देवि ! पूर्ववत् परिकल्पित आसन पर उत्तर की ओर मुख करके बैठे और अपने पितृ-गण का आवाहन कर अर्चन कर पिण्ड-दान करे। देव-गण, ऋषि-गण और पितृ-गण के लिए पिण्ड-दान हेतु यथा-क्रम पूर्वाग्र, दक्षिणाग्र, पश्चिमाग्र और अपने पिण्ड-दान हेतु उत्तराभिमुख कुश रखे (२४१-४२)। मुमुक्षु व्यक्ति गुरु द्वारा प्रदर्शित पद्धति के अनुसार श्राद्ध-कर्म समाप्त कर चित्त-शुद्धि के लिए सौ बार निम्न मन्त्र का जप करे (२४३)—

ह्रौं त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि-वर्द्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्॥

इस मन्त्र का अर्थ कृपया पृष्ठ ३२ पर देखें (२४४)।

इसके बाद गुरुदेव पूजा-पद्धति के अनुसार वेदी पर मण्डल प्रस्तुत कर उस पर कलश-स्थापन-पूर्वक पूजा प्रारम्भ करें (२४५)। फिर ब्रह्मज्ञ व्यक्ति परम ब्रह्म का ध्यान कर शैव पद्धति के अनुसार पूजा कर वह्नि-स्थापन करे (२४६)। तब गुरुदेव पूर्वोक्त संस्कृत वह्नि में स्व-कल्पोक्त आहुतियाँ देकर शिष्य को बुलाकर साकल्य-होम करावें (२४७)। पहले महा-व्याहृति-होम कर प्राण-होम अर्थात् प्राणादि पञ्च-वायु का होम करे। प्राण, अपान समान, उदान, व्यान—ये ही पञ्च प्राण-वायु हैं (२४८)। तब देह में आत्मा का अध्यास अर्थात् देह को आत्मा समझने का जो भ्रम है, उसे हटाने के लिए तत्त्व-होम करे। यथा—

पृथिवी सलिलं वह्निर्वायुराकाशं, गन्धो रसश्च रूपश्च स्पर्शः शब्दो, वाक्-पाणि-पादाश्च पायूपस्थौ श्रोत्रं त्वङ्-नयनं जिह्वा घ्राणं बुद्धीन्द्रियाणि च; मनो बुद्धिश्च चित्तं चाहङ्कारो देहजाः

क्रियाः, सर्वाणीन्द्रिय-कर्माणि प्राण-कर्माणि यानि च । एतानि मे शुद्धचन्तां । ह्रीं ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ।

अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश; गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द; वाक्य, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ; श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, जिह्वा, घ्राण; बुद्धि, इन्द्रियाँ; मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार; देह-जन्य सभी कार्य, इन्द्रिय-कार्य, प्राण-कार्य—ये सब मेरे शुद्ध हों, मैं ज्योति-स्वरूप होऊँ, रज और पाप से रहित होऊँ (२४६-५३)।

इस प्रकार २४ तत्त्वों और दैहिक कर्मों को अग्नि में होम कर निष्क्रिय होकर अपने शरीर को मरा हुआ समझे (२५४)। अपने शरीर को मृत-वत् और सर्व-कर्म-रहित भावना कर परमब्रह्म को स्मरण करता हुआ गले से यज्ञ-सूत्र को उठाकर वक्षःस्थल पर करते हुए स्कन्ध-देश पर रखे (२५५)। फिर तत्त्वज्ञ व्यक्ति 'ऐं क्लीं ह्रूँ' मन्त्र को पढ़ता हुआ यज्ञ-सूत्र को कन्धे से उतारकर अपने हाथों में धारण करे और व्याहृति-त्रय के अन्त में स्वाहा का उच्चारण करते हुए उक्त यज्ञोपवीत को घृत से संयुक्तकर अग्नि में डाल दे (२५६)। इस प्रकार यज्ञोपवीत का होम कर काम-बीज 'क्लीं' का उच्चारण करता हुआ शिखा को काटकर हाथ में लेकर घृत के बीच में स्थापित करे। फिर निम्न मन्त्र को पढ़कर उक्त शिखा को अग्नि में डाल दे (२५७)—

ब्रह्म-पुत्रि शिखे ! त्वं हि बाल-रूपा तपस्विनी । दीयते पावके स्थानं गच्छ देवि ! नमोऽस्तु ते । क्लीं ह्रीं हूं फट् स्वाहा ।

अर्थात् हे ब्रह्म-पुत्रि ! हे शिखे ! तुम केश-रूपा तपस्विनी हो। हे देवि ! तुम्हें अग्नि में स्थान देता हूँ। तुम जाओ। तुम्हें नमस्कार है (२५८-५९)।

पितृ, देव और देवर्षि-गण शिखा के ही आश्रय से रहते हैं और सभी आश्रमों के सारे कर्म शिखा पर ही आधारित हैं (२६०)। अतः देव, ऋषि, पितृ, देव-गण—सबको सन्तर्पित कर देही शिखा तथा यज्ञ-सूत्र का त्याग करने से ब्रह्म-मय हो जाता है (२६१)। यज्ञ-सूत्र और शिखा के ही परित्याग से द्विजों का संन्यास होता है (२६२)। शूद्र और सामान्य जातिवालों का संन्यास-संस्कार केवल शिखा-होम से होता है। शिखा-सूत्र का त्याग करने के बाद गुरुदेव को दण्डवत् प्रणाम करे (२६३)। गुरु शिष्य को उठाकर उसके दाहिने कान में निम्न मन्त्र सुनावे—

तत्त्वमसि महा-प्राज्ञ ! हंसः सोऽहं विभावय । निर्ममो निरहङ्कारः स्वभावेन सुखं चर ।।

अर्थात् हे महा-प्राज्ञ ! वह ब्रह्म तुम्हीं हो। तुम 'हंसः' और 'सोहं' की भावना करो। तुम अहङ्कार और ममता-रहित होकर अपने शुद्ध भाव में सुख से विचरण करो (२६४)।

इसके बाद ब्रह्म-तत्त्वज्ञ गुरुदेव घट और अग्नि का विसर्जन कर शिष्य को आत्म-स्वरूप मानकर उसे मस्तक से निम्न मन्त्र द्वारा प्रणाम करें (२६५)—

नमस्तुभ्यं नमो मह्यं तुभ्यं मह्यं नमो नमः । त्वमेव तत् तत्त्वमेव विश्व-रूप ! नमोऽस्तु ते ।।

अर्थात् तुम्हें नमस्कार है, मुझे नमस्कार है। तुम्हें और मुझे बारम्बार नमस्कार है। हे विश्व-रूप ! तुम्हीं वह हो अर्थात् जीव वही है अर्थात् जीव ही तुम हो, तुमको नमस्कार करता हूँ (२६६)।

जितेन्द्रिय और तत्त्व-ज्ञान-सम्पन्न ब्रह्म-मन्त्रोपासक लोग अपने मन्त्र का पाठ कर शिखा-छेदन कर संन्यास ग्रहण करते हैं (२६७)। ब्रह्म-ज्ञान द्वारा विशुद्ध व्यक्तियों को यज्ञ, पूजा और श्राद्धादि से क्या प्रयोजन ? वे स्वेच्छाचार-परायण होते हैं, उन्हें प्रत्यवाय नहीं होता (२६८)।

इसके बाद शिष्य सुख-दुःखादि-रूप द्वन्द्वों से रहित; कामनाओं से रहित, स्थिर-चित्त और साक्षात् ब्रह्म-मय होकर भू-तल पर स्वेच्छानुसार विचरण करे (२६६)। वह ब्रह्म से स्तम्ब अर्थात् तृण-गुच्छ पर्यन्त सारे विश्व को सत्-स्वरूप समझे, नाम-रूप को भूलकर आत्मा से आत्मा का ध्यान करता हुआ, आवास-शून्य, क्षमा-शील, निःशङ्क-हृदय, संसर्ग-शून्य, ममता-शून्य, अहङ्कार-शून्य और संन्यासी होकर भू-मण्डल में विचरण करे (२७०-७१)। वह शास्त्र के विधि-निषेध से मुक्त हो जाता है। वह प्राप्त विषय की रक्षा और अप्राप्य विषय के पाने की चेष्टा न करे। वह सुख-दुःख में समान, धीर, जितेन्द्रिय और इच्छा-शून्य रहे (२७२)। दुःख होने पर भी उसका अन्तःकरण स्थिर रहता है और सुख होने पर वह उसकी स्पृहा नहीं करता। वह सदा आनन्द-युक्त, पवित्र, शान्त, निरपेक्ष और व्याकुलता से शून्य रहता है (२७३)। वह किसी व्यक्ति को उद्विग्न न करे; सदा सब प्राणियों का हित करने में लगा रहे; क्रोध, भय, सङ्कल्प और उद्यम से वह शून्य रहे (२७४)। शोक, द्वेष से शून्य और शत्रु-मित्र में समदर्शी रहे। वह शीत, वात, धूपादि प्रकृति के कष्टों के सहन करने में समर्थ बने और मान-अपमान को समान समझे (२७५)। शुभ-अशुभ को समान रूप में देखे। अपने आप प्राप्त होनेवाली वस्तुओं से ही वह सन्तुष्ट रहे। वह त्रिगुणातीत, निर्विकल्प, लोभ-शून्य होकर सञ्चय से दूर रहे (२७६)।

जगत् मिथ्या-स्वरूप होने पर भी जिस प्रकार एकमात्र सत्य-स्वरूप परमात्मा का आश्रय लेकर सत्य प्रतीत होता है, उसी प्रकार आत्मा का आश्रय लेकर मिथ्या-भूत यह देह आत्म-वत् प्रतीत होती है, इसे अनुभव कर संन्यासी सुखी हो (२७७)। इन्द्रियाँ अलग-अलग अपने-अपने कर्म करती हैं। आत्मा साक्षी और निर्लिप्त है, इसे जानकर संन्यासी मोक्ष को प्राप्त करता है (२७८)। संन्यासी धातु-द्रव्य का लेना, पर-निन्दा, मिथ्या व्यवहार स्त्रियों के साथ क्रीड़ा, शुक्र-त्याग और असूया—इन सबका परित्याग करे (२७९)। परिव्राजक संन्यासी देवता, मनुष्य या कीट सबके प्रति समदर्शी हो। सभी कर्मों के समूह-रूप जगत् को 'ब्रह्म' ही जाने (२८०)। ब्राह्मण का अन्न हो या चाण्डाल का, जिस किसी व्यक्ति का अन्न हो और किसी भी देश से आया हो, यह सब देश-काल का विचार न कर भोजन करे (२८१)। अवधूत व्यक्ति स्वेच्छाचारी होकर भी वेदान्त आदि अध्यात्म-शास्त्र के अध्ययन और सदा आत्म-तत्त्व के विचार करने में अपना समय बिताए (२८२)।

संन्यासियों की मृत देह को कभी जलाए नहीं। इस देह को गन्ध-पुष्पादि से अर्चित कर भूमि में समाधिस्थ करे या जल में डुबो दे (२८३)। हे देवि! सदा कामाभिलाषी मनुष्य, जिन्हें योग नहीं प्राप्त होता, ऐसे सभी लोगों की स्वभावतः कर्मकाण्ड में प्रवृत्ति होती है (२८४)। ये लोग कर्मकाण्ड में आसक्त होकर ध्यान, पूजा, जप आदि साधनों में दृढ़ होकर उन्हीं को कल्याणकारी मानते हैं (२८५)। इसी कारण मैंने चित्त-शुद्धि के लिए कर्मकाण्ड का विधान बताया है और इसीलिए मैंने बहुत प्रकार के नाम-रूपों की कल्पना की है (२८६)। हे देवि! ब्रह्म-ज्ञान और कर्म-संन्यास के बिना सौ कल्पों तक भी कर्म करने से कोई व्यक्ति मुक्ति को प्राप्त नहीं कर सकता (२८७)। ब्रह्म-ज्ञान-सम्पन्न कुलावधूत मनुष्याकृति होकर भी जीवन्मुक्त है। गृहस्थ उन्हें साक्षात् नारायण जान-कर उनकी पूजा करते हैं (२८८)। यति का दर्शन करने मात्र से मनुष्य के सभी पाप दूर होकर उन्हें तीर्थ, तपस्या, दान और सभी यज्ञानुष्ठानों का फल प्राप्त होता है (२८९)।

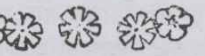

नवाँ उल्लास--दस प्रकार के संस्कार

श्री सदाशिव ने कहा—हे सुव्रते ! सभी वर्णों और आश्रमों के आचार और धर्म को मैंने तुमसे कहा। अब सभी वर्णों के '**संस्कार**' कहता हूँ, सुनो (१)।

हे देवि ! '**संस्कार**' के बिना देह की शुद्धि नहीं होती। असंस्कृत व्यक्ति देव और पैत्र कर्मों के करने का अधिकारी नहीं हो पाता। इसलिए इस लोक और परलोक में अपना कल्याण चाहनेवाले ब्राह्मण, विप्रादि वर्णों को प्रयत्न करके अपने-अपने वर्ण के लिए निर्दिष्ट 'संस्कार' को अवश्य करना चाहिए (२-३)।

१ जीव-सेक अर्थात् गर्भाधान, २ पुंसवन, ३ सीमन्तोन्नयन, ४ जातकर्म, ५ नामकरण, ६ निष्क्रमण, ७ अन्नप्राशन, ८ चूड़ाकरण (मुण्डन), ९ उपनयन (यज्ञोपवीत) और १० विवाह—ये '**दस संस्कार**' कहे हैं। शूद्र और सामान्य जाति में उपनयन नहीं होता, अतः उनके लिए नौ ही संस्कार हैं। द्विजों के लिए दस संस्कार कहे हैं (४)।

हे वरारोहे ! नित्य, नैमित्तिक और काम्य सभी कर्म शम्भु द्वारा बताए मार्ग से करे (५-६)। हे प्रिये ! जिस-जिस कर्म में जो-जो विधान निर्दिष्ट हैं, वह सब ब्रह्मा-रूप से मैंने पहले ही प्रकट कर दिये हैं (७)। सभी संस्कार और ब्राह्मणादि वर्ण-भेद के अनुसार अन्यान्य मन्त्र मैंने प्रकाशित किए हैं (८)। हे कालिके ! सत्य, त्रेता और द्वापर युगों में उन-उन सब कर्मों के अनुष्ठान-काल में पहले प्रणव लगाकर मन्त्रों का प्रयोग करे (९)। हे परमेशानि ! शङ्कर के आदेशानुसार कलि-युग में पहले ॐकार के स्थान पर माया-बीज '**ह्रीं**' लगावे और उन उन मन्त्रों द्वारा सारे कर्म करे (१०)। निगम, आगम, तन्त्र, वेद और संहिता में समस्त मन्त्र मेरे ही द्वारा कहे गए हैं। युग-भेद से प्रयोग-भेद में कहे हैं (११)।

हे कल्याणि ! कलि-काल के मनुष्यों के प्राण अन्न में रहते हैं, जिससे वे तेज-हीन होते हैं। उन्हीं के हित के लिए 'कुल-धर्म' का निरूपण किया गया है (१२)। कलियुग के दुर्बल जीव परिश्रम सहने में असमर्थ हैं, उनके लिए संस्कारादि की क्रिया संक्षेप में तुमसे कहता हूँ।

हे सुर-वन्दिते ! 'कुशण्डिका' सभी शुभ कर्मों के आदि में की जाती है। अतः पहले उसे बताता हूँ, सुनो—

बुद्धिमान् व्यक्ति फूस, अङ्गार आदि से रहित, रमणीय, परिष्कृत स्थान में एक हाथ का स्थण्डिल बनाए (१३-१५)। उस मण्डल के पूर्वाग्र में तीन रेखाएँ खींचे। उन्हें कूर्च—'**हूं**' मन्त्र से अभ्युक्षित कर वह्नि-बीज '**रं**' से अग्नि लाये (१६)। वाग्भव अर्थात् '**ऐं**' मन्त्र का स्मरण करते हुए मण्डल के बगल में अग्नि को स्थापित करे (१७)। तब दाएँ हाथ से उसमें जलती हुई लकड़ी लेकर निम्न मन्त्र का उच्चारण करते हुए दक्षिण दिशा में राक्षस का अंश छोड़ दे (१८)—

ह्रीं क्रव्यादेभ्यो नमः स्वाहा।

इसी प्रकार प्रतिष्ठित अग्नि को दोनों हाथों से उठाकर 'मायाद्या' अर्थात् आदि में माया-बीज '**ह्रीं**' लगा कर व्याहृति को स्मरण करते हुए अपने आगे अंकित तीन रेखाओं पर स्थापित तृण-काष्ठ द्वारा उक्त अग्नि को

प्रज्वलित करे और इसी अग्नि में दो घृताक्त समिधाओं को आहुति देकर कर्मानुसार अग्नि का विहित नामकरण करके अग्नि का ध्यान करे (१६-२०)। यथा--

बालार्करुण-सङ्काशं सप्त-जिह्वं द्वि-मस्तकम्। अजारूढं शक्ति-धरं जटा-मुकुट-मण्डितम्॥

अर्थात् बाल-सूर्य के समान अरुण वर्ण, सात जिह्वाओं वाले, दो मस्तकों से युक्त, छाग पर सवार, शक्ति लिए हुए, जटा और मुकुट से शोभायमान अग्नि-देव हैं (२१)।

इस प्रकार ध्यान कर हाथ जोड़कर अग्नि का आवाहन करे (२२)। आवाहन का मन्त्र यह है—

ह्रीं एह्येहि सर्वामर-हव्य-वाह ! मुनिभिः स्व-गणैः सह अध्वरं रक्ष रक्ष नमः स्वाहा।

इस प्रकार अग्नि का आवाहन कर कहे कि—

अयं ते योनिः।

फिर जो उपचार सुलभ हों, उनसे अग्निदेव की पूजाकर उनकी सप्त जिह्वाओं का पूजन करे (२३-२४)। सात जिह्वायें ये हैं—१ काली, २ कराली, ३ मनोजवा, ४ सुलोहिता, ५ सुधूम्र-वर्णा, ६ स्फुलिङ्गिनी, ७ विश्व-निरूपिणी। ये सभी लोलायमाना अर्थात् लपलपाती हुई उज्ज्वल हैं (२५)। हे महेश्वरि ! अग्नि को पूर्व-दिशा से आरम्भ कर उत्तर दिशा तक तीन बार प्रोक्षण करे। फिर यज्ञीय वस्तुओं पर भी तीन बार प्रोक्षण करे (२६-२७)। तब मण्डल की पूर्व-दिशा से आरम्भ कर उत्तर दिशा तक कुश द्वारा आच्छादन करे। उत्तर दिशा में स्थित कुशों को उत्तर-मुख और अन्य दिशाओं के कुशों को पूर्व-मुख रखे (२८)। अग्नि को दाएँ रखते हुए अर्थात् अग्नि को बाईं ओर ब्रह्मासन के पास जाकर बाएँ हाथ की अंगुष्ठ-कनिष्ठा अंगुलियों से ब्रह्मा के कल्पित आसन से एक कुश-पत्र लेकर निम्न मन्त्र का उच्चारण करते हुए अग्नि की दक्षिण दिशा में फेंक दे (२९)—

ह्रीं निरस्तः परावसुः। सोद यज्ञ-पते ब्रह्मन् ! इदं ते कल्पितासनम्।

अर्थात् हे यज्ञ-पते, हे ब्रह्मन् ! यह आसन तुम्हारे लिए प्रस्तुत है, इस पर बैठिए।

ब्रह्मा कहे (ब्रह्मा के प्रतिनिधि-रूप कोई न हो, तो स्वयं कहे)—

सोदामि।

अर्थात् 'मैं बैठता हूँ।' यह कहकर ब्रह्मा उत्तर-मुख होकर उक्त आसन पर बैठे (३०-३१)। गन्ध-पुष्पादि से ब्रह्मा को पूजा कर उनसे प्रार्थना करे (३२)। यथा—

गोपाय यज्ञं यज्ञेश ! यज्ञं पाहि बृहस्पते ! मां च यज्ञ-पतिं पाहि कर्म-साक्षिन् नमोऽस्तु ते॥

अर्थात् हे यज्ञेश्वर ! यज्ञ की रक्षा करो। हे बृहस्पते ! यज्ञ की रक्षा करो। मैं यज्ञ-पति हूँ, मेरी भी रक्षा करो। हे कर्म-साक्षिन् ! तुम्हें नमस्कार है (३३)।

उत्तर में ब्रह्मा कहें—

गोपयामि।

अर्थात् 'मैं रक्षा करता हूँ।' ब्रह्मा के न होने पर स्वयं यह वचन कहे। यज्ञ की सिद्धि हेतु वहाँ दर्भ-मय विप्र की कल्पना कर ले। फिर कहे—

ब्रह्मन् ! इहागच्छागच्छ।

अर्थात् 'इस स्थान पर आइए, इस स्थान पर आइए।' इस प्रकार आवाहन कर पाद्यादि द्वारा उनकी पूजा कर उनसे प्रार्थना करे—

यावद् यज्ञ-समापनं तावद् भवद्भिः स्थातव्यम् ।

अर्थात् 'जब तक यज्ञ समाप्त नहीं होता, तब तक आप यहाँ स्थित रहें।' इस प्रकार प्रार्थना कर उन्हें नमस्कार करे (३४-३५)। अग्नि के ईशान कोण से आरम्भ कर ब्रह्मा के निकट तक तीन बार स-जल हस्त से पर्युक्षण करे। फिर तीन बार अग्नि को प्रोक्षित कर उसी अर्थात् पहले जिस पथ से आए थे, उसी पथ से लौटकर अपने आसन पर बैठ जाय। तब मण्डल की उत्तर-दिशा में कुछ कुशों को उत्तराभिमुख करके बिछाये (३६-३७)। उसी पर स-जल प्रोक्षणी-पात्र, आज्य-स्थाली, समित् और कुश आदि सभी यज्ञीय वस्तुओं को रखे (३८)। फिर स्रुक्, स्रुवा आदि रखकर **'ह्रां ह्रीं ह्रूं'** मन्त्र का उच्चारण करते हुए दिव्य दृष्टि अर्थात् एकटक दृष्टि से उन सबको देखे और प्रोक्षण द्वारा उन्हें संस्कृत कर साधक भूमि पर दाएँ घुटने के बल बैठकर 'स्रुव' नामक यज्ञ-पात्र में रखे घृत को 'स्रुक' से लेकर अपने कल्याण की कामना करते हुए निम्न मन्त्र से तीन आहुतियाँ दे (३९-४०)—

ह्रीं विष्णवे स्वाहा ।

इसी प्रकार अर्थात् **'स्रुक्'** के द्वारा **'स्रुव'** में रखा घृत लेकर प्रजापति देव का ध्यान करते हुए वायु-कोण से आरम्भ कर अग्नि-कोण तक होम करे (४१)—

ह्रीं प्रजापतये स्वाहा ।

पुनः घृत लेकर पुरन्दर देव का ध्यान करते हुए नैऋत-कोण से ईशान-कोण तक घृत-धारा प्रदान करे (४२)—

ह्रीं पुरन्दराय स्वाहा ।

हे परमेश्वरि ! फिर अग्नि के उत्तर, दक्षिण और मध्य में क्रमशः अग्नि, सोम और अग्निषोम को तीन आहुतियाँ प्रदान करे—

ह्रीं अग्नये नमः । ह्रीं सोमाय नमः । ह्रीं अग्नी-षोमाभ्यां नमः ।

अब विधेय कर्म में कहे होम को करे (४३-४४)। तीन आहुति देने तक के उक्त कर्म को **'धारा-होम'** कहते हैं (४५)। जिस देवता के लिए आहुति दे, उसी देवता के उद्देश्य से देय वस्तु का उल्लेख करे। यथा—

ह्रीं विष्णवे स्वाहा, हविरिदं विष्णवे ।

इस प्रकार प्रकृत कर्म को समाप्त कर **'स्विष्ट-कृत होम'** करे (४६)। हे वरानने ! कलि-काल में **'प्रायश्चित्त होम'** नहीं होता, **'स्विष्टकृत'** और **'व्याहृति होम'** द्वारा प्रायश्चित्त हो जाता है (४७)। पूर्ववत् हवि लेकर अर्थात् स्रुव में रखे घृत को स्रुक् द्वारा ग्रहण कर मन-ही-मन ब्रह्मा का स्मरण कर निम्न मन्त्र से आहुति प्रदान करे (४८)—

ह्रीं अस्मिन् कर्मणि देवेश ! प्रमादाद् भ्रमतोऽपि वा ।
न्यूनाधिकं कृतं यच्च सर्वं स्विष्ट-कृतं कुरु ॥ स्वाहा ।

अर्थात् हे देवेश ! प्रमाद या भ्रम-वश इस कार्य में जो कुछ कम या अधिक हुआ हो, उस सबको मेरे लिए उत्तम फल-दायक करो (४९)।

यावद् यज्ञ-समापनं तावद् भवद्भिः स्थातव्यम् ।

अर्थात् 'जब तक यज्ञ समाप्त नहीं होता, तब तक आप यहाँ स्थित रहें।' इस प्रकार प्रार्थना कर उन्हें नमस्कार करे (३४-३५)। अग्नि के ईशान कोण से आरम्भ कर ब्रह्मा के निकट तक तीन बार स-जल हस्त से पर्युक्षण करे। फिर तीन बार अग्नि को प्रोक्षित कर उसी अर्थात् पहले जिस पथ से आए थे, उसी पथ से लौटकर अपने आसन पर बैठ जाय। तब मण्डल की उत्तर-दिशा में कुछ कुशों को उत्तराभिमुख करके बिछाये (३६-३७)। उसी पर स-जल प्रोक्षणी-पात्र, आज्य-स्थाली, समित् और कुश आदि सभी यज्ञीय वस्तुओं को रखे (३८)। फिर स्रुक्, स्रुवा आदि रखकर '**ह्रां ह्रीं ह्रूं**' मन्त्र का उच्चारण करते हुए दिव्य दृष्टि अर्थात् एकटक दृष्टि से उन सबको देखे और प्रोक्षण द्वारा उन्हें संस्कृत कर साधक भूमि पर दाएँ घुटने के बल बैठकर '**स्रुव**' नामक यज्ञ-पात्र में रखे घृत को '**स्रुक**' से लेकर अपने कल्याण की कामना करते हुए निम्न मन्त्र से तीन आहुतियाँ दे (३९-४०)—

ह्रीं विष्णवे स्वाहा ।

इसी प्रकार अर्थात् '**स्रुक्**' के द्वारा '**स्रुव**' में रखा घृत लेकर प्रजापति देव का ध्यान करते हुए वायु-कोण से आरम्भ कर अग्नि-कोण तक होम करे (४१)—

ह्रीं प्रजापतये स्वाहा ।

पुनः घृत लेकर पुरन्दर देव का ध्यान करते हुए नैर्ऋत-कोण से ईशान-कोण तक घृत-धारा प्रदान करे (४२)—

ह्रीं पुरन्दराय स्वाहा ।

हे परमेश्वरि ! फिर अग्नि के उत्तर, दक्षिण और मध्य में क्रमशः अग्नि, सोम और अग्निषोम को तीन आहुतियाँ प्रदान करे—

ह्रीं अग्नये नमः । ह्रीं सोमाय नमः । ह्रीं अग्नी-षोमाभ्यां नमः ।

अब विधेय कर्म में कहे होम को करे (४३-४४)। तीन आहुति देने तक के उक्त कर्म को '**धारा-होम**' कहते हैं (४५)। जिस देवता के लिए आहुति दे, उसी देवता के उद्देश्य से देय वस्तु का उल्लेख करे। यथा—

ह्रीं विष्णवे स्वाहा, हविरिदं विष्णवे ।

इस प्रकार प्रकृत कर्म को समाप्त कर '**स्विष्ट-कृत होम**' करे (४६)। हे वरानने ! कलि-काल में '**प्रायश्चित्त होम**' नहीं होता, '**स्विष्टकृत**' और '**व्याहृति होम**' द्वारा प्रायश्चित्त हो जाता है (४७)। पूर्ववत् हवि लेकर अर्थात् स्रुव में रखे घृत को स्रुक् द्वारा ग्रहण कर मन-ही-मन ब्रह्मा का स्मरण कर निम्न मन्त्र से आहुति प्रदान करे (४८)—

ह्रीं अस्मिन् कर्मणि देवेश ! प्रमादाद् भ्रमतोऽपि वा ।
न्यूनाधिकं कृतं यच्च सर्वं स्विष्ट-कृतं कुरु ॥ स्वाहा ।

अर्थात् हे देवेश ! प्रमाद या भ्रम-वश इस कार्य में जो कुछ कम या अधिक हुआ हो, उस सबको मेरे लिए उत्तम फल-दायक करो (४९)।

फिर निम्न मन्त्र से आहुति प्रदान करे—

ह्रीं त्वमग्ने ! सर्व-लोकानां पावनः स्विष्ट-कृत् प्रभुः ।
यज्ञ-साक्षो क्षेम-कर्त्ता सर्वान् कामान् प्रपूरय ॥ स्वाहा ।

अर्थात् हे अग्ने ! तुम सब लोकों को पवित्र करनेवाले, अभीष्ट देनेवाले, प्रभु, यज्ञ के साक्षी और मंगल-कारी हो । तुम मेरी सभी कामनाओं को पूर्ण करो (५०) ।

इस प्रकार 'स्विष्ट-कृत होम' को सम्पन्न कर यह प्रार्थना करे—

कर्मणोऽस्य परब्रह्मन्नयुक्तं विहितं च यत् । तच्छान्त्यै यज्ञ-सम्पत्त्यै व्याहृत्या हूयते विभो ॥

अर्थात् हे परब्रह्मन् ! इस कर्म में जो कुछ अयुक्त हुआ है, उसको शान्ति के लिए और यज्ञ-सम्पत्ति के लिए मैं व्याहृति द्वारा होम करता हूँ (५१) ।

यह प्रार्थना कर व्याहृति-होम करे । यथा—

ह्रीं भूः स्वाहा । ह्रीं भुवः स्वाहा । ह्रीं स्वः स्वाहा । ह्रीं भूर्भुवः स्वः स्वाहा ।

इस प्रकार चार आहुतियाँ देकर ज्ञानी यज्ञ-कर्त्ता यजमान के साथ पूर्णाहुति प्रदान करे (५२-५३) । यदि कर्म करनेवाला स्वयं ही यजमान हो, तो स्वयं आहुति दे । अभिषेक आदि विधानों में इसी प्रकार की विधि कही है (५४) । पूर्णाहुति का मन्त्र यह है—

ह्रीं यज्ञ-पते पूर्णो भवतु यज्ञो मे हृष्यन्तु यज्ञ-देवताः । फलानि सम्यग् यच्छन्तु स्वाहा ॥

अर्थात् हे यज्ञ-पते ! मेरा यह यज्ञ पूर्ण हो, यज्ञ के देवता प्रसन्न हों, इस यज्ञ का पूरा फल प्रदान करें (५५) ।

ज्ञानी व्यक्ति दण्डायमान होकर एकाग्र-चित्त से उक्त मन्त्र द्वारा फल और ताम्बूल-सहित अग्नि में पूर्णा-हुति प्रदान करे (५६) ।

पूर्णाहुति देकर शान्ति-कर्म करे । पहले प्रोक्षणी-पात्र से कुश द्वारा गृहीत जल द्वारा निम्न दो मन्त्रों को पढ़ते हुए अपने मस्तक का अच्छी तरह मार्जन करे (५७)—

१—आपः सुमित्रियाः सन्तु भवन्त्वोषधयो मम । आपो रक्षन्तु मां नित्यमापो नारायणः स्वयम् ॥
२—आपो हिष्ठा मयो भुवस्ता न ऊर्जे दधातनः ।

अर्थात् जल मेरे उत्तम बन्धु स्वरूप हों, मेरे लिए ओषधि-स्वरूप हों, जल मेरी नित्य रक्षा करें, जल स्वयं नारायण है । हे जल ! तुम सुख दो, तुम मुझे ऐहिक विषय दो ।

उक्त दोनों मन्त्रों से क्रमशः मस्तक को सिक्त कर कुश द्वारा ईशान-कोण में निम्न मन्त्र पढ़ते हुए भूमि पर जल-विन्दु छोड़े (५८-५९)—

ये द्विषन्ति च मां नित्यं यांश्च द्विष्मो नरान्वयं । आपो दुर्मित्रियास्तेषां सन्तु भक्षन्तु तानपि ॥

अर्थात् जो नित्य मुझसे द्वेष करते हैं, हम जिन लोगों से द्वेष करते हैं, उनके लिए जल शत्रु-स्वरूप हों और उन्हें भक्षण करें (६०) ।

तदनन्तर कुशों का त्याग कर हाथ जोड़कर अग्नि से प्रार्थना करे (६१)—

बुद्धिं विद्यां बलं मेधां प्रज्ञां श्रद्धां यशः श्रियम् । आरोग्यं तेज आयुष्यं देहि मे हव्य-वाहन ॥

अर्थात् हे हव्य-वाहन ! मुझे बुद्धि अर्थात् शास्त्रादि तत्त्व-ज्ञान, बल अर्थात् शक्ति, मेधा अर्थात् धारणा-

शक्ति, प्रज्ञा अर्थात् सारासार-विवेक की निपुणता, श्रद्धा, यश, श्री, आरोग्य, तेज, आयु—यह सब प्रदान करो। (६२-६३)।

हे शिवे ! इस प्रकार अग्निदेव की प्रार्थना कर निम्न मन्त्र द्वारा उनका विसर्जन करे —

यज्ञ यज्ञ-पतिं गच्छ यज्ञं गच्छ हुताशन। स्वां योनिं गच्छ यज्ञेश ! पूरयास्मन्मनोरथम् ॥
अग्ने ! क्षमस्व स्वाहा।

अर्थात् हे यज्ञ ! तुम यज्ञ-पुरुष विष्णु के पास जाओ। हे हुताशन ! तुम यज्ञ में प्रविष्ट हो जाओ। हे यज्ञेश्वर ! तुम अपने स्थान को जाओ और मेरे मनोरथ को पूरा करो। हे अग्ने ! क्षमा करो (६४)।

इस मन्त्र को पढ़ते हुए अग्नि की उत्तर दिशा में दही की आहुति देकर अग्नि को दक्षिण दिशा में खिसका दे (६५)। तब ब्रह्मा को दक्षिणा देकर भक्ति से नमस्कार कर उन्हें विदा करे। फिर निम्न मन्त्र पढ़ते हुए यज्ञ-कर्ता 'स्रुव' नामक यज्ञ-पात्र में लगी भस्म से अपने ललाट पर तिलक लगाए (६६-६७)—

ह्रीं क्लीं सर्व-शान्ति-करो भव।

तब निम्न मन्त्र पढ़ता हुआ मस्तक के ऊपर आयु बढ़ानेवाला पुष्प धारण करे—

शान्तिरस्तु शिवं चास्तु वासवाग्नि-प्रसादतः। मरुतां ब्रह्मणश्चैव वसु-रुद्र-प्रजापतेः ॥

अर्थात् इन्द्र, अग्नि, ब्रह्मा, प्रजापति, वसु-गण, रुद्र-गण और मरुद्-गण के प्रसाद से शान्ति हो और मंगल हो (६८)।

तब होम और प्रकृत कर्म की यथा-शक्ति दक्षिणा प्रदान करे (६९)। हे देवि ! मैंने तुमसे सभी सत्कर्मों में की जानेवाली यह 'कुशण्डिका' कही। कुल-साधक लोग शुभ कर्म के पूर्व यत्न-पूर्वक इसका अनुष्ठान करें (७०)।

हे शिवे ! वंश-परम्परा के अनुसार जिन्हें प्रकृत कर्म में 'चरु' करने का नियम है, उनको कर्म-सिद्धि के लिए 'चरु'-कर्म बताता हूँ (७१)। पहले ताम्र-मयो या मृण्मयी 'चरु'-स्थाली प्रस्तुत करे (७२)। फिर कुशण्डिका में कही विधि से द्रव्य-संस्कार तक के सब कर्म करके अपने सामने 'चरु'-स्थाली को लाए (७३)। इस 'चरु'-स्थालो को अक्षत और अछिद्र देखकर प्रादेश-बराबर एक पवित्र कुश स्थाली के मध्य में रखे (७४)। हे सुर-वन्दिते ! फिर यज्ञ-स्थल में तण्डुल लाकर स्थण्डिल के पास रखे। जिस कर्म में जिस देवता की पूजा करने की रीति हो, उसके नाम में चतुर्थी विभक्ति लगाकर उसका उल्लेख कर 'त्वा जुष्टम्' कहे और क्रमशः 'गृह्णामि' (लेता हूँ), 'निर्वपामि' (स्थाली में रखता हूँ), 'प्रोक्षामि' (जल छिड़कता हूँ) कह कर प्रत्येक देवता के लिए चार-चार मुट्ठी तण्डुल ले, स्थालो पर रखे और उस पर जल छिड़के (७५-७७)। हे सुव्रते ! तब उन पर दूध और चीनी देकर एकाग्र हृदय से सुसंस्कृत अग्नि में पाक-विधि से उस सबको उत्तम रूप से पकाये (७८)। जब समझे कि अन्न पक गया है और कोमल हो गया है, तब उसमें स्रुव से घृत छोड़े (७९)। तब अग्नि की उत्तर दिशा में कुश के ऊपर 'चरु'-पात्र स्थापित कर उसमें पुनः तीन बार घृत देकर कुश द्वारा 'चरु'-स्थाली को आच्छादित करे (८०)। फिर 'चरु'-स्थाली से 'स्रुव' नामक यज्ञ-पात्र में कुछ 'चरु' लेकर उसमें घी देकर 'जानु'-होम करे (८१)। तदनन्तर 'धारा'-होम करके प्रधान कर्म में यहाँ जो देवता पूज्य हों, उन्हीं देवताओं को मन्त्र द्वारा आहुति प्रदान करे (८२)। इस प्रकार प्रकृत होम को समाप्त कर प्रायश्चित्त-होम करके कर्म समाप्त करे (८३)।

दश-विध संस्कार के समय और प्रतिष्ठा के समय इसी प्रकार की विधि कही है। शुभ कर्म के आदि में

कर्म-सिद्धि के लिए यह करणीय है (८४)।

हे महा-माये ! अब **'गर्भाधान'** आदि सब क्रियाएँ बताता हूँ। उनके क्रम के अनुसार पहले **'ऋतु-संस्कार'** कहता हूँ, सुनो (८५)। नित्य-कर्म समाप्त कर शुद्ध-शरीर होकर ब्रह्मा, दुर्गा, गणेश, ग्रह-गण और दिक्-पति-गण —इन पञ्च-देवताओं की पूजा करे (८६)। स्थण्डिल की पूर्व दिशा में घट के ऊपर इन सब देवताओं की पूजा कर क्रमशः गौरी आदि सोलह मातृकाओं की पूजा करे (८७ । मातृ-गण ये हैं—१ गौरी, २ पद्मा, ३ शची, ४ मेधा, ५ सावित्री, ६ विजया, ७ जया, ८ देवसेना, ९ स्वधा, १० स्वाहा, ११ शान्ति, १२ पुष्टि, १३ धृति, १४ क्षमा, १५ आत्म-देवता, १६ कुल-देवता (८८)। निम्न मन्त्र पढ़कर इन सबका आवाहन करे—

आयान्तु मातरः सर्वास्त्रिदशानन्द-कारिकाः । विवाह-व्रत-यज्ञानां सर्वाभीष्टं प्रकल्प्यताम् ।।
यान-शक्ति-समारूढाः सौम्य-मूर्ति-धराः सदा । आयान्तु मातरः सर्वा यज्ञोत्सव-समृद्धये ।।

अर्थात् हे देव-गण को आनन्द-दायिनी सभी माताओं ! आप सब आयें। विवाह-व्रत और यज्ञों के सभी अभीष्ट फल को प्रदान करें। हे सभी माताओं ! अपने-अपने यान और शक्ति पर आरूढ़ होकर, सदा सौम्य मूर्ति धारण कर, यज्ञोत्सव की समृद्धि के लिए आप सब आएँ (८९-९०)।

इस प्रकार मातृका-गण का आवाहन कर और यथा-शक्ति उनकी पूजा कर नाभि तक ऊँची—देहली से प्रादेश तक स्थान में सिन्दूर और चन्दन द्वारा सात या पाँच विन्दु प्रदान करे (९१)। ज्ञानी व्यक्ति काम, माया रमा अर्थात् **'क्लीं ह्रीं श्रीं'** इन तीन बीजों का स्मरण करते हुए प्रत्येक विन्दु को लक्ष्य कर अविच्छिन्न घृत-धारा प्रदान करे और उनमें गन्ध-पुष्पादि से **'वसु'** नामक देवता की पूजा करे (९२)। धीर व्यक्ति मेरे द्वारा कही पद्धति से इस प्रकार **'वसु-धारा'** की रचना कर, स्थण्डिल-विरचना के बाद, अग्नि-स्थापन-पूर्वक होम-द्रव्यों का संस्कार कर श्रेष्ठ **'चरु-पाक'** करे (९३)। इस ऋतु-संस्कार के कार्य में **'प्राजापत्य'** नामक **'चरु'** और **'वायु'** नामक अग्नि है। **'धारा-होम'** तक का सब कार्य समाप्त कर **'ऋतु-संस्कार'** कर्म आरम्भ करे (९४)। निम्न मन्त्र पढ़ते हुए चरु-द्वारा तीन आहुतियाँ प्रदान करे—

ह्रीं प्रजापतये स्वाहा ।

फिर एक आहुति निम्न मन्त्र से दे—

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु । आसिंचतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ।। स्वाहा

अर्थात् विष्णु उत्पत्ति-स्थान (योनि) की रचना करें। त्वष्टा रूप को परिष्कृत करें। प्रजापति अभिषेक करें। धाता तुम्हारे गर्भ का पोषण करें (९५-९६)।

इसके बाद सूर्य, प्रजापति और विष्णु का ध्यान करते हुए घृत द्वारा, चरु द्वारा या सघृत-चरु द्वारा आहुति प्रदान करे (९७)। यथा— देवी सिनीवाली, सरस्वती और दोनों अश्विनी-कुमारों का ध्यान कर निम्न मन्त्र से उत्तम आहुति प्रदान करे—

गर्भं धेहि शिनीवाली, गर्भं धेहि सरस्वती । गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्कर-स्रजौ ।। स्वाहा

अर्थात् तुम शिनीवाली-स्वरूपा होकर गर्भ धारण करो। तुम सरस्वती-स्वरूपा होकर गर्भ धारण करो। पद्म-पुष्प-माला-धारी दोनों अश्विनीकुमार देव तुममें गर्भ स्थापित करें (९८-९९)।

तब काम, वधू, माया, रमा और कूर्च अर्थात् 'क्लीं स्त्रीं ह्रीं श्रीं हूँ' इन वीजों का उच्चारण कर सूर्य और विष्णु का ध्यान कर निम्न मन्त्र से आहुति प्रदान करे (१००)—

अमुष्यै पुत्र-कामायै गर्भमाधेहि स्वाहा ।

फिर विष्णु का ध्यान करते हुए निम्न मन्त्र से आहुति दे (१०१)—

यथेयं पृथिवी देवी ह्युत्ताना गर्भमादधे। तथा त्वं गर्भमाधेहि दशमे मासि सूतये ।। स्वाहा

अर्थात् यह उत्ताना पृथ्वी देवी जिस प्रकार गर्भ धारण करे, उसी प्रकार दसवें मास में प्रसव होने के लिए तुम गर्भ धारण करो।

पुनः आज्य (घृत) लेकर परात्पर विष्णु का ध्यान करते हुए निम्न मन्त्र से आहुति छोड़े (१०२)—

विष्णो ! ज्येष्ठेन रूपेण नार्यामस्यां वरीयसम्। सुतमाधेहि स्वाहा ।।

अर्थात् हे विष्णो ! तुम श्रेष्ठ रूप द्वारा इस नारी में श्रेष्ठ सन्तान का आधान करो।

इसके बाद काम-वीज-पुटित माया अर्थात् **'क्लीं ह्रीं क्लीं'** और माया-पुटित वधू अर्थात् **'ह्रीं स्त्रीं ह्रीं'** तथा पुनः काम **'क्लीं'**, माया-वीज **'ह्रीं'** का पाठ कर भार्या के मस्तक को छुये (१०३)। इसके बाद पति-पुत्रवती स्त्रियों से घिरकर पति अपने दोनों हाथों से पत्नी के मस्तक को छूते हुए विष्णु, दुर्गा, ब्रह्मा और सूर्य का ध्यान कर उसके क्रोड़ाञ्चल में तीन फल देकर स्विष्टकृत-होम कर प्रायश्चित्त-होम द्वारा कर्म को समाप्त करे (१०४-१०५)। अथवा सायंकाल में गौरी-शङ्कर की पूजा कर सूर्यार्घ्य देकर दम्पति का शोधन करे (१०६)। यह तुमसे **'ऋतु-शोधन'** का कर्म कहा, अब **'गर्भाधान'** बताता हूँ, सुनो (१०७)। उसो ऋतु-संस्कार को रात्रि में अथवा किसो अन्य युग्म रात्रि में घर के भोतर जाकर प्रजापति देव का ध्यान कर पत्नी को छूते हुए पति माया-वीज **'ह्रीं'** का उच्चारण कर निम्न मन्त्र पढ़े (१०८-१०९)—

ह्रीं आवयोः सुप्रजाये त्वं शय्ये शुभकरी भव।

अर्थात् हे शय्ये ! हम दोनों की उत्तम सन्तान के लिए तुम शुभ करनेवाली बनो।

तब पत्नी के साथ शय्या पर चढ़कर पूर्व-मुख या उत्तर-मुख होकर बैठे और पत्नो को देखते हुए उसके मस्तक पर हाथ रखकर बाएँ हाथ से आलिङ्गन करने के बाद स्थान-स्थान पर मन्त्र का जप करे (११०)—

मस्तक पर काम-वीज **'क्लीं'** का १०० बार, चिवुक पर वाग्भव **'ऐं'** का १०० बार, कण्ठ पर रमा **'श्रीं'** का २० बार, दोनों स्तनों पर भी **'श्रीं'** वीज का सौ-सौ बार, हृदय पर माया-वीज **'ह्रीं'** का १० बार, नाभि पर भी **'ह्रीं'** वीज का २५ बार जप कर योनि पर हाथ रखकर काम-वीज-सहित वाग्भव अर्थात् **'क्लीं ऐं'** का १०८ बार जप कर लिङ्ग पर भो इसी **'क्लीं ऐं'** मन्त्र का जप करे। तब 'ह्रीं' मन्त्र जप कर योनि को विकसित कर सन्तान की कामना से पत्नी-गमन करे (१११-१३)। वीर्य-पात के समय प्रजापति का ध्यान कर पति नाभि के नीचे चित्-कुण्ड में रक्तिका नाड़ी में वोज का निक्षेप करे (११४)। वीर्य-त्याग के समय निम्न मन्त्र पढ़े—

यथाऽग्निना सगर्भा भूद्यौर्यथा वज्र-धारिणा। वायुना दिग् गर्भवती तथा गर्भवती भव ।।

अर्थात् जिस प्रकार पृथ्वी अग्नि द्वारा गर्भवती होती है, अमरावती इन्द्र द्वारा गर्भवती होती है, दिशा जिस प्रकार वायु द्वारा गर्भवती होती है, उसो प्रकार तुम गर्भवती हो (११५-१६)।

हेमहेश्वरि ! उसी ऋतु में अथवा अन्य ऋतु में गर्भ रहने पर—गर्भाधान के तोसरे महीने में **'पुंसवन'** संस्कार करे (११७)। पति नित्यकर्म समाप्त कर पञ्च-देवताओं की पूजा करे। फिर गौरो आदि सालह मातृकाओं की पूजा कर वसु-धारा प्रदान करे (११८)। तब वृद्धि श्राद्ध कर पूर्वोक्त विधि से धारा-होम तक कर्म सम्पन्न कर **'पुंसवन'**-क्रिया करे (११९)। उसमें **'प्राजापत्य'** नामक चरु और **'चन्द्र'** नामक अग्नि होते हैं (१२०)। पति गव्य दही में एक यव (जौ) और दो माष (उड़द) छोड़कर पत्नी से तीन बार पूछे—

भद्रे ! किं त्वं पिबसि ?

अर्थात् हे भद्रे ! तुम क्या पीती हो (१२१) ? इस पर पत्नी तीन बार कहे—

ह्रीं पुंसवनम् ।

अर्थात् पुत्र-प्रसव के लिए भूत वस्तु पीती हूँ। तब पत्नी तीन प्रसृति यव और माष-युक्त दधि का पान करे (१२२)। इसके बाद जीवित पुत्रोंवाली स्त्रियों के साथ पत्नी को पति याग-स्थान में लावे और अपनी बाईं ओर उसे बैठाकर चरु-होम आरम्भ करे (१२३)। पहले पूर्व-वत् चरु लेकर 'रक्षोघ्न' हुताशन का ध्यानकर रुद्र और प्रजापति का ध्यान करते हुए निम्न मन्त्र से बारह आहुतियाँ प्रदान करे (१२४-२६)—

ह्रीं हूं ये गर्भ-विघ्न-कर्त्तारो ये च गर्भ-विनाशकाः। भूताः प्रेताः पिशाचाश्च वेताला बाल-घातकाः।
तान् सर्वान् नाशय नाशय गर्भ-रक्षां कुरु कुरु स्वाहा ॥

अर्थात् गर्भ में विघ्न करनेवाले और गर्भ को नष्ट करनेवाले जो-जो भूत-प्रेत-पिशाच-वेताल तथा बाल-घाती हैं, उन सबका नाश करो, गर्भ की रक्षा करो। इसके बाद निम्न मन्त्र से ५ आहुतियाँ दे—

ह्रों चन्द्रमसे स्वाहा ।

तब पत्नी के हृदय को स्पर्श कर माया-लक्ष्मी अर्थात् **'ह्रीं श्रीं'** मन्त्र का १०० बार जप करे (१२७)। फिर स्विष्टकृत-होम कर प्रायश्चित्त-होम द्वारा **'पुंसवन'**-कर्म समाप्त करे।

पाँचवें महीने में पत्नी को पञ्चामृत प्रदान करे (१२८)। शर्करा, मधु, दुग्ध, घृत और दधि—सम-भाग इन पाँच द्रव्यों को **'पञ्चामृत'** कहते हैं। यह देह-शुद्धि के लिए विहित है (१२९)। हे शिवे ! पति इन पाँचों द्रव्यों में से प्रत्येक द्रव्य के ऊपर वाग्भव **'ऐं'**, मदन **'क्लीं'**, लक्ष्मी **'श्री'**, माया **'ह्रीं'**, कूर्च **'हूँ'** और इन्द्र **'लं'**—अर्थात् **'ऐं क्लीं श्रीं ह्रीं हूँ लं'** इन बीजों का पाँच-पाँच बार जप कर पञ्चामृत बनाकर पत्नी को पाँचवें महीने में पिलाये (१३०)।

छठे या आठवें मास में **'सीमन्तोन्नयन'** करे। जब तक सन्तान का जन्म न हो, तब तक की अवधि के मध्य में **'सीमन्तोन्नयन'** करना चाहिए (१३१)। ज्ञानी पति पूर्वोक्त धारा-होम तक के कर्म कर पत्नी-सहित आसन पर बैठकर क्रमशः तीन आहुतियाँ निम्न मन्त्रों से प्रदान करे (१३२)—

विष्णवे स्वाहा । भास्वते स्वाहा । धात्रे स्वाहा ॥

फिर चन्द्रमा का ध्यान कर **'शिव'** नामक हुताशन में **चन्द्र** के लिए सात बार आहुतियाँ दे (१३३)। हे शिवे ! दोनों अश्विनीकुमारों, इन्द्र, विष्णु, शिव, दुर्गा, प्रजापति—इन सबका ध्यान कर प्रत्येक को पाँच-पाँच आहुतियाँ दे (१३४)। तब पति दाएँ हाथ में स्वर्ण कङ्कतिका (कंघी) लेकर उसे सीमन्त (माँग) से लेकर बंधे हुए केश-पाश (जूड़े) में प्रविष्ट करे (१३५)। शिव, विष्णु और ब्रह्मा का ध्यान कर निम्न मन्त्र को पढ़े—

ह्रीं भार्ये कल्याणि सुभगे ! दशमे मासि सुव्रते ! सुप्रसूता भव प्रोता प्रसादाद् विश्व-कर्मणः ॥
आयुष्मतो कङ्कतिका वर्चस्वी ते शुभं कुरु ।

अर्थात् हे आर्ये ! हे कल्याणि ! हे सुभगे ! हे सुव्रते ! तुम दसवें मास में उत्तम सन्तान को जन्म देकर प्रसन्न और आयुष्मती होओ और विश्वकर्मा के प्रसाद से कङ्कतिका (कंघी) तुम्हारे तेज को बढ़ाये। तुम शुभ कार्य का अनुष्ठान करो (१३६-३७)।

तदनन्तर स्विष्ट-कृत होमादि द्वारा कर्म समाप्त करे (१३८)। सन्तान उत्पन्न होते ही धोर व्यक्ति सुवर्ण देकर पुत्र-मुख को देखकर सूतिका-गृह से भिन्न किसी अन्य गृह में पूर्वोक्त विधि से धारा-होम समाप्त करे (१३९)। फिर अग्नि, इन्द्र, प्रजापति, विश्वदेव-गण ओर ब्रह्मा के लिए पाँच आहुतियाँ प्रदान करे। तब पिता कांस्य-पात्र में मधु और घृत बराबर-बराबर लेकर उस पर वाग्भव 'ऐं' वीज का १० बार जप कर दाएँ हाथ की अनामिका द्वारा निम्न मन्त्र का उच्चारण करते हुए पुत्र को उसे चटाये (१४०-४१)—

आयुर्वर्चो बलं मेधा वर्धतां ते सदा शिशो।

अर्थात् हे शिशो! तुम्हारी आयु, तेज, बल और मेधा में निरन्तर वृद्धि हो (१४२)।

इस प्रकार आयुष्कर कार्य कर बालक का एक गुप्त नाम रखे। पुत्र के लाए जाने पर उसी नाम से उसे बुलाए (१४३)। इसके बाद प्रायश्चित्तादि होम कर जात-कर्म पूर्ण करे। तब धात्री उत्साह-पूर्वक नारी-छेदन करे (१४४)। जब तक नाड़ी-छेदन नहीं होता, तब तक शौच की बाधा नहीं होती अर्थात् अशौच नहीं होता। अतः नाड़ी-छेदन के पूर्व देवी और पैत्री क्रिया करता रहे (१४५)। कन्या के भी ये सभी कर्म अमन्त्रक करे।

छठे या आठवें मास में प्रकाश्य **'नामकरण'** करे (१४६)। **'नामकरण'** के समय माता शिशु पुत्र को स्नान कराकर उत्तम दो वस्त्र पहनाकर पति के पास लाए और उसे पूर्व-मुख करके बैठाए (१४७)। फिर पिता सुवर्ण-सहित कुशोदक द्वारा शिशु के मस्तक पर निम्न तीन मन्त्रों से जल छिड़के—

जाह्नवी यमुना रेवा सु-पवित्रा सरस्वती। नर्मदा वरदा कुन्ती सागराश्च सरांसि च।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु धर्म-कामार्थ-सिद्धये ॥१

ह्रीं आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन महे रणाय चक्षषे ॥२
ह्रीं यो वः शिवतमोरसस्तस्य भाजयतेऽन ऊष तीखि मातरः।
तस्मा अरङ्ग माम वोयस्य क्षयाय-जिन्नथ आपो जनयथा च नः ॥३

अर्थात्—१. गङ्गा, यमुना, रेवा, सुपवित्रा सरस्वती, नर्मदा, वरदा, कुन्ती, सभी सागर और सभी सरोवर —ये सब धर्म-काम-अर्थ की सिद्धि के लिए तुम्हारा अभिषेक करें (१४८-१४९)।

२. हे जल! तुम सुख-दाता हो, अतः हमारे लिए इस समय अन्न की व्यवस्था और पर-काल में पर-ब्रह्म से हमारा मिलन कराओ (१५०)।

३. माता के समान स्नेह-युक्त तुम हम लोगों को मङ्गलकारी रस का अधिकारी बनाओ। हे सभी जल! तुमने जिस रस द्वारा जगन्मण्डल को व्याप्त कर रखा है, उससे हम तृप्त हों, हमें उसका भोग कराओ (१५१)।

तदनन्तर पिता पूर्ववत् वह्नि-संस्कार कर धारा-होम तक सभी कार्य कर पाँच आहुतियाँ प्रदान करे (१५२)। **पार्थिव** नामक अग्नि में उक्त पाँच आहुतियाँ देते समय पहले अग्नि को, फिर वासव को, तब प्रजापति को, फिर विश्व-देव-गण को और तब ब्रह्मा को आहुति दे (१५३)। फिर पुत्र को गोद में लेकर उसके दाएँ कान में थोड़े अक्षरों का, सरलता से उच्चारण होनेवाला उसका नाम सुनाए (१५४)।

इस प्रकार तीन बार नाम सुनाकर स्विष्ट-कृत होम आदि सम्पन्न कर ब्राह्मणों का निवेदन कर कर्म समाप्त करें (१५५)। कन्या-सन्तान का निष्क्रमण, वृद्धि श्राद्ध नहीं है। उसका नामकरण, अन्न-प्राशन और चूडाकरण अमन्त्रक ही करे (१५६)।

चौथे या छठे मास में शिशु का **'निष्क्रमण'** संस्कार करे (१५७)। इस संस्कार के समय पिता स्नान व नित्य-क्रिया कर गणेश-पूजा करने के बाद शिशु को स्नान करा वस्त्र व अलङ्कार से भूषित कर अपने सामने बैठाए और निम्न मन्त्र पढ़े—

ब्रह्मा विष्णुः शिवो दुर्गा गणेशो भास्करस्तथा। इन्द्रो वायुः कुबेरश्च वरुणोऽग्निर्बृहस्पतिः।
शिशोः शुभं प्रकुर्वन्तु रक्षन्तु पथि सर्वदा॥

अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश, दुर्गा, गणेश, सूर्य, इन्द्र, वायु, कुबेर, वरुण, अग्नि और बृहस्पति—ये सब शिशु का मङ्गल करें और मार्ग में सदा रक्षा करें (१५८-१५९)।

तब पिता शिशु को गोद में लेकर आनन्द-पूर्ण स्वजनों से घिर कर गीत-वाद्य के साथ बालक को बाहर ले जाए (१६०)। मार्ग में कुछ दूर जाकर निम्न मन्त्र पढ़ते हुए बालक को सूर्य का दर्शन कराए (१६१)—

ॐ ह्रीं तच्चक्षुर्देव-हितं पुरस्तात् शुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतम्॥

अर्थात् शुक्र का अतिक्रम कर जो देव-गण के लिए भी हितकारी सूर्य-रूप चक्षु वर्तमान है, उसे हम एक सौ वर्ष तक देखें और एक सौ वर्ष तक जीवित रहें (१६२)।

फिर बालक को वापस अपने घर में लाकर सूर्य को अर्घ्य देकर आत्मीय स्वजनों को भोजन कराये (१६३)। हे शिवे! कुमार के छठे या आठवें मास में पिता या पितृव्य (चाचा) उसका **'अन्न-प्राशन'** संस्कार करे (१६४)। पूर्ववत् देव-पूजा आदि और वह्नि-सस्कार कर यथा-विधि धारा-होम तक कर्म कर **'शुचि'** नामक हुताशन में पाँच आहुतियाँ दे। अग्नि के लिए प्रथम आहुति, वासव के लिए द्वितीय, प्रजापति के लिए तृतीय, विश्वदेव-गण के लिए चतुर्थ और ब्रह्मा के लिए पञ्चम आहुति प्रदान करे (१६५-६७)। फिर पिता अग्नि में अन्नदा देवी का ध्यान कर उनके लिए पाँच आहुतियाँ देकर उसी घर में या अन्य गृह में वस्त्रालङ्कार-भूषित पुत्र को गोद में लेकर निम्न पञ्च प्राणाहुति-मन्त्र पढ़ते हुए क्रमशः पाँच बार उसे पायसामृत पिलाये (१६८)—

१. प्राणाय स्वाहा, २. अपानाय स्वाहा, ३. समानाय स्वाहा, ४. उदानाय स्वाहा, ५. व्यानाय स्वाहा।

फिर अन्न के सभी पदार्थों में से थोड़ा-थोड़ा लेकर शिशु के मुख में स्पर्श कराये (चखाये) (१६९)। तब शंख, तुरही आदि की ध्वनि कर प्रायश्चित्त होम कर क्रिया समाप्त करे। यह तुमसे **'अन्न-प्राशन'** की विधि कही। अब **'चूड़ाकरण'** की विधि कहता हूँ, सुनो (१७०)।

कुलाचार के अनुसार जन्म होने के तीसरे या पाँचवें वर्ष में संस्कार-सिद्धि के लिए बालक का **'चूड़ा-कर्म'** करे (१७१)। साधक देव-पूजा से धारा-होम तक के सभी कर्म सम्पन्न कर **'सत्य'** नामक अग्नि की उत्तर दिशा में वृष-गोमय-पूरित तिल और गोधूम (गेहूँ) संयुक्त एक नया शराव (पात्र), कुछ उष्ण जल और एक तेज छुरी रखे (१७२-७३)। फिर पिता उसी स्थान में अपनी बाईं ओर बालक को मां को गोद में बैठाकर उक्त समस्त कुछ उष्ण जल से वरुण बीज **'वं'** का दस बार जप करते हुए उसके केशों को मार्जित करे। तब माया अर्थात् **'ह्रीं'** मन्त्र का पाठ करते हुए दो कुश-पत्रों से उसके मस्तक पर एक चोटी बनाए (१७४-७५)। माया, लक्ष्मी अर्थात् 'ह्रीं श्रीं' का तीन बार जप कर लोहे को छुरी को लेकर उक्त चोटी को काट कर उसे मां के हाथ में रखे (१७६)। बालक को माता उस चौटी को दोनों हाथों से लेकर उस गोमय-युक्त शराव में रखे। फिर पिता नाई के प्रति निम्न मन्त्र कहे—

क्षुर-मुण्डिन् ! शिशोः क्षौर सुखं साधय स्वाहा ।

अर्थात् हे नापित ! तुम सुखपूर्वक इस शिशु का क्षौर-कर्म करो ।

यह मन्त्र पढ़कर पिता नाई को देखता हुआ प्रजापति के लिए **'सत्य'** नामक अग्नि में तीन आहुतियाँ प्रदान करे (१७७-७८) । तब नाई बालक का क्षौर-कर्म करे और पिता उस बालक को स्नान कराकर वस्त्र, अलङ्कार, माला से विभूषित करे तथा अग्नि के पास अपनी बाईं ओर उसे बैठाकर स्विष्टिकृत होम करे । फिर प्रायश्चित्त होम कर पूर्णाहुति प्रदान करे (१७६-८०) । तब स्वर्ण, रजत या लोहे की शलाका द्वारा निम्न मन्त्र को पढ़ते हुए शिशु का कर्ण-वेध करे—

ह्रीं शिशो ! ते कुशलं कुरुतां विश्व-कृद् विभुः ।

अर्थात् हे शिशो ! विश्व-स्रष्टा विभु तुम्हारा मङ्गल करें (१८१) ।

फिर **'आपोहिष्ठा मयो भुव'** इस मन्त्र द्वारा पुत्र का अभिषेक कर शान्ति-कर्म और दक्षिणा प्रदान कर **'चूडा-कर्म'** समाप्त करे (१८२) ।

गर्भाधान से **चूडाकरण** तक के संस्कार-कर्म सभी जातियों के एक समान हैं । शूद्र और सामान्य जाति के ये सभी संस्कार अमन्त्रक होते हैं (१८३) । ब्राह्मण आदि पाँच वर्णों को कन्या के जात-कर्म से चूडाकरण तक के संस्कार—एकमात्र निष्क्रमण को छोड़कर—अमन्त्रक करने चाहिए (१८४) ।

अब द्विज-गण के **'उपनयन'**-कर्म की विधि कहता हूँ, जिसके करने से वे दैव और पैत्र कर्म करने के अधिकारी होते हैं (१८५) । गर्भ से आठवें या आठवें वर्ष की आयु से आठ वर्ष के समय के भीतर अर्थात् ब्राह्मण बालक का **'उपनयन'** संस्कार सोलह वर्ष की आयु के भीतर ही होना चाहिए । उसके बाद **'उपनयन'** करने की विधि नहीं है और वह दैव एवं पैत्र कर्म के करने का अधिकारी नहीं होता (१८६) ।

विद्वान् पिता नित्य-क्रिया करके पञ्च-देवताओं का पूजन करे । गौरी आदि १६ मातृकाओं की पूजा करे । फिर वसु-धारा दे (१८७) । तब देवताओं और पितरों की तृप्ति के लिए वृद्धि-श्राद्ध करे । कुशण्डिकोक्त विधि के अनुसार धारा-होम तक सभी कर्मों को करे (१८८) । प्रातःकाल अच्छी तरह स्नान कराकर, भोजन कराकर उत्तम अलंकार से विभूषित कर, शिखा के सिवा पूर्ण रूप से मुण्डित, रेशमी वस्त्र पहनाकर बालक को छाया-मण्डप में लाकर **'समुद्भव'** नामक अग्नि के पास अपनी बाईं ओर सुन्दर स्वच्छ आसन पर बैठाए । फिर गुरु उस शिष्य से कहे—

'ब्रह्मचर्यं कुरु वत्स !'

अर्थात् हे पुत्र ! ब्रह्मचर्य करो ।

शिष्य उत्तर में गुरु से निवेदन करे—

'ब्रह्मचर्यं करोमि ।'

अर्थात् मैं ब्रह्मचर्य करता हूँ (१८६-१६१) ।

तब गुरु प्रसन्न-हृदय से शान्त-हृदय शिशु के दीर्घायु और तेजोवृद्धि के लिए कषाय रंग के दो वस्त्र उसे प्रदान करे (१६२) । कषाय-वस्त्र-धारी इस बालक को गुरु मूंज या कुश की बनी, गाँठ लगी, तीन लट वाली मेखला मौन होकर दे (१६३) । बालक निम्न मन्त्र का उच्चारण कर मेखला को अपनी कमर में बाँधे—

ह्रीं सुभगा मेखला स्यात् शुभ-प्रदा ।

अर्थात् यह सुन्दर मेखला मेरे लिए कल्याणकारिणी हो।

तब मौन होकर बालक गुरु के सामने खड़ा हो (१६४)। अब गुरु निम्न मन्त्र को पढ़कर बालक को कृष्णाजिन से युक्त यज्ञोपवीत और वेणु या खदिर या पलाश या क्षीर-वृक्ष की लकड़ी से बना दण्ड प्रदान करे–

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं, वृहस्पतिर्यत् सहज पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रति-मुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥

अर्थात् यह यज्ञोपवीत परम पवित्र है, जो पूर्व काल में वृहस्पति का स्वाभाविक था। आयुष्कर, श्रेष्ठ, शुभ्र इस यज्ञोपवीत को तुम धारण करो। तुम्हारे बल और तेज की वृद्धि हो (१६५-१६६)।

इसके बाद दण्ड और उपवीत-धारी बालक को गुरु **'ह्रीं आपोहिष्ठा ह्रीं'** मन्त्र का तीन बार उच्चारण कर कुश-जल द्वारा अभिषिक्त कर जल से बालक की अञ्जलि को पूर्ण करे (१६७)। फिर ब्रह्मचारी उसी जलाञ्जलि से सूर्य के लिए अर्घ्य प्रदान करे। तब गुरु **'तच्चक्षुर्देव-हितं'** मन्त्र का पाठ करते हुए शिष्य को सूर्य का दर्शन कराये (१६८)।

सूर्य का दर्शन कर चुकने पर बालक से गुरु कहे—

मम व्रते मनो धेहि, मम चित्तं ददामि ते। जुषष्वैक-मना वत्स ! मम वाचोऽस्तु ते शिवम्।

अर्थात् तुम मेरे व्रत में मन लगाओ। मैं तुम्हें अपना चित्त देता हूँ। हे पुत्र ! तुम एक-मन होकर मेरे व्रत का आचरण करो। मेरी वाणी से तुम्हारा कल्याण हो (१६९)।

इस मन्त्र को पढ़कर गुरु बालक के हृदय को छूकर उससे पूछे—

'किं नामासि ?'

अर्थात् तुम्हारा नाम क्या है ?

उत्तर में शिष्य कहे—

'अमुक-शर्माऽहं भवन्तमभिवादये।'

अर्थात् मैं अमुक शर्मा आपको प्रणाम करता हूँ (२००)।

हे पार्वति ! तब गुरु यह पूछे—

'कस्य त्वं ब्रह्मचारी ?'

अर्थात् तुम किसके ब्रह्मचारी हो ?

शिष्य सावधान होकर उत्तर दे—

'भवतो ब्रह्मचार्यहम्।'

अर्थात् मैं आपका ब्रह्मचारी हूँ (२०१)।

इस पर सद्गुरु कहें—

'इन्द्रस्य ब्रह्मचारी त्वमाचार्यस्ते हुताशनः।'

अर्थात् तुम इन्द्र के ब्रह्मचारी हो, तुम्हारे आचार्य हुताशन हैं।

ऐसा कहकर सद्गुरु निम्न मन्त्र पढ़कर शिष्य को देवताओं के निकट समर्पित करे—

त्वां प्रजापतये वत्स ! सवित्रे वरुणाय च, पृथिव्यै विश्व-देवेभ्यः सर्व-देवेभ्य एव च।
समर्पयामि ते सर्वे रक्षन्तु त्वां निरन्तरम्।

अर्थात् हे पुत्र ! तुमको प्रजापति के लिए, सविता के लिए, वरुण के लिए, पृथिवी के लिए, विश्वदेवों के लिए, सब देवों के लिए समर्पित करता हूँ। वे सब तुम्हारी निरन्तर रक्षा करें (२०३)।

इसके बाद माणवक (ब्रह्मचारी) दक्षिणावर्त्त-क्रम से अग्नि की और गुरु की प्रदक्षिणा कर पुनः अपने आसन पर बैठे (२०४)। हे प्रिये ! तब गुरु शिष्य द्वारा स्पृष्ट होकर '**समुद्भव**' नामक अग्नि में पञ्च-देवों को पाँच आहुतियाँ प्रदान करे (२०५)। पञ्च-देव हैं—१. प्रजापति, २. शक्र, ३. विष्णु, ४. ब्रह्मा, ५. शिव (२०६)। पञ्च-देवों में से प्रत्येक के नाम के आदि में माया अर्थात् '**ह्रीं**' और अन्त में वह्नि-जाया अर्थात् '**स्वाहा**' लगाकर आहुति दे। यथा—

ह्रीं प्रजापतये स्वाहा, ह्रीं शक्रये स्वाहा, ह्रीं विष्णवे स्वाहा, ह्रीं ब्रह्मणे स्वाहा, ह्रीं शिवाय स्वाहा

इसी प्रकार, जिस मन्त्र की कोई विधि न कही हो, उसके आदि में 'ह्रीं' और अन्त में **स्वाहा** कहे। (२०७)। इसके बाद दुर्गा, महालक्ष्मी, सुन्दरी, भुवनेश्वरी, इन्द्रादि दश दिक्-पाल, सूर्यादि नव-ग्रह—इनमें से प्रत्येक का नामोल्लेख कर आहुति दे। फिर बालक को वस्त्र से आच्छादित कर गुरु ब्रह्मचर्याभिमानी उस माणवक से पूछे—

'को वाश्रमस्ते तनय ! ब्रूहि किं ते मनोगतम् ?'

अर्थात् हे पुत्र ! तुम्हारा आश्रम क्या है ? तुम्हारा मनोगत भाव क्या है ? बोलो (२०८-२०९)।

इस पर शिष्य सावधान होकर गुरु के दोनों चरणों को पकड़ कर कहे—

'करोतु मामाश्रमिणं ब्रह्म-विद्योपदेशतः।'

अर्थात् ब्रह्म-विद्या का उपदेश देकर मुझे आश्रमी बनाइए।

हे शिवे ! इस प्रकार प्रार्थना करनेवाले शिष्य के दाएँ कान में गुरु सर्व-मन्त्र-मय **प्रणव** (ॐ) को तीन बार सुनाकर '**भूर्भुवः स्वः**' इन तीन व्याहृतियों का उच्चारण कर गायत्री को सुनाए (२१०-२११)। यथा—

सदाशिव इस सावित्री के ऋषि कहे गए हैं। त्रिष्टुप् छन्द है। सावित्री अधिष्ठात्री देवी कही गई हैं। मोक्षार्थ विनियोग है (२१२)। पहले '**तत् सवितुः**,' फिर '**वरेण्यं**' इस पद का उच्चारण करे। तब '**भर्ग**' इस पद के बाद '**देवस्य धीमहि**' इस पद का पाठ करे (२१३)। हे परमेश्वरि ! उसके बाद '**धियो योनः प्रचोदयात्**' और पुनः **प्रणव** (ॐ) का उच्चारण कर गुरु शिष्य को गायत्री का अर्थ बताए (२१४)। यथा—

त्र्यक्षरात्मक '**प्रणव**' (ॐ) द्वारा परमेश्वर का प्रतिपादन होता है। सृष्टि-स्थिति-प्रलय-कर्त्ता जो देव प्रकृति से भी श्रेष्ठ है (२१५), वही देव त्रिलोक की आत्मा है। वह त्रिगुण अर्थात् सत्व, रज और तम को व्याप्त करके वर्तमान है, अतः '**भूर्भुवः स्वः**' इन तीन व्याहृतियों का वाच्य ब्रह्म है (२१६)। जो प्रणव और व्याहृति का वाच्य है, सावित्री द्वारा उसी ज्ञेय सविता अर्थात् जगद्-रूप वस्तु के सृष्टि-कर्त्ता, दोष्यादि क्रियाओं के आश्रय विभु के अन्तर्गत योगियों के वरणीय, सर्व-व्यापी और सनातन उसी महाज्योति का ध्यान करता हूँ (२१७-२१८)। यह महा-ज्योति सबकी साक्षी और ईश्वर है। हम सबकी मन, बुद्धि, सभी इन्द्रियों को धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष में प्रेरित करो अर्थात् नियोजित करो (२१९)।

हे देवि ! सद्गुरु इसी प्रकार अर्थ-सहित ब्रह्म-विद्या का उपदेश कर शिष्य को गृहस्थाश्रम के कर्म में नियुक्त करे (२२०)। यथा—

ब्रह्मचर्योचितं वेषं वत्सेदानीं परित्यज। शाम्भवोदित-मार्गेण देवान् पितॄन् समर्चय।
ब्रह्म-विद्योपदेशेन पवित्रं ते कलेवरम्। प्राप्तो गृहस्थाश्रमिता तदुक्तं कर्म कल्पय॥

उपवीत-द्वयं दिव्य-वस्त्रालङ्करणानि च । गृहाण पादुका-छत्रं गन्ध-माल्यानुलेपनम् ।।

अर्थात् हे पुत्र ! अब ब्रह्मचर्योचित वेश को छोड़ो । शम्भु द्वारा दर्शित मार्ग के अनुसार देवों और पितरों का अर्चन करो (२२१) । ब्रह्म-विद्या के उपदेश से तुम्हारा शरीर पवित्र हो गया है । तुम गृहस्थाश्रम को प्राप्त हुए हो । अतः तुम उसके निर्दिष्ट कर्म करो (२२२) । दो उपवीत, दो दिव्य वस्त्र, अलङ्कार, पादुका, छत्र, गन्ध, माला और अनुलेपन ग्रहण करो (२२३) ।

तदनन्तर शिष्य कृष्णाजिन से युक्त कषाय वस्त्र, यज्ञ-सूत्र, मेखला, दण्ड, भिक्षा-पात्र और आचार के अनुसार उपार्जित भिक्षा को गुरु को समर्पित कर शुद्ध दो यज्ञोपवीत और उत्तम दो वस्त्रों को पहनकर गन्ध तथा माला धारण कर आचार्य के पास मौन होकर बैठे । आचार्य गृहस्थाश्रमो से यह कहे (२२४-२२६)—

जितेन्द्रियः सत्य-वादी ब्रह्म-ज्ञान-परो भव । स्वाध्यायाऽऽश्रम-कर्माणि यथा-धर्मेण साधय ।।

अर्थात् तुम जितेन्द्रिय, सत्य-वादी और ब्रह्म-ज्ञान में तत्पर होओ । धर्मशास्त्र का लंघन न कर अध्ययन करो और गृहस्थाश्रम के सब कर्मों का पालन करो (२२७) ।

द्विज शिष्य को गुरु इस प्रकार आदेश देकर पहले माया (ह्रीं) और सबसे अन्त में प्रणव (ॐ) का उच्चारण करते हुए '**भूः भुवः स्वः**' इन तीन मन्त्रों द्वारा '**समुद्भव**' नामक अग्नि में तीन बार होम कराकर स्विष्टकृत होम कर हे भद्रे ! पूर्णाहुति देने के बाद '**उपनयन**'-क्रिया को समाप्त करे (२२८-२२९) ।

हे प्रिये ! जीव-सेक से लेकर उपनयन तक के नौ संस्कार पिता द्वारा हो सम्पन्न हो सकते हैं । '**उद्वाह-संस्कार**' पिता अथवा स्वयं करे (२३०) । कार्य-कुशल व्यक्ति विवाह के दिन स्नान के बाद नित्य-क्रिया करके पञ्च-देवों की पूजा कर गौरी आदि १६ मातृकाओं का पूजन करे । फिर वसुधारा देकर वृद्धि-श्राद्ध करे (२३१) । पहले से निश्चित वर-पात्र के गीत-वाद्य के साथ निशा-काल में आने पर उसे छाया-मण्डप में लाकर वर के आसन पर पूर्वाभिमुख करके बैठाए (२३२) । दाता पश्चिमाभिमुख होकर बैठे । कन्या-दाता पहले आचमन कर ब्राह्मणों के साथ स्वस्ति और ऋद्धि का पाठ करे (२३३) । फिर कन्या-दाता वर से कुशल-प्रश्न और अर्चना-प्रश्न करके प्रश्न का उत्तर लेकर पाद्यादि द्वारा वर का अर्चन करे (२३४) । '**समर्पयामि**' शब्द द्वारा देय द्रव्य प्रदान करे । दोनों चरणों में पाद्य और मस्तक पर अर्घ्य समर्पित करे (२३५) । मुख में आचमनीय देकर उत्तम दो वस्त्र, गन्ध, माल्य, उत्तम आभूषण, रत्न और यज्ञ-सूत्र समर्पित करे (२३६) । फिर कांस्य-पात्र में दधि, घृत और मधु रखकर इसे '**मधुपर्कं समर्पयामि**' कहकर हाथ में प्रदान करे (२३७) । वर भी उस मधु-पर्क-पात्र को लेकर बाएँ हाथ में रखकर प्राणाहुति-मन्त्र '**प्राणाय स्वाहा**' इत्यादि को पढ़कर दाएँ हाथ के अँगूठे और अनामिका द्वारा पाँच बार सूंघ कर उस पात्र को उत्तर दिशा में रख दे । इस प्रकार मधुपर्क समर्पित कर वर को पुनः आचमन कराए (२३८-३९) । तब दूर्वा और आतप-तण्डुल हाथ में लेकर जामाता के दाएं जानु को पकड़कर विष्णु को स्मरण करते हुए '**तत् सत्**' इस वाक्य का उच्चारण कर मास, पक्ष, और तिथि का उल्लेख कर वर के प्रपितामह से पिता तक के प्रत्येक के गोत्र-प्रवर-सहित षष्ठ्यन्त नाम का उच्चारण और इसी प्रकार गोत्र-प्रवरादि-सहित द्वितीयान्त वर के नाम का उल्लेख कर उत्तम वर का वरण करे (२४०) । फिर इसी प्रकार कन्या के प्रपितामह से पिता तक के तीन पुरुषों के षष्ठ्यन्त नाम, गोत्र और प्रवर के सहित उच्चारण कर इसी प्रकार गोत्र-प्रवर-सहित द्वितीयान्त कन्या-नाम का उल्लेख कर कन्या-दाता कहे (२४१-४२)—

'ब्राह्मोद्वाहेन दातुं भवन्तं वृणेऽहम् ।'

अर्थात् ब्राह्म विवाह द्वारा कन्या-दान करने के लिए मैं तुम्हारा वरण करता हूँ (२४३) ।

इसके बाद वर कहे—

'वृतोऽस्मि ।'

अर्थात् 'मैं वृत होता हूँ ।' फिर कन्या-दाता वर से कहे—

'यथा-विहितं विवाह-कर्म कुरु ।'

अर्थात् 'विधि के अनुसार विवाह का कर्म करो ।' उत्तर में वर कहे—

'यथा-ज्ञानं करवाणि ।'

अर्थात् मुझे जैसा ज्ञान है, उसी के अनुसार करता हूँ (२४४) ।

तब वस्त्र और अलङ्कार से विभूषित कन्या को लाकर अन्य वस्त्र द्वारा आच्छादित करे । उसे वर के सम्मुख बैठाए (२४५) । फिर कन्या-दाता पुनः वस्त्र और अलंकार आदि द्वारा वर को पूजा कर वर के दाएँ हाथ में कन्या का हाथ रखे (२४६) । उसी हाथ के मध्य में फल, ताम्बूल और पञ्च-रत्न देकर पूजाकर वर को कन्या समर्पित करे (२४७) । समर्पण करते समय पहले अपनी कामना का उल्लेख कर तीन पुरुषों के नामोल्लेख-पूर्वक कारण का वर्णन कर चतुर्थी-विभक्ति वर के नाम के अन्त में लगाकर उसका उच्चारण करे (२४८) । तब तीन पुरुषों के नामोल्लेख पूर्वक कन्या के द्वितीयान्त नाम के बाद निम्न पद का उच्चारण करे—

'अर्चितां समलंकृतां साच्छादनां प्रजापति-देवताकां तुभ्यमहं सम्प्रददे ।'

और कन्या-दान करे । वर उत्तर में **'स्वस्ति'** कह कर कन्या को ग्रहण करे । कन्या-दाता वर से कहे (२४९)—

'धर्मे चार्थे च कामे च भवता भार्यया सह वर्त्तितव्यं ।'

अर्थात् तुम धर्म, अर्थ और काम के विषयों में भार्या के साथ मिलकर कार्य करना ।

वर उत्तर दे—**'वाढं वर्त्तितव्यम्'** अर्थात् मैं ऐसा ही करूँगा । फिर काम-स्तुति का पाठ करे (२५०-५१)—

दाता कामो गृहीताऽपि कामायाऽदाच्च कामिनीम् ।
कामेन त्वां प्रगृह्णामि कामः पूर्णोऽस्तु चावयोः ।।

अर्थात् काम सम्प्रदान करता है ; काम ही प्रतिग्रह करता है, काम ही काम-हेतु कामिनी को ग्रहण करता है । हे भार्ये ! मै काम-जन्य तुम्हे ग्रहण करता हूँ, हम दोनों के काम पूर्ण हों (२५२) ।

अब कन्या-दाता कन्या और जामाता से कहे—

प्रजापति-प्रसादेन युवयोरभि-वाञ्छितम् । पूर्णमस्तु शिवं चास्तु धर्मं पालयतां युवाम् ।।

अर्थात् प्रजापति के प्रसाद से तुम दोनों का अभीष्ट पूरा हो और तुम दोनों का कल्याण हो; तुम दोनों एकत्र होकर धर्म का पालन करो (२५३) ।

इसके बाद दाता मङ्गल गीत, वाद्य, शंख आदि की ध्वनि करते हुए कन्या और वर को वस्त्र से आच्छादित कर परस्पर शुभ-दृष्टि कराए (२५४) । फिर जामाता को यथा-शक्ति स्वर्ण और रत्न की दक्षिणा देकर अच्छिद्रावधारण करे (२५५) । तब उसी रात्रि में या अगले दिन वर को भार्या के साथ कर कुशण्डिकोक्त विधि से अग्नि-स्थापन करे (२५६) । इस स्थल में **'योजक'** नाम वह्नि और **'प्राजापत्य'** नामक चरु निर्दिष्ट है । वर धारा-होम तक सारा कार्य कर पाँच आहुतियाँ प्रदान करे (२५७) । शिव, दुर्गा, विष्णु, ब्रह्मा और इन्द्र—इन पंच-देवताओं का ध्यान कर प्रत्येक के लिए एक-एक आहुति संस्कृत अग्नि में दे (२५८) । फिर निम्न मन्त्र पढ़ते

हुए वर भार्या के दोनों हाथों को पकड़े—

पाणिं गृह्णामि सुभगे ! गुरु-देव-रता भव । गार्हस्थ्यं कर्म धर्मेण यथावदनुशीलय ।।

अर्थात् हे सुभगे ! मैं तुम्हारा पाणिग्रहण करता हूँ। तुम गुरु और देवता की भक्त होकर धर्मानुसार यथा-विधि गृहस्थी के कार्य करो (२५६)।

हे शिवे ! तब वधू स्वामी द्वारा दिए घृत और भाई द्वारा दिए लाज (लावा) से प्रजापति के लिए चार बार आहुति प्रदान करे (२६०)। फिर वर भार्या के साथ खड़े होकर अग्नि की प्रदक्षिणा करे और दुर्गा-शिव, लक्ष्मी-विष्णु तथा ब्राह्मी-ब्रह्मा—इन दम्पतियों में से प्रत्येक दम्पति के लिए तीन-तीन आहुतियाँ प्रदान करे (२६१)। इसके बाद शिलारोहण और सप्त पद-गमन करे। यदि विवाह की रात्रि में ही कुशण्डिका हो, तो वर-वधू स्त्रियों के साथ होकर अरुन्धती का दर्शन करें (२६२)। फिर लौटकर वर आसन पर यथाविधि बैठकर स्विष्टकृत होम से लेकर पूर्णाहुति तक समस्त कार्य समाप्त करे (२६३)।

भिन्न-गोत्रा, असपिण्डा, सवर्णा के साथ कुल-धर्म के अनुसार ब्राह्म-विवाह करना निर्दोष है (२६४)। जो भार्या ब्राह्म-विवाह द्वारा पाणिगृहीता है, वही गृहेश्वरी होती है। इस पत्नी की अनुमति के बिना कोई व्यक्ति पुनः ब्राह्म-विवाह नहीं कर सकता (२६५)। हे कुलेश्वरि ! ब्राह्म-विवाह से विवाहिता पत्नी के गर्भ से उत्पन्न सन्तान या उसके वंश का कोई विद्यमान हो, तो शैव विवाह से विवाहता भार्या के गर्भ से उत्पन्न सन्तान धन की अधिकारी नहीं हो सकती (२६६)। हे परमेश्वरि ! शैव विवाह द्वारा विवाहिता स्त्री के गर्भ से उत्पन्न सन्तान या उसके वंश की सन्तानें धनाधिकारी व्यक्ति की सम्पत्ति के अनुसार उससे भोजन-वस्त्र पा सकती हैं (२६७)।

शैव विवाह के दो प्रकार हैं। '**कुल-चक्र**' में यह विवाह हो सकता है। चक्र के नियमानुसार एक प्रकार है और यावज्जीवन स्थायी विवाह दूसरा प्रकार है (२६८)। चक्रानुष्ठान के समय वीराचारी एकाग्र-चित्त हो शक्ति-साधकों और स्वजनों के बीच परस्पर इच्छा से विवाह करें (२६९)। इसके लिए भैरवियों और वीराचारी साधकों से अपना मनोरथ निवेदन करे। यथा—

'आवयोः शाम्भवोद्वाहे भवद्भिरनुमन्यताम् ।'

अर्थात् हम दोनों के शैव विवाह के सम्बन्ध में आप लोग अनुमति दें (२७०)। इस प्रकार उनकी अनुमति लेकर सप्ताक्षर मन्त्र अर्थात् '**परमेश्वरि स्वाहा**' का एक सौ आठ बार जप कर परमा कालिका को प्रणाम करे (२७१)। हे शिवे ! तब कौल-वर्ग के समक्ष उस रमणी से कहे—

'अकैतवेन चित्तेन पति-भावेन मां वृणु ।'

अर्थात् चित् में कोई कपट न रखकर पति-भाव से मुझे वरण करो (२७२)। हे देवेशि ! तब वह कौल कामिनी बड़ी श्रद्धा के साथ गन्ध-पुष्प-अक्षत द्वारा प्रियतम पति का वरण कर उसके हाथ में अपना हाथ प्रदान करे (२७३)। तदनन्तर चक्रेश्वर निम्न मन्त्र द्वारा उस दम्पति का अभिषेक करे। उस समय चक्र में उपस्थित सभी वीर लोग आदर के साथ '**स्वस्ति**' कहें (२७४)—

राज-राजेश्वरी काली तारिणी भुवनेश्वरी । वगला कमला नित्या युवां रक्षन्तु भैरवी ।।

अर्थात् सज-राजेश्वरी, काली, तारिणी, भुवनेश्वरी, वगला, कमला, नित्या और भैरवी—ये तुम दोनों की रक्षा करें (२७५)।

यह मन्त्र पढ़ते हुए मद्य अथवा अर्घ्य-जल द्वारा बारह बार दोनों का अभिषेक करे। फिर वह दम्पति

प्रणाम करे और ज्ञानी चक्रेश्वर उन्हें वाग्भव-रमा अर्थात् 'ऐं श्रीं' ये दो वीज सुनाए (२७६)। हे कुलेश्वरि ! वह कुलीन दम्पति उस शैव विवाह-स्थल में जो-जो स्वीकार किया जाय, उसका पालन शिवोक्त विधानानुसार उन्हें यत्न-पूर्वक करना होगा (२७७)। इस शैव-विवाह में आयु और वर्ण का विचार नहीं है। शम्भु के आदेशानुसार पति-हीना और असपिण्डा से ही विवाह करे (२७८)। जो स्त्री शैव धर्म-चक्र के नियमानुसार विवाहिता है, सन्तानार्थी वीर उसके नियमित ऋतु-काल को देखकर चक्र के निवृत्ति-काल में उसका परित्याग कर सकता है (२७६)। अनुलोम-क्रम में अर्थात् वर उच्चजाति का हो, कन्या निम्न जाति की, तो इस कन्या की सन्तान मातृ-जाति के अनुरूप ही व्यवहार में मानो जायगी। विलोम-क्रम में अर्थात् वर निम्न जाति का हो और कन्या उच्च जाति की, तो उसके गर्भ से उत्पन्न सन्तान को सामान्य जाति को समझा जायगा (२८०)। इन सभी सङ्कर जातिवालों के पितृ-श्राद्धादि में कौल व्यक्तियों को भोज्य द्रव्य देना और भोजन कराना होगा (२८१)। हे देवि ! भोजन और मैथुन मनुष्यों को स्वभाव से ही प्रिय हैं। अतएव उनके संक्षेप के लिए और हित-साधन के लिए शैव धर्म में उनकी सीमा निर्दिष्ट की गई है (२८२)। हे महेश्वरि ! इसीलिए शिव-प्रवर्तित धर्म का सेवन करने से मनुष्य धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष का पूर्ण अधिकारी होता है, इसमें सन्देह नहीं (२८३-८४)।

● × ●

दसवाँ उल्लास : वृद्धि-श्राद्धादि का कथन

देवी ने कहा—हे नाथ ! आपसे दस प्रकार के संस्कारों और कुशण्डिका की विधि सुनी। अब कृपा करके मुझे '**वृद्धि-श्राद्ध**' का विधान बताइए (१)। हे शंकर ! किस संस्कार में अथवा किस प्रतिष्ठा-कर्म में '**कुशण्डिका**' और '**वृद्धि-श्राद्ध**' करना है और कहाँ नहीं करना है, वह सब मेरी प्रसन्नता के लिए तथा जीवों के कल्याण के लिए ठीक-ठीक बताइए (२-३)।

श्री सदाशिव ने कहा—हे भद्रे ! गर्भाधान से विवाह तक दस संस्कारों में जो कार्य जिसमें विहित हैं, वह सब मैं विशेषकर कहता हूँ (४)। हे वरानने ! मैंने उक्त प्रकार से जिस स्थल पर जैसी विधि बताई है, कल्याण-कामी तत्त्वज्ञ लोग उसी प्रकार अनुष्ठान करें। उससे भिन्न अन्य स्थलों पर जैसी विधि है, वह कहता हूँ, सुनो (५)।

हे प्रिये ! वापी, कूप, तड़ाग, देव-प्रतिमा, गृह, उद्यान, व्रत आदि सभी प्रतिष्ठा-कार्यों में पञ्च-देव-पूजा, मातृकाओं की पूजा, वसुधारा, वृद्धि-श्राद्ध और कुशण्डिका करना चाहिए (७)। जो कर्म स्त्रियों द्वारा होते हैं, उनमें वृद्धि-श्राद्ध नहीं होता, केवल देवताओं और पितरों की तृप्ति के लिए एक भोज करना चाहिए (८)। स्त्रियाँ पुरोहित द्वारा भक्ति-पूर्वक देव-पूजन, षोडश-मातृका-पूजन, वसुधारा-दान और कुशण्डिका करावें (६)। हे शिवे ! दैव और पितृ-कर्मों में पुत्र, पौत्र, दौहित्र, भागिनेय, जामाता और पुरोहित को प्रतिनिधि बनाना प्रशस्त है (१०)।

हे कालिके ! '**वृद्धि-श्राद्ध**' को बताता हूँ, सुनो (११)। नित्य-कर्म समाप्त कर अत्यन्त एकाग्र होकर गङ्गा, यज्ञेश्वर विष्णु, वास्तुदेव और भू-स्वामी की पूजा करे (१२)। फिर 'प्रणव' (ॐ) का स्मरण करते हुए दर्भ (**कुश**) का ब्राह्मण बनाये। पाँच, नौ, सात या तीन कुश-पत्र लेकर उन्हें दक्षिणावर्त ढाई बार लपेट कर

बटने से उक्त दर्भ-मय ब्राह्मण की रचना होती है (१३-१४)। हे शिवे ! **'वृद्धि-श्राद्ध'** में और **'पार्वणादि श्राद्धों'** में छः ब्राह्मणों की विधि है किन्तु **'एकोद्दिष्ट श्राद्ध'** में केवल एक ही ब्राह्मण बताया है (१५)। उक्त कुश-मय ब्राह्मणों को एक पात्र में उत्तर-मुख रखे और निम्न मन्त्र से उन्हें स्नान कराए (१६)—

ह्रीं शन्नो देवीरभीष्टये शन्नो भवन्तु पीतये शंयोरभिस्रवन्तु नः।

अर्थात् जल-देवता हमारे अभीष्ट को सिद्धि के लिए मंगल करें; हमारे पीने के लिए मङ्गल करें; हम पर सब प्रकार कल्याण की वर्षा करें (१७)।

इसके बाद गन्ध-पुष्प से कुश-मय ब्राह्मणों की पूजा करे (१८)। फिर पश्चिम और दक्षिण दिशा में तिल सहित दो-दो तुलसी-पत्र लेकर दर्भ-युक्त छः पात्र स्थापित करे (१९)। पश्चिम में स्थापित दो पात्रों में और दक्षिण में स्थापित चार पात्रों में क्रमशः पूर्व-मुख और उत्तर-मुख करके छः ब्राह्मणों को बिठाये (२०)। हे पार्वति ! पश्चिम में **'देव-पक्ष'**, दक्षिण में बाईं ओर **'पितृ-पक्ष'** और दक्षिण में दाईं ओर **'मातामह का पक्ष'** जाने (२१)। हे वरानने ! आभ्युदयिक श्राद्ध में पितरों को **'नान्दीमुख'** और माताओं को **'नान्दीमुखी'** पद से विभूषित कर उनका उल्लेख करे। मातामह और मातामही आदि का भी उल्लेख इसी प्रकार करे (२२)।

'दैव कर्म' उत्तर-मुख होकर दक्षिणावर्त-क्रम से और **'पितृ-कर्म'** दक्षिण-मुख होकर वामावर्त-क्रम से करे (२३)। हे शिवे ! माता को माता, पितादि का लंघन करके श्राद्ध करने से वह निष्फल होता है। तात्पर्य यह है कि पितृ-कर्म में दक्षिणावर्त-क्रम से दक्षिण-मुख न होवे (२४)। **'दैव-कर्म'** के समय उत्तर-मुख होकर अनुज्ञा-वाक्य का पाठ करे और **'पितृ तथा मातामहादि के कर्म'** के समय दक्षिण-मुख होकर। हे शुचि-स्मिते ! पहले **'दैव पक्ष'** के अनुज्ञा-वाक्य को सुनो (२५)—

अद्येतस्य·····तत्तत्-कर्माभ्युदयार्थं अमुक-गोत्रामुक-शर्मणः पितुः, अमुक-गोत्रामुक-शर्मणः पितामहस्य, अमुक-गोत्रामुक शर्मणः प्रपितामहस्य; अमुक-गोत्रामुकी-देवी मातुः, अमुक-गोत्रामुकी-देवी पितामह्याः, अमुक-गोत्रामुकी-देवी प्रपितामह्याः; अमुक-गोत्रामुक-शर्मणः मातामहस्य, अमुक-गोत्रामुक-शर्मणः प्रमातामहस्य, अमुक-गोत्रामुक-शर्मणः वृद्ध-प्रमातामहस्य; अमुक-गोत्रामुकी-देवी मातामह्याः, अमुक-गोत्रामुकी-देवी प्रमातामह्याः, अमुक-गोत्रामुकी-देवी वृद्ध-प्रमातामह्याः विश्वेषां देवानां श्राद्धं कुश-निर्मितयोः ब्राह्मणयोरहं करिष्ये।

यही अनुज्ञा-वाक्य' है (२६-२९)। हे पार्वति ! पितृ-त्रय और मातामह-त्रय के नामों के साथ **'विश्वेषां देवानां'** पद का उच्चारण न करे (३०)। इसके बाद दस बार ब्रह्म-विद्या गायत्री का जप करे (३१)। फिर निम्न मन्त्र को तीन बार पढ़े—

देवताभ्यः पितृभ्यश्च महा-योगिभ्य एव च। नमोऽस्तु पुष्ट्यै स्वाहायै नित्यमेव भवन्तु ॥

अर्थात् देवताओं, पितरों और महा-योगियों को, पुष्टि को और स्वाहा को नमस्कार।

और हाथ में जल लेकर **'वं हुं फट्'** इस मन्त्र द्वारा श्राद्ध के सभी पदार्थों का शोधन करे (३२)। अर्थात् उक्त मन्त्र-पूत जल को पदार्थों पर छिड़के (३३)। तब अग्नि-कोण में एक पात्र स्थापित कर कहे कि—

रक्षोघ्नममृतं, मम यज्ञ-रक्षां कुरुष्व।

फिर उस पात्र में तुलसी-दल से युक्त जल डाले और देव-पक्ष से आरम्भ कर कुश-मय ब्राह्मणों को देवादि-क्रम से जल-गण्डूष देकर कुशासन प्रदान करे (३४-३५)। तब विश्व-देव-गण का, पितृ-त्रय का, मातृ-त्रय का, मातामह-त्रय का और मातामही-त्रय का आवाहन करे (३६)। फिर पहले विश्व-देव-गण की पूजा करे, तब

पितृ-त्रय, मातृ-त्रय, मातामह-त्रय और मातामही-त्रय को पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, धूप, दीप, वस्त्रादि द्वारा पूजा करे। पूजा कर देव-पक्ष से आरम्भ कर पात्र-पातन हेतु पूछे (३७-३८)।

इसके बाद माया-बीज 'ह्रीं' का उच्चारण कर देव-पक्ष के लिए एक चतुष्कोण-मण्डल बनाए। फिर इसी प्रकार पितृ-पक्ष और मातामह-पक्ष के लिए भी 'ह्रीं' से दो-दो मण्डल बनाए (३९)। वरुण-वीज **'वं'** से इन मण्डलों का प्रोक्षण कर इन पर क्रमशः पात्र स्थापित कर समस्त सामग्री-सहित पात्र को वीज से प्रक्षालित कर पाने के लिए जल-सहित क्रमशः अन्न रखे (४०)। फिर सभी अन्न पर मधु एवं यव प्रदान कर 'ह्रां हूँ फट्' इस मन्त्र से उस समस्त अन्न को जल द्वारा प्रोक्षित कर क्रमशः विश्वदेव-गण को, पितृ-गण को, मातृ-गण को, मातामह-गण को और मातामही-गण को उनका उल्लेख करते हुए उस अन्न को उन्हें निवेदित करे। फिर गायत्री और **'देवताभ्यः'** आदि मन्त्र का तीन बार पाठ करे (४१-४२)। हे आद्ये ! तब शेषान्न-प्रश्न और पिण्ड-प्रश्न करे (४३)। ब्राह्मणों से प्रश्न का उत्तर मिलने पर देने से बचे अक्षतादि द्वारा विल्व के समान बारह पिण्ड बनाए (४४)। उसी प्रकार का एक दूसरा पिण्ड बनाए। तब नैर्ऋत-कोण में मण्डल के ऊपर यव-सहित दर्भ (कुश) बिछाए (४५) और निम्न दो मन्त्रों का पाठ करते हुए अपिण्डों को पिण्ड-दान करे—

ये मे कुले लुप्त-पिण्डाः पुत्र-दार-विवर्जिताः। अग्नि-दग्धाश्च ये केऽपि व्याल-व्याघ्र-हताश्च ये ॥
ये बान्धवाबान्धवा वा येऽन्य-जन्मनि बान्धवाः। मद्-दत्त-पिण्ड-तोयाभ्यां ते यान्तु तृप्तिमक्षयां ॥

अर्थात् मेरे वंश में जो लुप्त-पिण्ड हैं; जो स्त्री-पुत्र से रहित हैं ; जो अग्नि से जले हैं ; जो सर्प, व्याघ्रादि द्वारा मरे हैं; जो मेरे बान्धव अबान्धव हैं या जो अन्य जन्म के मेरे बान्धव हैं, वे सब मेरे द्वारा दिए इस पिण्ड और जल द्वारा अक्षय तृप्ति को प्राप्त करें (४६-४७)।

फिर हाथ धोकर आचमन करे और गायत्री तथा 'देवताभ्यः' इत्यादि मन्त्र का तीन बार जप कर मण्डल बनाए (४८)। हे देवि ! पितृ-पक्ष से आरम्भ कर उच्छिष्ट पात्र के सम्मुख पूर्वोक्त विधि से दो-दो मण्डल बनाए (४९)। **'वं'** वीज से इन सभी मण्डलों को प्रोक्षित कर इन पर कुश बिछाये। फिर वायु-वीज **'यं'** से सभी कुशों को प्रोक्षित कर पितृ-दर्भ से आरम्भ कर दर्भ के मूल, मध्य और ऊर्ध्व भाग में क्रमशः १ पितृ-त्रय, २ मातृ-त्रय, ३ मातामह-त्रय और ४ मातामही-त्रय को तीन-तीन पिण्ड प्रदान करे (५०)। हे महेश्वरि ! प्रत्येक का सम्बोधनान्त-नाम उच्चारण कर **'स्वधा'** कहते हुए प्रत्येक को यव और मधु-सहित पिण्ड प्रदान करे (५१)। पिण्ड-दान करने के बाद **'कर-लेप'** द्वारा अर्थात् अन्न-युक्त हाथ को कुश में रगड़ कर **'लेप-भोजी'** अर्थात् चौथे से सातवें पुरुष को प्रसन्न करे। एकोद्दिष्ट श्राद्ध में यह 'लेप-भोजि-पितृ-गण-प्रीणन विधि' नहीं है (५२)।

देवताओं और पितृ-गण की तृप्ति के लिए दश बार गायत्री-जप और तीन बार **'देवताभ्यः पितृभ्यश्च'** इस मन्त्र का पाठ कर पिण्ड-पूजा करे। तब धूप-दीप को जलाकर दोनों आँखें बन्दकर यह भावना करे कि **'दिव्य देह-धारी पितृ-गण यज्ञ-स्थल में कव्य अर्थात् उनके लिए दिए गए द्रव्य का भोजन कर रहे हैं।'** फिर निम्न मन्त्र से पितृ-गण को प्रणाम करे—

पिता मे परमो धर्मः पिता मे परमं तपः। स्वर्गः पिता मे तत्-तृप्तौ तृप्तमस्त्यखिलं जगत् ॥

अर्थात् पिता ही मेरे परम धर्म हैं, पिता ही मेरे परम तप हैं, पिता ही मेरे स्वर्ग हैं। उनके तृप्त होने से सारा जगत् तृप्त होता है (५३-५५)।

फिर निर्माल्य लेकर पितृ-गण से आशीर्वाद हेतु प्रार्थना करे (५६)—

आशिषो मे प्रदीयन्तां पितरः करुणा-मयाः। वेदाः सन्ततयो नित्यं वर्द्धन्तां बान्धवा मम ॥

दातारो मे विवर्द्धन्तां बहून्यन्नानि सन्तु मे । याचितारः सदा सन्तु मा च याचामि कञ्चन ।।

अर्थात् दया-मय पितृ-गण मुझे आशीर्वाद दें । मेरे वेद-ज्ञान, पुत्रों और बान्धवों की नित्य वृद्धि हो । मुझे दान देनेवालों की वृद्धि हो । मेरे पास बहुत अन्न हो । याचक लोग सदा मेरे पास बने रहें और मैं किसी से याचना न करूँ (५७-५८) ।

इसके बाद देव-पक्ष से आरम्भ कर ब्राह्मणों और सभी पिण्डों का विसर्जन करे । फिर देव-पक्ष, पितृ-पक्ष और मातामह-पक्ष के लिए दक्षिणा प्रदान करे (५९) । तब दश बार गायत्री और पाँच बार **'देवताभ्यः पितृभ्यश्च'** इस मन्त्र का जप कर अग्नि तथा सूर्य का दर्शन करने के बाद हाथ जोड़कर ब्राह्मण से पूछे (६०)—

इदं श्राद्धं साङ्गं जातम् ?

अर्थात् क्या यह श्राद्ध सभी अङ्ग-कार्यों-सहित सम्पन्न हो गया ?

ब्राह्मण उत्तर दें—

विधानतः सम्यगेव साङ्गं जातम् ।

अर्थात् विधि के अनुसार यह सम्पूर्ण रूप से सभी कार्यों के सहित सम्पन्न हो गया (६१) ।

तब अङ्ग-वैगुण्य की शान्ति के लिए दश बार प्रणव 'ॐ' का जप कर अच्छिद्राभिविधान द्वारा कर्म को समाप्त करे । पात्र के अन्न और पिण्डों को ब्राह्मण को दे दे (६२) । ब्राह्मण न हो, तो गाय या बकरी को दे दे या उन्हें जल में डाल दे ।

'नित्य' अर्थात् अवश्य करणीय संस्कार में यही **'वृद्धि-श्राद्ध'** कहा गया है (६३) । अमावास्या आदि पर्व के उपलक्ष्य में करणीय श्राद्ध को **'पार्वण श्राद्ध'** कहते हैं (६४) । देवतादि-प्रतिष्ठा, तीर्थ-यात्रा और तीर्थ में 'पार्वण श्राद्ध' की विधि के अनुसार श्राद्ध करे (६५) । इन सब श्राद्ध-कार्यों में पितृ-गण को **'नान्दीमुख'** विशेषण से युक्त न करे और **'नमोस्तु पुष्ट्यै'** के स्थान पर **'नमः स्वधायै'** कहे (६६) ।

हे वरानने ! पिता आदि पुरुष-त्रय में से जो जीवित हो, उसके ऊपरवाले पुरुष का उल्लेख कर श्राद्ध करे (६७) । पिता, पितामह, प्रपितामह—ये तीनों पुरुष यदि जीवित हों, तो श्राद्ध न करे । उनके प्रसन्न रहने से ही श्राद्ध और यज्ञ का फल मिल जायगा (६८) । हे कल्याणि ! पिता जीवित हों, तो माता और पत्नी के श्राद्ध एवं **'नान्दीमुख-श्राद्ध'** के सिवा अन्य किसी श्राद्ध के करने का अधिकार नहीं होता (६९) । **'एकोद्दिष्ट श्राद्ध'** करते समय विश्वदेव-गण को पूजा न करे । उसके स्थान पर एक ही व्यक्ति को लक्ष्य कर अनुज्ञा-वाक्य की कल्पना करे (७०) । दक्षिणाभिमुख होकर अन्न और पिण्ड-दान करे । यव के स्थान पर तिल प्रदान करे, शेष सामग्री पूर्ववत् ही रखे (७१) ।

'प्रेत-श्राद्ध' में यह विशेषता है कि उसमें गङ्गादि की पूजा न करे और अन्न तथा पिण्ड-दान के समय मृत व्यक्ति का उल्लेख **'प्रेत'** कहकर करे (७२) । एक व्यक्ति के उद्देश्य से जो श्राद्ध किया जाता है, उसे **'एकोद्दिष्ट'** कहा जाता है । **'प्रेत-श्राद्ध'** में प्रेत के अन्न और पिण्ड में मत्स्य और मांस प्रदान करे (७३) । हे कुल-नायिके ! अशौच के अन्त के दूसरे दिन यह श्राद्ध करे, इसी को **'प्रेत-श्राद्ध'** कहते हैं (७४) ।

जहाँ गर्भ-स्राव हो या बालक जन्म लेकर पृथ्वी पर मर जाय, वहाँ से अतिरिक्त स्थान पर सन्तान के जन्म लेने या मरने पर कुलाचार के अनुसार **'अशौच'** का पालन करे । ब्राह्मण के लिए दश दिन, क्षत्रिय के लिए बारह दिन, वैश्य के लिए पन्द्रह दिन और शूद्र एवं सामान्य जाति के लिए एक मास का **'अशौच'** माना गया है (७५-७६) हे शिवे ! अ-सपिण्ड जाति के मरने पर और सपिण्ड के मरने पर **'अशौच'**-काल के बाद

(अथवा एक वर्ष के भीतर) मरने की सूचना मिलने पर तीन रात्रि का **'अशौच'** होता है (७७)। **'अशौच'**-युक्त व्यक्ति कुल-पूजा और प्रारब्ध कर्म को छोड़कर अन्य कोई दैव या पैत्र्य कर्म नहीं कर सकता (७८)।

हे कुलेश्वरि ! पाँच वर्ष से अधिक आयुवाले मृत मनुष्य को श्मशान में दग्ध करे। कुल-स्त्री को पति के साथ दग्ध न करे क्योंकि स्त्री भगवती-स्वरूपा होती है। मोह-वश ही वह पति की चिता पर चढ़ती है और नरक में जाती है (७९-८०)।

हे कालिके ! जो ब्रह्म-मन्त्रोपासक हैं, उनके मृत शरीर को जल में विसर्जित करे या मिट्टी में समाधिस्थ करे अथवा दग्ध कर दे (८१)। हे अम्बिके ! पुण्य-क्षेत्र में, तीर्थ में, विशेषकर देवी के समीप या कौलिकों के पास मरना प्रशस्त है (८२)।

जो मृत्यु के समय तीनों लोकों को भुलाकर एकमात्र सत्य-स्वरूप की भावना करते हुए प्राण छोड़ता है, वह गुण-त्रय के सम्बन्ध का त्याग कर निर्लेप, निर्गुण, नित्य-बुद्ध इत्यादि निज-भाव में प्रतिष्ठित होता है अर्थात् **'निर्वाण'** को प्राप्त करता है (८३)।

प्रेत-भूमि में शव को ले जाकर उसे घृताक्त कर स्नान कराए और उसे उत्तराभिमुख कर चिता पर लिटाये (८४)। फिर प्रेत-गोत्र और सम्बोधनान्त प्रेत-नाम का उल्लेख करते हुए प्रेत के मुख में पिण्ड देकर वह्नि-बीज 'रं' का स्मरण करते हुए दाह-कर्म करे (८५)। यहाँ सिद्धान्न या चावल या यव-चूर्ण या गोधूम-चूर्ण द्वारा धात्री-फल (आंवले) के समान पिण्ड बनाए (८६)। प्रेत के अनेक पुत्र हों, तो ज्येष्ठ पुत्र ही श्राद्ध करने का अधिकारी होता है। ज्येष्ठ पुत्र के अभाव में ज्येष्ठ-क्रम से दूसरे पुत्रों को भी अधिकार होता है (८७)।

अशौच की समाप्ति के दूसरे दिन स्नान कर पवित्र हो मृत व्यक्ति की प्रेतत्व-विमुक्ति के लिए तिल-काञ्चन का दान करे (८८)। सत्पुत्र मृत पिता के स्वर्ग-लाभ के लिए गो, भूमि, वस्त्र, यान, धातु-निर्मित गात्र और अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थों का दान करे (८९)। गन्ध, माला, फल, जल, सुख देनेवाली शैय्या और जो-जो वस्तुएँ जीवित अवस्था में मृत व्यक्ति को प्रिय थीं, वे सभी प्रेत के स्वर्ग-लाभ के लिए प्रदान करे (९०)। इसके बाद उसके स्वर्ग-प्राप्ति के लिए एक बैल को त्रिशूल के चिह्न से चिह्नित कर और स्वर्ण से सजा कर विसर्जित करे (९१)। अत्यन्त श्रद्धा के साथ प्रेत-श्राद्ध में कही विधि से श्राद्धकर ब्रह्मज्ञ ब्राह्मणों, कौलों और अन्य भूखे लोगों को भोजन कराए (९२)। गो आदि के दान करने में जो असमर्थ हो, वह अपनी शक्ति के अनुसार श्राद्ध कर भूखे लोगों को भोजन कराकर पिता के प्रेतत्व का मोचन करे (९३)। यही आदि एकोद्दिष्ट और प्रेतत्व से विमुक्ति का कारण होता है। फिर प्रति वर्ष मृत्यु-तिथि पर मृत व्यक्ति के लिए अन्न प्रदान करे (९४)।

बहुत विधान या बहुत कर्मों का अनुष्ठान करने से क्या लाभ ? कौलिक साधकों का अर्चन करने से सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती है (९५)। होम, जप, श्राद्ध-व्यतीत संस्कार और अन्य कर्मों में एकमात्र कौलिक साधक की अर्चना करने से सम्पूर्ण रूप से कार्य की सिद्धि होती है (९६)।

शुक्ल पक्ष की चतुर्थी से आरम्भ कर कृष्ण पक्ष की पञ्चमी तक सभी शुभ कर्म करे—यह शिवोक्त विधि है (९७)। कर्मार्थी व्यक्ति गुरु, आचार्य और कौलिक साधक की अनुमति से अन्य विशुद्ध दिन में भी सभी अपरिहार्य कर्म कर सकता है (९८)। कौलिक व्यक्ति पञ्च-तत्व द्वारा आद्या देवी की पूजा कर गृहारम्भ, गृह-प्रवेश, यात्रा, शस्त्र-रत्न आदि धारण—ये सब कार्य करे (९९)। अथवा श्रेष्ठ साधक संक्षेप में करे, यथा—

देवी का ध्यान करते हुए मन्त्र-जप और नमस्कार कर इच्छानुसार प्रस्थान करे (१००)। शारदीय उत्सव आदि सभी देव-पूजाओं में तत्-तत् कल्पोक्त विधि के अनुसार ध्यान और पूजा करे (१०१)। आद्या

कालिका के पूजा-स्थल में उक्त विधान के अनुसार बलिदान और होम करे। अन्त में कौलिक व्यक्ति की अर्चना और दक्षिणा देकर कर्म समाप्त करे (१०२)। गङ्गा, विष्णु, शिव, सूर्य और ब्रह्मा को पूजा कर उद्दिष्ट देवता की पूजा करे—यह सामान्य विधि कही है (१०३)।

कौलिक ही परम धर्म, कौलिक ही परम देवता, कौलिक ही परम तीर्थ है, अतएव सदा कौलिक साधक की अर्चना करे (१०४)। साढ़े तीन कोटि तीर्थ एवं ब्रह्मादि सभी देवता कौलिक शरीर में वास करते हैं, अतः कौलिक साधक की पूजा करने से क्या नहीं होता (१०५)? पूर्णाभिषिक्त सत्कौलिक जिस देश में विराजता है, वही धन्य-मान्य-पुण्यतम और देवताओं द्वारा प्रार्थनीय होता है (१०६)। साक्षात् शिव-स्वरूप, पाप-पुण्य-रहित पूर्णाभिषिक्त साधक का प्रभाव पृथ्वी पर कौन जानता है अर्थात् कोई नहीं जानता (१०७)। कौल व्यक्ति नर-रूप में सारे जगत् के उद्धार का निमित्त है और लोक-यात्रा की शिक्षा देने के लिए भूमण्डल पर विहार करता है (१०८)।

श्री देवी ने कहा— हे प्रभो! पूर्णाभिषिक्त कौल साधक की महिमा आपने कही। अब आप कृपा कर मुझे उक्त 'अभिषेक' का विधान सुनाइए (१०९)।

श्री सदाशिव ने कहा—सत्य, त्रेता और द्वापर युगों में यह विधान गुप्त रहा। पूर्व-काल में गुप्त भाव से इसका अनुष्ठान कर लोगों ने मोक्ष प्राप्त किया है (११०)। प्रबल कलि-काल में कुलाचारी लोग रात्रि-काल में या दिन में प्रकट रूप से 'अभिषेक' करें (१११)। बिना अभिषेक केवल मद्य-सेवन करने से ही कौल नहीं होता। जिसका 'पूर्णाभिषेक' हुआ है, वही कौल, कुलार्चक और चक्राधीश्वर होता है (११२)।

अभिषेक के पूर्व-दिन में गुरुदेव सब विघ्नों की शान्ति के लिए यथा-शक्ति उपचारों के द्वारा विघ्न-राज अर्थात् गणपति की पूजा करें (११३)। हे प्रिये! यदि गुरुदेव शुभ 'पूर्णाभिषेक' में अधिकारी न हों, तो पूर्णाभिषिक्त कौल द्वारा उक्त संस्कार कराए (११४)।

'ख' वर्ण के बाद के वर्ण ('ग') को अनुस्वार-युक्त करने से बना 'गं' ही गणपति का बीज है (११५)। इस गणपति-मन्त्र के ऋषि गणक, छन्द निवृत्, देवता गणपति और विनियोग कर्त्तव्य कर्म के विघ्न को शान्ति के निमित्त है (११६)। छः दीर्घ स्वरों से युक्त मूल-मन्त्र ('गां गीं' इत्यादि) द्वारा षडङ्ग-न्यास करे। हे शिवे! फिर प्राणायाम कर गणपति का ध्यान करे (११७)—

सिन्दूराभं त्रिनेत्रं पृथुतर-जठरं हस्त-पद्मैर्दधानं।
शङ्खं पाशांकुशेष्टान्युरु-कर-विलसद्-वारुणी-पूर्ण-कुम्भं॥
बालेन्दूद्दीप्त-मौलिं करि-पति-वदनं बीजपूरार्द्र-गण्डम्।
भोगीन्द्राबद्ध-भूषं भजत गणपतिं रक्त-वस्त्राङ्गरागम्॥

अर्थात् सिन्दूर के समान रक्त-वर्ण, त्रिनेत्र, अत्यन्त स्थूल उदर, चार कर-कमलों में शङ्ख, पाश, अंकुश और वर धारण करनेवाले, वारुणी से भरे हुए कुम्भ से शोभायमान विशाल सूंड़, नवीन चन्द्र-कला द्वारा प्रदीप्त मस्तकवाले, गजराज के मुख वाले, बीजपूर के समान आर्द्र दोनों गण्ड-स्थल, सर्पराज द्वारा विभूषित, रक्त-वस्त्र और रक्त अङ्गराग से युक्त गणपति का मैं भजन करता हूँ (११८)।

इस प्रकार ध्यान कर मानसोपचारों से उनकी पूजा कर पीठ-शक्तियों की पूजा करे। तीव्रा, ज्वालिनी, नन्दा, भोगदा, काम-रूपिणी, उग्रा, तेजस्वती और सत्या—इन आठ पीठ-शक्तियों की पूजा पूर्वादि-क्रम से करके मध्य में विघ्न-विनाशिनी की पूजा कर कमलासन की पूजा करे (११९-१२०)। फिर गणपति का पुनः

ध्यान कर मन्त्र-शोधित पञ्च-तत्व-रूप उपचारों द्वारा उनकी पूजा कर उनके चारों ओर **गणेश, गण-नायक, गण-नाथ, गण-क्रीड़, एक-दन्त, रक्त-तुण्ड, लम्बोदर, गजानन, महोदर, विकट, धूम्राभ और विघ्न-नाशन** की पूजा करे (१२१-१२३)। तब **ब्राह्मी** आदि अष्ट-शक्तियों एवं **दश दिक्पालों** की पूजा करके उनके अस्त्रों की पूजा कर विघ्नराज को विसर्जित करे (१२४)। इसी प्रकार विघ्नराज की पञ्च-तत्वों द्वारा पूजा कर अधिवास करे और ब्रह्मज्ञ कुल-साधकों को भोजन कराए (१२५)।

अगले दिन स्नान और नित्य-क्रिया कर जन्म से अब तक के किए पापों के नाश के लिए तिल-काञ्चन का दान करे। हे प्रिये! कौलों को तृप्ति के लिए एक भोज भी प्रदान करे (१२६)। तब **सूर्य** को अर्घ्य देकर **ब्रह्मा, विष्णु, शिव, नव-ग्रह, मातृकाओं** की पूजा कर '**वसुधारा**' दे (१२७)। फिर कर्म के अभ्युदय की कामना से वृद्धि-श्राद्ध करे। उसके बाद गुरु के पास जाकर प्रणाम कर प्रार्थना करे (१२८)—

त्राहि नाथ ! कुलाचार-नलिनी-कुल-वल्लभ ! त्वत्-पादाम्भोरुहच्छायां देहि मूर्ध्नि कृपा-निधे ।।
आज्ञां देहि महा-भाग ! शुभ-पूर्णाभिषेचने । निर्विघ्नं कर्मणः सिद्धिमुपैमि त्वत्-प्रसादतः ।।

अर्थात् हे नाथ! हे कुलाचार-रूप कमलिनी-समूह के प्रियतम! हे दया-सागर! मेरे मस्तक पर अपने चरण-कमलों की छाया प्रदान करें (१२९)। हे महानुभाव! मेरे शुभ पूर्णाभिषेक के लिए आज्ञा दें। आपकी कृपा से मैं बिना किसी विघ्न के कार्य की सफलता पाऊँ (१३०)।

इस प्रार्थना के उत्तर में गुरुदेव कहें—

शिव-शक्त्याज्ञया वत्स ! कुरु पूर्णाभिषेचनम् । मनोरथ-मयी-सिद्धिर्जायतां शिव-शासनात् ।।

अर्थात् हे पुत्र! शिव-शक्ति की आज्ञानुसार '**पूर्णाभिषेक**' करो। शिव के आदेश से तुम्हें इच्छानुरूप सिद्धि प्राप्त हो (१३१)

गुरुदेव से इस प्रकार आज्ञा प्राप्त कर समस्त उपद्रवों की शान्ति के लिए और आयु, लक्ष्मी, बल तथा आरोग्य की प्राप्ति के लिए '**सङ्कल्प**' करे (१३२)। तब सङ्कल्प लेकर वस्त्र, अलङ्कार, भूषण और शुद्धि-सहित कारण द्वारा गुरुदेव की पूजाकर उनका '**वरण**' करे (१३३)।

गुरुदेव गैरिकादि रंगों से चित्रित, सुन्दर ध्वज-पताकाओं से युक्त, फल-पत्रों से सुसज्जित, मालाकार किङ्किणियों से शोभित, रंग-बिरंगी चाँदनी से अलंकृत, जलते हुए घृत-दीपकों की पंक्तियों से लेश मात्र भी अँधेरे से रहित, कर्पूर-सहित धूप और यक्ष-धूम (धूना) द्वारा सुगन्धित, ताल-वृन्त, चामर, मोर-पङ्ख और दर्पणादि से सुसज्जित, मनोहर गृह में चार अंगुल ऊँची, डेढ़ हाथ चौड़ी मिट्टी की वेदी बनाएँ। फिर उक्त गृह में पीले, लाल, काले, सफेद, साँवले रंग के अक्षत-चूर्ण द्वारा सुन्दर '**सर्वतोभद्र-मण्डल**' की रचना करें (१३४-३८)। तब अपने कल्प में बताई विधि के अनुसार मानस-पूजा तक के कर्म करके पूर्वोक्त मन्त्रों से पञ्च-तत्त्वों का शोधन करें (१३९)। फिर अस्त्र (**फट्**) मन्त्र द्वारा प्रक्षालित दही और अक्षत से लिप्त सोने या चाँदी या ताँबे अथवा मिट्टी के बने ' ट' को प्रणव (ॐ) का उच्चारण करते हुए पूर्व-निर्मित '**सर्वतोभद्र-मण्डल**' के ऊपर स्थापित करें। श्री-बीज अर्थात् '**श्रीं**' का जप करते हुए उसे सिन्दूर से अङ्कित करें (१४०-४१)। तब अनुस्वार-युक्त 'क्ष' से लेकर 'अ' तक के पचास वर्णों के सहित मूल-मन्त्र का तीन बार जप कर '**वारण**' (मदिरा) या तीर्थ-जल अथवा शुद्ध जल द्वारा उस '**घट**' को पूर्ण कर उसमें नव-रत्न या स्वर्ण छोड़ें (१४२-४३)। फिर **वाग्भव** बीज '**ऐं**' का जप करते हुए '**घट**' के मुख पर कटहल, गूलर, पीपल, मौलसिरी और आम के पत्तों को स्थापित करें (१४४)। तब रमा-माया अर्थात् '**श्रीं ह्रीं**' इस मन्त्र का जप करते हुए फल और अक्षत से युक्त सोने, चाँदी,

ताँबे या मिट्टी का 'शराव' (प्याला) उक्त पत्तों के ऊपर रखें (१४५)। हे वरानने ! दो वस्त्रों द्वारा इस घट के गले को बाँधें। शक्ति-मन्त्र हो तो लाल और विष्णु-मन्त्र हो तो सफेद वस्त्र की विधि है (१४६)। फिर निम्न मन्त्र से 'घट' को स्थिर करें—

स्थां स्थों ह्रीं श्रीं स्थिरीभव ।

इस प्रकार स्थिर किए गए घट में 'पञ्च-तत्त्व' छोड़ें और तब नौ पात्रों की स्थापना करें (१५७)।

'शक्ति-पात्र' चाँदी का, 'गुरु-पात्र' सोने का, महा-शङ्ख (नर-कपाल) या नारिकेल का 'श्रीपात्र' और ताँबे के अन्य पात्र होने चाहिए (१४८)। महा-देवी की पूजा में पत्थर, लकड़ी और लोहे के पात्र का उपयोग न करें। सामर्थ्य के अनुसार अन्य पदार्थों के ही पात्र रखें (१४९)। पात्रों की स्थापना कर गुरुओं और भगवती (आनन्दभैरवादि) का तर्पण करने के बाद गुरुदेव अमृत-पूर्ण 'घट' की पूजा करें (१५०)। तब धूप, दीप दिखाकर सर्व-भूत को बलि प्रदान करें। उसके बाद पीठ-देवतादि की पूजाकर षडङ्ग-न्यास करें (१५१)। फिर प्राणायाम कर महेश्वरी का ध्यान और आवाहन कर अपनी सामर्थ्य के अनुसार इष्ट-देवता की पूजा करें।

पूजा के समय वित्त-शास्त्र (अर्थात् अपनी सामर्थ्य के अनुरूप खर्च न कर कंजूसी से कार्य करना) अनुचित है (१५२)।

हे शिवे ! गुरुदेव होम तक के कर्म करने के बाद पुष्प, चन्दन और वस्त्र द्वारा क्रमशः कुमारी, शक्ति और साधकों की पूजा करें (१५३)। तब गुरुदेव उपस्थित कौल-साधकों से अपने शिष्य का 'पूर्णाभिषेक' करने की अनुमति माँगें—

अनुगृह्णन्तु कौला मे शिष्यं प्रति कुल-व्रताः। पूर्णाभिषेक-संस्कारे भवद्भिरनुमन्यताम् ॥

अर्थात् हे कुल-व्रत-परायण कौल-गण ! आप लोग मेरे शिष्य पर अनुग्रह करें और पूर्णाभिषेक-संस्कार की अनुमति दें।

चक्रेश्वर के इस प्रकार कहने पर कौल लोग आदर-सहित चक्रेश्वर गुरुदेव से कहें कि—

महा-माया-प्रसादेन प्रभावात् परमात्मनः। शिष्यो भवतु पूर्णस्ते पर-तत्त्व-परायणः ॥

अर्थात् महा-माया के प्रसाद और परमात्मा के प्रभाव से आपका शिष्य परब्रह्म में तत्पर होकर पूर्ण होवे (१५४-५५)।

तदनन्तर गुरुदेव शिष्य द्वारा देवी की पूजा करायें और पूजित 'घट' के ऊपर 'काम-माया-रमा' अर्थात् 'क्लीं ह्रीं श्रीं' इस मन्त्र का जप कर उस निर्मल 'घट' को निम्न मन्त्र से हिलावें—

उत्तिष्ठ ब्रह्म-कलश ! देवतात्मक ! सिद्धिद ! त्वत्-तोय-पल्लवैः सिक्तः शिष्यो ब्रह्म-रतोऽस्तु मे ॥

अर्थात् हे सिद्धि-दायक, देवता-स्वरूप, ब्रह्म-कलश ! तुम उठो। तुम्हारे जल और पल्लव द्वारा सिक्त होकर मेरा शिष्य ब्रह्म में रत होवे (१५६-५७)।

तब शिष्य को गुरुदेव उत्तर की ओर मुख करके बैठाएँ और निम्न मन्त्रों से घटस्थ जल से पञ्च-पल्लवों के गुच्छे द्वारा उसका अभिषेक करें (१५८)—

ॐ शुभ-पूर्णाभिषेकस्य सदाशिव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, आद्या देवता, ॐ वोजं, शुभ-पूर्णाभिषेकार्थे विनियोगः।

गुरवस्त्वाभिषिञ्चन्तु ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः। दुर्गा-लक्ष्मो-भवान्यस्त्वामभिषिञ्चन्तु मातरः ॥१

षोडशी तारिणी नित्या स्वाहा महिष-मर्दिनी । एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्र-पूतेन वारिणा ।।२
जय-दुर्गा विशालाक्षी ब्रह्माणी च सरस्वती । एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु बगला वरदा शिवा ।।३
नारसिंही च वाराही वैष्णवी वन-मालिनी । इन्द्राणी वारुणी रौद्री त्वाभिषिञ्चन्तु शक्तयः ।।४
भैरवी भद्रकाली च तुष्टिः पुष्टिरुमा क्षमा । श्रद्धा कान्तिर्दया शान्तिरभिषिञ्चन्तु ते सदा ।।५
महा-काली महा-लक्ष्मीर्महा-नील-सरस्वती । उग्र-चण्डा प्रचण्डा त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वदा ।।६
मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नृसिंहो वामनस्तथा । रामो भार्गव-रामस्त्वामभिषिञ्चन्तु वारिणा ।।७
असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधोन्मत्तो भयङ्करः । कपाली भीषणश्च त्वामभिषिञ्चन्तु वारिणा ।।८
काली कपालिनी कुल्ला कुरुकुल्ला विरोधिनी । विप्रचित्ता महोग्रा त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वदा ।।९
इन्द्रोऽग्निः शमनो रक्षो वरुणः पवनस्तथा । धनदश्च महेशानः सिञ्चन्तु त्वां दिगीश्वराः ।।१०
रविः सोमो मङ्गलश्च बुधो जीवः सितः शनिः । राहुः केतुः स-नक्षत्रा अभिषिञ्चन्तु ते ग्रहाः ।।११
नक्षत्रं करणं योगो वाराः पक्षौ दिनानि च । ऋतुर्मासो हायनस्त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वदा ।।१२
लवणेक्षु-सुरा-सर्पिर्दधि-दुग्ध-जलान्तकाः । समुद्रास्त्वाभिषिञ्चन्तु मन्त्र-पूतेन वारिणा ।।१३
गङ्गा सूर्य-सुता रेवा चन्द्र-भागा सरस्वती । सरयूर्गण्डकी कुम्भी श्वेत-गङ्गा च कौशिकी ।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्र-पूतेन वारिणा ।।१४
अनन्ताद्या महा-नागाः सुपर्णाद्याः पतत्रिणः । तरवः कल्प-वृक्षाद्याः सिञ्चन्तु त्वां महीधराः ।।१५
पाताल-भूतल-व्योम-चारिणः क्षेम-कारिणः । पूर्णाभिषेक-सन्तुष्टास्त्वाभिषिञ्चन्तु पार्थसा ।।१६
दौर्भाग्यं दुर्यशो रोगा दौर्मनस्यं तथा शुचः । विनश्यन्त्वभिषेकेण परम-ब्रह्म-तेजसा ।।१७
अलक्ष्मी काल-कर्णी च डाकिन्यो योगिनी-गणाः । विनश्यन्त्वभिषेकेण काली-बीजेन ताडिताः ।।१८
भूताः प्रेताः पिशाचाश्च ग्रहा येऽरिष्ट-कारकाः । विद्रुतास्ते विनश्यन्तु रमा-बीजेन ताडिताः ।।१९
अभिचार-कृता दोषा वैरि-मन्त्रोद्भवाश्च ये । मनो-वाक्कायजा दोषाः विनश्यन्त्वभिषेचनात् ।।२०
नश्यन्तु विपदः सर्वाः सम्पदः सन्तु सुस्थिराः । अभिषेकेण पूर्णेन पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ।।२१

इन इक्कीस मन्त्रों से अभिषिक्त साधक ने यदि पहले पशु द्वारा दीक्षा ली हो, तो इस समय कौल गुरुदेव पुनः उसे वही मन्त्र सुनावें (१५६-८१)। फिर कौलिक गुरुदेव पूर्वोक्त नाम द्वारा शिष्य को सम्बोधन कर सभी शक्ति-साधकों को सूचित करते हुए उसे 'आनन्द-नाथान्त' नाम प्रदान करें (१८२)।

गुरुदेव से मन्त्र प्राप्त कर शिष्य यन्त्र-राज में अपने देवता की पूजा कर पञ्च-तत्त्वोपचारों से गुरुदेव की पूजा करे (१८३)। फिर शिष्य गुरुदेव को भूमि, स्वर्ण, वस्त्र, पान (सुधा), अलंकार—यह सब दक्षिणा में देकर शिव-स्वरूप कौलों की पूजा करे (१८४)। तब वह शान्त और विनम्र भाव से भक्तिपूर्वक श्रीगुरुदेव के चरण छूकर प्रणाम करे और यह प्रार्थना करे कि—

श्रीनाथ! जगतां नाथ!, मन्नाथ! करुणा-निधे!। परामृत-प्रदानेन, पूरयास्मन्मनोरथम्।।

अर्थात् हे श्रीनाथ ! हे जगत् के नाथ ! हे मेरे नाथ ! हे दया-निधे ! परमामृत देकर मेरे मनोरथ को पूरा करें (१८५-८६) ।

इस पर गुरुदेव कौलों से अनुमति-प्राप्त्यर्थ उनसे कहें कि—

आज्ञा मे दीयतां कौलाः प्रत्यक्ष-शिव-रूपिणः । सच्छिष्याय विनीताय ददामि परमामृतम् ॥

अर्थात् हे शिव-स्वरूप कौल-गण ! अपने विनम्र सच्छिष्य को मैं परमामृत देता हूँ । आप लोग मुझे आज्ञा दें (१८७) ।

उत्तर में कौल-जन कहें कि—

चक्रेश ! परमेशान ! कौल-पङ्कज-भास्कर ! कृतार्थं कुरु सच्छिष्यं देह्यमुष्मै कुलामृतम् ॥

अर्थात् हे चक्रेश्वर ! हे परमेशान ! हे कौल-कमल-भानु ! आप इस सच्छिष्य को कुलामृत देकर कृतार्थ करें (१८८) ।

तब कौलों की अनुमति पाकर गुरुदेव शुद्धि के सहित परमामृत से पूर्ण पात्र शिष्य के हाथ में प्रदान करें (१८९) । फिर गुरुदेव हृदय में देवी का ध्यान कर स्रुव में लगी भस्म से शिष्य और कौल साधकों के भ्रू-मध्य में तिलक लगायें (१९०) । इसके बाद सभी कौलों को समस्त प्रसाद-तत्त्व अर्पित कर '**चक्रानुष्ठान**' की विधि के अनुसार पान और भोजन करें (१९१) ।

हे देवि ! यह मैंने तुमसे ब्रह्म-ज्ञान का एकमात्र कारण और शिवत्व-प्राप्ति का उपाय – शुभ '**पूर्णाभिषेक**' बताया है (१९२) । नौ, सात, पाँच, तीन या एक रात्रि में '**पूर्णाभिषेक**' करे (१९३) । हे कुलेश्वरि ! इस संस्कार के ये पाँच 'कल्प' बताए गए हैं । नौ रात्रि के अभिषेक में '**सर्वतोभद्र मण्डल**', सात रात्रि के अभिषेक में '**नव-नाभ-मण्डल**', पाँच रात्रि के अभिषेक में '**पञ्चाब्ज-मण्डल**', तीन और एक रात्रि के अभिषेक में '**अष्ट-दल-कमल**' की रचना करे (१९४-९५) । '**सर्वतोभद्र**' और '**नव-नाभ**' मण्डल में नौ घटों तथा '**पञ्चाब्ज**' मण्डल में पाँच घटों की स्थापना करे (१९६) । हे देवि ! '**अष्ट-दल कमल**' में केवल एक घट की विधि बताई है । केशरादि में अङ्ग-देवता और आवरण-देवताओं की पूजा करे (१९७) । '**पूर्णाभिषेक**' से सिद्ध निर्मल-चित्त कौलों के देखने, छूने और सूँघने से ही द्रव्यों की शुद्धि हो जाती है (१९८) ।

शाक्त, वैष्णव, शैव, सौर या गाणपत—सभी उपासकों द्वारा कुल-धर्माश्रित साधु यत्नपूर्वक पूजनीय है (१९९) । शाक्तों के लिए शाक्त गुरु, शैवों के लिए शैव गुरु, वैष्णवों के लिये वैष्णव गुरु, सौरों के लिये सौर गुरु और गाणपत के लिये गाणपत गुरु ही प्रशस्त है । '**कौल**' सभी के लिए प्रशस्त गुरु है । अतः बुद्धिमान् व्यक्ति सब प्रकार से '**कौल**' से दीक्षा ग्रहण करे (२००-२०१) ।

जो लोग यत्न करके भक्ति-पूर्वक पञ्च-तत्त्वों के द्वारा कौलों की पूजा करते हैं, वे अपने सभी पूर्वजों का उद्धार करके स्वयं परम गति को प्राप्त होते हैं (२०२) । पशु के मुख से मन्त्र प्राप्त करनेवाला पशु ही होता है, इसमें सन्देह नहीं । जो वीर से मन्त्र लेता है, वह वीर और जो '**कौल**' से मन्त्र ग्रहण करता है, वह '**ब्रह्मज्ञ**' होता है (२०३) । जिसका '**शाक्ताभिषेक**' हुआ है, वही '**वीर**' है । अपनी इष्ट-देवता की पूजा-विधि से वह पञ्च-तत्त्वों का शोधन कर सकता है किन्तु '**चक्रेश्वर**' नहीं बन सकता (२०४) ।

वीर की हत्या करनेवाला वृथा अर्थात् अवैध मद्य पीनेवाला, वीर-पत्नी-गामी और चोर अर्थात् विप्र का धन, जिसका मूल्य अस्सी रत्ती स्वर्ण तक हो, उसे चुरानेवाला – ये '**महापापी**' हैं और इन चार के सम्पर्क में रहनेवाला व्यक्ति पाँचवाँ '**महा-पापी**' है (२०५) ।

जो पापी लोग कुल-मार्ग, कुल-द्रव्य और कुल-साधक की निन्दा करते हैं, वे अधोगति को पाते हैं (२०६)। रुद्र डाकिनियाँ और रुद्र भैरव देव कौल-द्वेषी मनुष्यों के मांसास्थि का चर्वण कर आनन्दित हो नृत्य करते हैं (२०७)। दयालु, सत्य-निष्ठ और सदा पर-हितैषी व्यक्ति भी कौलों की निन्दा करके किसी भी प्रकार नरक जाने से बच नहीं सकते (२०८)।

बहुत प्रकार के प्रयोग और बहुत से कर्म कहे हैं किन्तु एक-मात्र ब्रह्म-परायण 'कौल' का 'कर्म-त्याग' और 'कर्मानुष्ठान'—दोनों समान फल-दायक होते हैं (२०९)। एकमात्र परम ब्रह्म ही त्रिभुवन में व्याप्त होकर अवस्थित है, अतः विश्व की पूजा करने से वह ब्रह्म की ही पूजा होती है क्योंकि सभी वस्तुएँ ब्रह्म से अन्वित हैं अर्थात् अभिन्न हैं (२१०)। हे प्रिये ! फल में आसक्त, काम-परायण और कर्म-काण्ड में लगे हुए व्यक्ति अलग-अलग भावों से अन्य देवताओं की पूजा करने पर भी ब्रह्म का ज्ञान पाते हैं और ब्रह्म में लय हो जाते हैं (२११)। जो सभी वस्तुओं को ब्रह्म में और सभी वस्तुओं में ब्रह्म को देखते हैं, उन्हें ही 'सत्कौल' और जीवन्मुक्त जाने, इसमें सन्देह नहीं (२१२)।

× ● ×

ग्यारहवाँ उल्लास : पापों के प्रायश्चित्त का वर्णन

अपर्णा देवी वर्णाश्रम-भेद के अनुसार धर्म का विवरण सुनकर बड़ी प्रसन्न हुईं और उन्होंने शङ्कर से पूछा (१)। श्री देवी ने कहा—हे प्रभो ! आप सर्वज्ञ हैं। संसार-यात्रा में सफलता हेतु आपने वर्ण और आश्रम के आचार, धर्म और संस्कारों को बताया है (२)। किन्तु कलि-काल के मनुष्य काम-क्रोधादि से बुद्धि-हीन, नास्तिक, शङ्कालु और सदा इन्द्रिय-सुख चाहनेवाले होंगे (३)। हे ईशान ! मूर्ख लोग आपके बताए अनुष्ठान को न करेंगे, उनकी क्या गति होगी ? इसे विशेष रूप से बतायें (४)।

श्री सदाशिव ने कहा—हे देवि ! तुमने उत्तम प्रश्न किया है। तुम जगत् की जननी, जन्म और संसार-बन्धन से छुड़ानेवाली दुर्गा हो (५)। इस चराचर जगत् को तुम्हीं बनाए रहती हो (६)। तुम्हीं पृथ्वी, तुम्हीं जल, तुम्हीं वायु, तुम्हीं अग्नि, तुम्हीं आकाश, तुम्हीं अहङ्कार और तुम्हीं महत्-तत्त्व-स्वरूपा हो (७)। इस संसार में तुम्हीं समस्त जीव, तुम्हीं विद्या, तुम्हीं परम-देवता, तुम्हीं इन्द्रिय-समूह, तुम्हीं मन, तुम्हीं बुद्धि, तुम्हीं जगत् की गति और स्थिति हो (८)। तुम्हीं समस्त वेद, तुम्हीं प्रणव, तुम्हीं समस्त स्मृतियाँ, तुम्हीं महा-भारतादि समस्ता संहिता, तुम्हीं निगम, तुम्हीं आगम, तुम्हीं तन्त्र, तुम्हीं सर्व-शास्त्र-मयी, तुम्हीं शिवा (९), तुम्हीं महा-काली, महा-लक्ष्मी, महा-नील-सरस्वती, महोदरी, महा-माया, महा-रौद्री एवं महेश्वरी हो (१०)। तुम्हीं सर्वज्ञा, ज्ञान-मयी हो, अतः तुमसे कुछ भी अज्ञात नहीं है। हे प्राज्ञे ! फिर भी इस समय तुम जो पूछती हो, उसे तुम्हारी प्रसन्नता के लिए बताता हूँ (११)।

हे देवि ! कलियुग के मनुष्यों का आचरण तुमने ठीक ही बताया है। अपने हित की बात जानकर भी तुरन्त सुख देनेवाले पाप में मस्त होकर हिताहित की विवेचना से रहित हो वे सत्पथ पर नहीं चलते। उन लोगों की मुक्ति के लिए जो कर्त्तव्य है, उसे कहता हूँ (१२-१३)। निषिद्ध कर्म करना और विहित कर्म को छोड़

देना—ये दोनों बातें ही मनुष्य के दुःख और रोगादि देनेवाले पाप को उत्पन्न करती है (१४)। हे कुल-नायिके ! यह पाप दो प्रकार का है—१. केवल अपना अनिष्ट करनेवाला, जैसे सन्ध्यादि दैनिक कर्म न करने से और २. दूसरों का भी अनिष्ट करनेवाला, जैसे ब्रह्म-हत्यादि से (१५)। राज-दण्ड द्वारा दूसरों को अनिष्ट-दायक पाप से मुक्ति पा सकते हैं। प्रायश्चित्त और समाधि द्वारा अन्य प्रकार के पाप से मुक्ति मिलती है (१६)। जो पापी प्रायश्चित्त या राज-दण्ड से पवित्र नहीं होते, वे इस लोक में निन्दित होकर परलोक में नरक से छुटकारा नहीं पाते अर्थात् चिर काल तक नरक में रहते हैं (१७)।

हे आद्ये ! पहले राज-शासन का निर्णय बताता हूँ। हे महेश्वरि ! इस शासन के न करने से राजा अधम गति को पाता है (१८)। शासन में राजा भृत्य, पुत्र, प्रिय या अप्रिय—सभी को समान दृष्टि से देखे (१९)। यदि राजा स्वयं पापाचार करता है, तो वह उपवास और दान द्वारा अपने को शुद्ध करे। यदि निर्दोष व्यक्तियों को वह दण्ड दे जाय, तो दान द्वारा उन सभी निर्दोषियों को सन्तुष्ट कर उपवास द्वारा शुद्ध हो (२०)। राजा यदि ऐसा पाप करे, जिसके लिए वह मृत्यु-दण्ड का पात्र बनता हो, तो वह राज्य को छोड़कर वन में जाए और तपस्या द्वारा अपना उद्धार करे (२१)। राजा बड़े पाप के लिए छोटा और छोटे पाप के लिए बड़ा दण्ड न दे (२२)। जिसे बहु-संख्यक कुमार्गी व्यक्तियों पर शासन करना पड़े, उसे पाप से न डरनेवाले व्यक्ति के छोटे अपराध के लिए बड़ा दण्ड देना भी उचित है (२३)। केवल एक बार अपराध के लिए लज्जा युक्त, प्रतिष्ठित एवं पाप से डरनेवाले व्यक्ति के बड़े पाप के लिए छोटा ही दण्ड देना उचित है (२४)। यदि बहु-मान्य कौल व्यक्ति छोटे अपराध का अपराधी हो या उसी प्रकार का ब्राह्मण व्यक्ति छोटा पाप करे, तो राजा उन्हें वाग्-दण्ड दे (२५)। जो राजा मन्त्रियों के साथ विचार कर न्याय-दण्ड और पुरस्कार का निर्णय नहीं करता, वह महा-पापी होता है (२६)। पुत्र पिता-माता का त्याग न करे, प्रजा राजा का त्याग न करे और विनय-सम्पन्ना पत्नी पति का त्याग न करे; वे अति पापी हों, तभी त्याज्य हैं (२७)। प्रजा के लोग धार्मिक राजा के राज्य, धन और जीवन की यत्न से रक्षा करें अन्यथा उन्हें अधोगति मिलती है (२८)।

हे शिवे ! जो जान-बूझकर माता, बहन, पुत्री गमन करते हैं या जान कर बहुत बड़ी हत्या करते हैं या कुल-धर्म का आश्रय लेकर पुनः कुल-कर्मों का अनुष्ठान छोड़ देते हैं और विश्वास-घाती हैं, वे अति-पापी हैं (२९-३०)। माता, बहिन या पुत्री गमन करनेवाले के लिए मृत्यु-दण्ड विहित है; इस कार्य में इच्छा रखनेवाली माता, बहिन या पुत्री के लिए भी यही दण्ड है (३१)। विमाता, बुआ, बहू, सास, गुरु-पत्नी, पितामही, नानी, चाचा की पुत्री, ममेरी बहन, चाची, मामी, भाभी, भतीजी, भांजे की पत्नी, स्वामी की पत्नी, स्वामी की पुत्री या कुमारी गमन करनेवाले पापियों के लिए लिङ्गच्छेद का दण्ड विहित है। इस दुष्कार्य में इच्छा रखनेवाली इन सभी स्त्रियों के पाप-मोचन के लिए नासिका-छेदन और घर से निष्कासन ही दण्ड है (३२-३४)। सपिण्ड की पत्नी या पुत्री और विश्वासी व्यक्ति की पत्नी गमन करनेवाले का सर्वस्व-हरण और मस्तक-मुण्डन ही दण्ड है (३५)। यदि अज्ञानवश पूर्वोक्त किसी नारी के साथ ब्राह्म या शैव विधि से विवाह हुआ हो, तो इस अकार्य का ज्ञान होते ही उस स्त्री का त्याग कर दे (३६)। जो व्यक्ति सजातीय पर-पत्नी गमन करे या जो अपनी अपेक्षा हीन जाति की पर-स्त्री अर्थात् चाण्डालादि अपकृष्ण जाति से भिन्न हीन-वर्ण की पर-स्त्री से गमन करे, उसे पर्याप्त अर्थ-दण्ड और एक मास तक कण-भोजन का दण्ड दे (३७) हे वरानने ! जानकर ब्राह्मणी-गमन करनेवाले क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या सामान्य जाति के व्यक्ति का लिङ्गच्छेद-रूप दण्ड कहा है (३८)। इस कर्म में इच्छा रखनेवाली ब्राह्मणी को विकृत अर्थात् अङ्ग-हीना कर राजा देश से निकाल दे और जो वीराचारियों की पत्नी से गमन करे, उसका लिङ्गच्छेद और इस कुक्रिया में आसक्ता वीर-पत्नी आदि को विकृता कर देश से निकालना

ही दण्ड है (३६)। जो पापी प्रतिलोम अर्थात् उच्च-जातीय पर-स्त्री के साथ कुक्रिया करे, उसका सर्वस्व-हरण कर उसे तीन मास तक कण-भोजन का दण्ड दे (४०)। इस दुष्कर्म में इच्छा रखनेवाली सभी स्त्रियों के लिए भी ऐसा ही दण्ड है। यदि पत्नी पर अन्य बलात्कार करे, तो स्वामी उस पत्नी का त्याग करे किन्तु उसका पालन-पोषण उसे करना होगा (४१) ब्राह्मी या शैवी भार्या यदि इच्छा या अनिच्छा से एक बार पर-पुरुष-गता हो, तो उसका त्याग सर्वथा उचित है (४२)। हे देवेशि ! वाराङ्गना (वेश्या) या गो आदि पशु-योनि से गमन करनेवाले की शुद्धि तीन रात्रि कण-भोजन से होती है (४३)। जो पापी स्त्रियों के गुह्य में गमन करते हैं, उन्हें राजा मृत्यु-दण्ड दे (४४)। यदि कोई व्यक्ति बलात्कार से चाण्डाल-कन्या भी गमन करे, तो उसे मृत्यु-दण्ड दे (४५)। जो कन्याएँ ब्राह्म या शैव विवाह द्वारा परिणीता हैं, वे ही भार्यायें है। उनसे भिन्न स्त्रियाँ पर-स्त्रियाँ हैं (४६)। जो व्यक्ति सकाम होकर पर-स्त्री का दर्शन करे, वह एक दिन उपवास कर शुद्ध होता है। जो व्यक्ति सकाम होकर पर-स्त्री से एकान्त में बातें करता है, वह दो दिन उपवास करके और जो पर-स्त्री को छूता है, वह चार दिन उपवास करके तथा जो पर-स्त्री का आलिङ्गन करता है, वह आठ दिन उपवास कर शुद्ध हो सकता है (४७)। जो कुलाङ्गना सकामा होकर पर-पुरुष के साथ यह सब करती है, वह भी उक्त अनुसार अपने को शुद्ध कर सकती है (४८)। स्त्रियों को कुत्सित बात कहने, उनके गुप्त स्थान को देखने, उन्हें देखकर हँसने पर दो दिन के उपवास द्वारा शुद्धि होती है (४९)। जो व्यक्ति अपने को नङ्गा दिखाता है और जो दूसरे को नंगा करता है, वह तीन रात्रि तक आहार छोड़ने से शुद्ध होता है (५०)। यदि पति अपनी पत्नी के पर-पुरुष-संसर्ग को प्रमाणित कर दे, तो राजा उस व्यभिचारिणी स्त्री और उसके उप-पति को शास्त्रानुसार दण्ड दे (५१)। यदि स्वामी पत्नी के उप-पति-संसर्ग को प्रमाणित करने में असमर्थ हो, तो उस स्त्री का परित्याग कर उसका भरण-पोषण करता रहे, यदि वह स्त्री पति के आदेश में रहे (५२)। स्वामी पत्नी को उप-पति से रत देखकर यदि तुरन्त स्त्री-सहित उपपति को मार डाले, तो राजा उसे कोई दण्ड न दे (५३)। जहाँ जाने या जिससे बात करने को पति ने मना किया है, वहाँ यदि कुल-स्त्री जाती है या बात करती है, तो वह पति द्वारा त्याज्या है (५४)।

स्वामी की मृत्यु होने पर पति के बन्धुओं के पास या उनके अभाव में पितृ-कुल के अधीन रह कर अपने धर्म का पालन करनेवाली स्त्री पति की सारी सम्पत्ति पाती है (५५)। विधवा दो बार भोजन, परान्न-भोजन, मैथुन, आमिष-भोजन, भूषण, पलंग पर सोना, रक्त वस्त्र पहनना छोड़ दे (५६)। वैधव्य धर्म स्वीकार कर सुगन्धि-द्रव्य शरीर में न लगाए, ग्राम्य आलाप छोड़ दे, सदा देव-पूजा में लगी रहकर समय बिताए (५७)।

जिस बालक के पिता, माता या पितामह नहीं हैं, उसके पालन के लिए मातृ-कुल के मातृ-बन्धु प्रशस्त हैं (५८)। नानी, नाना, मामा, ममेरे भाई और नाना के भाई—ये सब मातृ-बन्धु हैं (५९)। आजी, बाबा, चाचा, चचेरे भाई, बाबा के भाई—ये सब पितृ-बन्धु हैं (६०)। सास, ससुर, देवर, देवर-पुत्र, पति की बहन के पुत्र, ससुर के भाई—ये सब पति-बान्धव हैं (६१)। पिता, माता, बाबा, आजी, पत्नी, पुत्र-हीन नाना-नानी—इन सबके दरिद्र होने पर राजा यथा-शक्ति इन्हें अन्न-वस्त्र प्रदान करे (६२-६३)।

अपनी पत्नी को दुर्वाक्य कहने पर एक दिन, पत्नी को पीटने पर तीन रात्रि और पीटने से यदि पत्नी का खून गिरे तो सात रात्रि तक भोजन का त्याग करे (६४)। क्रोध या मोह-वश भार्या को माता, बहन या बेटी कहे, तो सात रात्रि उपवास करने से शुद्धि होती है (६५)।

कन्या का विवाह नपुंसक से हो और बहुत समय बीतने पर भी यह बात मालूम हो तो राजा उस कन्या का पुनः विवाह कराए, यही शिवोक्त विधि है (६६)। यदि कन्या विवाहिता होकर पति के सहवास के पूर्व

विधवा हो जाय, तो पिता उसका पुनर्विवाह करे। शैव धर्म में ऐसी ही विधि है (६७)। विवाह के बाद बारह पक्ष अर्थात् छः मास में या स्वामी की मृत्यु के एक वर्ष बाद जो स्त्री परिपुष्ट सन्तान को जन्म दे, वह उस स्वामी की पत्नी नहीं और वह पुत्र भी उसका पुत्र नहीं (६८)।

गर्भाधान से पाँचवें महीने के बीच में जो स्त्री जानकर गर्भपात करे, उस स्त्री को और जो व्यक्ति उस गर्भपात का उपाय करे, उसको राजा तीव्र ताड़न द्वारा पीड़ित करे (६९)। पाँचवें मास के बाद जो स्त्री गर्भपात करे, उसे और जो व्यक्ति उसका उपाय करे, उसे हत्या-जन्य पाप होता है (७०) जो क्रूर-कर्मा मनुष्य जानकर नर-हत्या करे, उसे राजा अवश्य मृत्यु-दण्ड दे (७१)। प्रमाद या भ्रम-वश अनजान में मनुष्य-हत्या करनेवाले व्यक्ति को राजा अर्थ-दण्ड एवं कठिन ताड़ना द्वारा शुद्ध करे (७२)। जो स्वयं या अन्य द्वारा वध का उपाय करे, उस पापी को भी अज्ञानपूर्वक हत्या करनेवाले के समान ही दण्ड विहित है (७३)। हे परमेश्वरि ! परस्पर युद्ध करते समय एक को दूसरा मार डाले या आततायी मनुष्य को मारनेवाला पाप-भागी नहीं होता (७४)।

पाप करने की इच्छावाला व्यक्ति अन्य का अङ्गच्छेद करे, तो राजा उसका भी अङ्गच्छेदन करे और अन्य पर प्रहार करे, तो उस पर भी प्रहार करे (७५)। जो पापी ब्राह्मण या गुरु के प्रति प्रहार के लिए डण्डा आदि उठाए, उसे राजा क्रमशः उसकी धन-सम्पत्ति जप्त करके या हस्त-दाहन द्वारा विशुद्ध करे (७६)। शस्त्र द्वारा घायल व्यक्ति की छः मास तक मृत्यु हो जाने पर प्रहार-कर्ता दण्डनीय होता है किन्तु मृत्यु-दण्ड का भागी नहीं होता (७७)।

राज्य-विद्रोही, राज्य-हरण का इच्छुक, गुप्त रूप से राज-शत्रुओं का हित चाहनेवाला, राजा-सहित सैन्य का भेद लेनेवाला, राजा से युद्ध करने का इच्छुक, शस्त्र धारण कर प्रजा और पथिकों को पीड़ित करनेवाला—इन सबका विनाश करने से राजा पाप-भागी नहीं होता (७८-७९)। जो व्यक्ति स्वामी की अनिवार्य आज्ञा से नर-हत्या करता है, उसके स्थान पर स्वामी ही मृत्यु-दण्ड का भागी है—हत्या करनेवाला बध्य नहीं है (८०)। असावधान पुरुष के अस्त्र या पशु द्वारा किसी की मृत्यु होने पर अर्थ-दण्ड या शारीरिक दण्ड द्वारा उसकी शुद्धि होती है (८१)। राजा की आज्ञा न माननेवाला, राजा के सामने विवाद करनेवाला, कुल-धर्म की निन्दा करनेवाला—राजा इन सभी गर्हित व्यक्तियों को दण्डित करे (८२)। पथिकों का धन हरण करनेवाले, क्रूर, ठग, भेदिया और लोगों में झगड़ा बढ़ानेवाले दुष्टों को राजा देश से निकाल दे (८३)। जो शुल्क लेकर कन्या या पुत्र का दान करें या जो जानकर नपुंसक को कन्या दें, उन पापियों को राजा देश से निकाल दे (८४)। मिथ्यापवाद द्वारा अन्य का अनिष्ट करने की इच्छा रखनेवाले व्यक्तियों को धर्मज्ञ राजा अपवाद के अनुरूप दण्डित करे (८५)। जो व्यक्ति जिस परिमाण में अनिष्ट करे, उतना ही उस पर अर्थदण्ड कर अनिष्ट-भागी व्यक्ति को राजा धन प्रदान करे (८६)। मणि-मुक्ता या सुवर्णादि धातु के मूल्य का विचार कर चोर के हाथ या दोनों बाहु कटवा दे (८७)। बलपूर्वक भैंस, घोड़ा, गाय आदि पशु, रत्नादि या शिशु-सन्तान के अपहरण करनेवालों के लिए भी चोर के ही समान दण्ड विहित है (८८)। अन्न या कम मूल्य के द्रव्य के चोर को राजा एक पक्ष या सप्ताह कण-भोजन कराकर शोधित करे (८९)।

हे सुर-पूजिते ! विश्वास-घातक या कृतघ्न की निवृत्ति यज्ञ, व्रत, तपस्या या दान आदि किसी प्रायश्चित्त द्वारा नहीं होती (९०)। जो लोग कूट-साक्षी हैं अर्थात् मध्यस्थ होकर जो पक्षपात करते हैं, राजा उन्हें तीव्र दण्ड द्वारा शासित करे और देश से बाहर निकाल दे (९१)। छः, चार या तीन लोगों को साक्षी का प्रमाण है। अभाव में एक व्यक्ति को साक्षी मान्य है, जो प्रसिद्ध और धार्मिक हो (९२)। हे प्रिये ! देश, काल और विषय-विशेष में जो परस्पर-विरुद्ध वाक्य बोलें, उन साक्षियों की बात अग्राह्य है (९३)। अन्धे और बहरे लोगों

की बात प्रमाण होती है। मूक (गूंगे) और हकलानेवाले का सिर हिलाना स्वीकृति तथा प्रमाण के लिए उनकी लिपि ग्रहण करे (६४) सभी स्थानों में सभी के लिए लिपि ही प्रशस्त प्रमाण है, विशेष कर व्यवहार के स्थान में क्योंकि बहुत समय तक यह नष्ट नहीं होती (६५)। जो व्यक्ति अपने लिए या दूसरे के लिए जाली लिपि करते हैं, उन्हें कूट-साक्षी का दण्ड दूना करके दे (६६)। भ्रम और प्रमाद-रहित व्यक्ति अपने विषय में मात्र एक बार स्वीकार करे, तो बहु साक्षियों के होने पर भी, प्रमाण है (६७)।

हे पार्वति ! जिस प्रकार सत्य का आश्रय लेकर सभी पुण्य रहते हैं, उसी प्रकार एकमात्र मिथ्या का आश्रय लेकर सभी पाप रहते हैं (६८)। अतः जो व्यक्ति सत्य-हीन है, वह सब पापों का आश्रय है। ऐसे पापात्मा का ताड़न और दमन करने से राजा पाप का भागी नहीं होता (६९)। **'मैं जो कहूँगा, वह सत्य है,'** इस प्रकार संकल्प कर कौल गुरु, ब्राह्मण, गङ्गा-जल, देव-मूर्ति, कुल-शास्त्र, कुलामृत, देव-निर्माल्य—इन सबको स्पर्श कर जो कहा जाता है, उसका नाम **'शपथ'** है। यह **'शपथ'** लेकर जो मिथ्या बोलता है, वह एक कल्प तक नरक में रहता है (१००-१०१)। जो कार्य पाप-जनक नहीं है, उसका त्याग या ग्रहण, जो **'शपथ'** के साथ स्वीकृत हो, वह अवश्य कर्त्तव्य है (१०२)। स्वीकृत बात का जानकर उल्लंघन करने से एक पक्ष निराहार द्वारा शुद्धि होती है। भ्रम-वश उल्लंघन हो, तो बारह दिन कण-भोजन करने से शुद्धि होती है (१०३) यदि कुल-धर्म का पालन सत्य विधि से न करे, तो वह मोक्ष और मंगल-दायक नहीं होता, उस कौल-व्यक्ति के लिए केवल पाप-जनक ही होता है (१०४)।

'सुरा' द्रव-मयी **तारा** है अर्थात् द्रव-पदार्थ के रूप में परिणता **'तारा'** है। अतः जीवों के लिए मोक्षदा, भोग और मुक्ति की कारण तथा रोग व विपत्ति की नाशिनी है (१०५)। हे प्रिये ! **'सुरा'** सभी पापों को भस्म करती है; **'सुरा'** द्वारा जगत् पवित्र है, **'सुरा'** सब प्रकार की सिद्धि देती है और **'सुरा'** ज्ञान, बुद्धि व विद्या को बढ़ ती है (१०६)। हे आद्ये ! मुक्त, मुमुक्षु, सिद्ध गण, साधक-जन, राजा और देव लोग अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए इसी **'सुरा'** का सदा सेवन करते हैं (१०७)। जो शास्त्र में निर्दिष्ट नियम का और सावधान-चित्त से **'सुरा'** पान करते हैं, वे पृथिवी पर मर्त्य होकर भी अमर्त्य (अर्थात् देव-समान) होते हैं (१०८)। पञ्च-तत्त्वों में से प्रत्येक तत्त्व विधि-पूर्वक सेवन करने से मनुष्य शिव-स्वरूप होता है और पाँचों तत्त्वों का सेवन करने का क्या फल होता है, उसे मैं नहीं जानता अर्थात् ज्ञान से परे फल होता है (१०९)।

यदि विधि को छोड़कर कोई इस वारुणी देवी का पान करता है, तो वह पान करनेवाले की बुद्धि, आयु, यश, धन—सब कुछ नष्ट कर देती है (११०)। जो प्रमत्त चित्त से अत्यधिक **'सुरा'** सेवन करता है, उसका धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष-साधक ज्ञान नष्ट हो जाता है (१११)। अति **'मद्य'** पीनेवाला कार्याकार्य-विचार-हीन, विभ्रान्त-बुद्धि मनुष्य पग-पग पर अपना और दूसरे का अनिष्ट करता है (११२)। अतः **'मद्य'** या मादक वस्तु में अत्यन्त आसक्त व्यक्तियों को राजा या चक्रेश्वर शारीरिक दण्ड या अर्थ-दण्ड द्वारा शुद्ध करे (११३)। **'सुरा'** अधिक मात्रा में पी हो या थोड़ी ही मात्रा में, वह **'सुरा'**-भेद से, व्यक्ति-भेद से, देश-भेद से और काल-भेद से बुद्धि को भ्रष्ट कर देती है (११४)। अतः लड़खड़ाती वाणी, काँपते हाथों, डगमगाते पैरों और अस्थिर दृष्टि द्वारा अतिरिक्त पान का निर्णय करे क्योंकि **'सुरा'** के परिमाण से अति-पान को नहीं जान सकते (११५)।

राजा अवश्येन्द्रिय, मद से व्याकुल चित्तवाले और देवता व गुरु की मर्यादा का उल्लंघन करनेवाले, भय-प्रद, सभी प्रकार के अनर्थ को तैयार, शिव-घाती पापी की जीभ जलवा दे, उसका धन छीन ले और उसे ताड़ना दे (११६-१७)। जिसके पैर, वचन और हाथ विचलित हों; जो भ्रमित, उन्मत्त, उद्धत हो, उस उग्र व्यक्ति को राजा दण्ड देकर उसका धन छीन ले (११८)। जो व्यक्ति मत्त होकर अश्लील वाक्य बोले, लज्जा और भय

से हीन हो, राजा उसका धन छीनकर उसे दण्डित करे (११६)। हे कुलेश्वरि ! सौ बार अभिषिक्त कौल यदि अति-पान करे, तो उसे कुल-धर्म-बहिष्कृत और पशु ही माना जाता है (१२०)। 'मद्य' शोधित हो या अशोधित, जो व्यक्ति उसे अति पान करता है, वह कौल-गण द्वारा त्याज्य और राजा द्वारा दण्डनीय है (१२१)। यदि कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य मत्त होकर ब्राह्म-धर्म की विधि के अनुसार परिणीता पत्नी को 'मद्य'-पान कराए, तो उस भार्या के सहित पाँच दिन कण-भोजन करने से शुद्धि होती है (१२२)। असंस्कृत 'सुरा' पीनेवाला तीन दिन के उपवास से शुद्ध होता है। यदि कोई व्यक्ति अशोधित 'मांस' खाता है, तो उसे दो दिन उपवास करना होगा (१२३)। यदि कोई व्यक्ति असंस्कृत 'मत्स्य' और 'मुद्रा' खाता है, तो उसे एक दिन उपवास करना चाहिए। यदि कोई विधि का उल्लंघन कर पञ्चम तत्त्व की सेवा करे, तो वह व्यक्ति राज-दण्ड द्वारा शुद्ध होता है (१२४)। हे शिवे ! यदि कोई व्यक्ति जानकर मनुष्य या गाय का मांस खाता है, तो वह एक पक्ष उपवास द्वारा शुद्ध होता है, यही उसका प्रायश्चित्त है (१२५)। जो मनुष्याकृति वाले पशु या मांस खानेवाले जीव का मांस खाता है, वह तीन दिन के उपवास से शुद्ध होता है (१२६)। जो म्लेच्छ, यवन, चाण्डाल या कुलाचार-विरोधी पशु का अन्न खाता है, उसको शुद्धि एक पक्ष के उपवास से होती है (१२७)। हे कुलेश्वरि ! जो अनजान में पूर्वोक्त व्यक्तियों का जूठा खा लेता है, वह एक पक्ष के उपवास से और जो जानकर खाता है, वह एक मास के उपवास से शुद्ध होता है (१२८)। जो व्यक्ति एक बार अनुलोम जाति अर्थात् क्रमशः नीच जाति का अन्न खाता है—यथा ब्राह्मण क्षत्रिय का अन्न खाए, क्षत्रिय वैश्य का अन्न खाए इत्यादि तो वह तीन दिन के उपवास से शुद्ध होता है (१२६)। यदि पशु, चाण्डाल या म्लेच्छ का अन्न 'चक्र' में अर्पित हो या 'वीर' व्यक्ति के हाथ द्वारा दिया जाय, तो उसे खाने में कोई पाप-भागी नहीं होता (१३०)। अन्नाभाव, दुर्भिक्ष, विपत्-काल या प्राण-संकट के समय निषिद्ध भोजन करके प्राण-रक्षा करनेवाला पाप-भागी नहीं होता (१३१)। हाथी की पीठ पर, अनेक लोगों द्वारा वहनीय प्रस्तर या काष्ठासन पर और दूषित पदार्थ का यदि लक्ष्य न हो तो भक्ष्य-दोष नहीं होता (१३२)।

हे प्रिये ! जिन पशुओं का मांस अभक्ष्य है, जो पशु रोगी हैं, उन्हें देवता के लिए न मारे, मारने से पाप होता है (१३३)। जानकर गो-हत्या हो, तो 'कृच्छ्र-व्रत' करे। अनजान में गो-हत्या हो जाय, तो आधा 'कृच्छ्र-व्रत' करे (१३४)। जब तक इस व्रत को न कर ले, तब तक क्षौर-कर्म, नाखून काटना, वस्त्र धोना आदि न करे (१३५)। एक मास उपवास में बिताकर, एक मास कण खाकर व एक मास भिक्षान्न खाकर बिताना हो 'कृच्छ्र-व्रत' है (१३६)। व्रत पूरा होने पर कौलों को जातिवालों को और बन्धु-बान्धवों को भोजन कराने से जान कर की गई गो-हत्या के पाप से मुक्ति मिलती है (१३७)। हे शिवे ! ठीक से पालन न करने से हुई गो-हत्या का पाप आठ दिन के उपवास से दूर होता है किन्तु क्षत्रिय छः दिन, वैश्य चार दिन, शूद्र दो दिन, उपवास कर इस पाप से छूट जाता है (१३८)। इच्छा करके हाथी, ऊँट, भैंसे और घोड़े की हत्या करनेवाला पापी मनुष्य तीन दिन के उपवास से शुद्ध होता है (१३६)। हिरण, भेंड़, बकरे और बिल्ली की हत्या करने पर एक दिन का उपवास करे। मोर, तोते या हंस की हत्या करने पर सूर्योदय से सूर्यास्त तक उपवास करे (१४०)। अस्थि-युक्त जीव की हत्या करने पर एक रात्रि निरामिष भोजन करे। अस्थि-हीन जीव की हत्या करने पर दुःख करने से ही शुद्धि होती है (१४१)। हे देवि ! शिकार करते समय पशु, मछली या अण्डज जीव की हत्या करने से राजा पापी नहीं होता क्योंकि यह उसका नित्य-धर्म है (१४२) हे भद्रे ! देवता के लिए जो कर्म हैं, उन्हें छोड़कर अन्य सभी कर्मों में हिंसा वर्जित है। वैध हिंसा करने से मनुष्य पाप से लिप्त नहीं होता है (१४३)।

सङ्कल्पित व्रत पूरा न कर सके, देव-निर्माल्य को लाँघ जाय, अशौच-काल में देव-प्रतिमा को छू ले, तो

गायत्री का जप करे (१४४)। माता, पिता और ब्रह्म-दाता—ये महा-गुरु हैं। जो इनको निन्दा करता है या इन्हें कठोर बात कहता है, वह पाँच दिन के उपवास से शुद्ध होता है (१४५)। जो इसी प्रकार किसी अन्य गुरु, कौल या ब्राह्मण की निन्दा करता है या कटु बात करता है, वह ढाई दिन के उपवास से पाप-मुक्त होता है (१४६)।

धनार्थी मनुष्य सभी देशों में जा सकते हैं किन्तु जिस देश या शास्त्र में कौलाचार निषिद्ध हो, उस देश और शास्त्र को छोड़ दे (१४७)। जिस देश में कौलाचार निषिद्ध है, उसमें इच्छानुसार जाने से कुल-धर्म से गिरना पड़ता है और तब पुनः पूर्णाभिषेक द्वारा ही वह शुद्ध हो पाता है (१४८)।

सूर्योदय से आठ पहर तक निराहार रहना ही '**उपवास**' है। प्रायश्चित्त में यही विहित है (१४९)। प्राण-धारण के लिए एक अञ्जलि जल पीने या हवा खाने से '**उपवास**' से भ्रष्ट नहीं होता (१५०)। वृद्धावस्था या शारीरिक पीड़ा से '**उपवास**' में असमर्थ हो, तो प्रत्येक '**उपवास**' के अनुकल्प में बारह ब्राह्मणों को भोजन कराए (१५१)। दूसरे की निन्दा, अपनी प्रशंसा या दुःखदायी अनुचित बात कहने या अवैध कार्य करने पर केवल परिताप से शुद्धि होती है (१५२)। इनके सिवा जान या अनजान में किए सभी पाप गायत्री देवी की उपासना और कौल भोजन द्वारा नष्ट होते हैं (१५३)।

पुरुषों के लिए जो साधारण नियम विहित हैं, वही स्त्रियों और नपुंसक लोगों के प्रति भी प्रयोग करे किन्तु स्त्रियों के सम्बन्ध में यह विशेष बात है कि उनके पति ही महा-गुरु हैं (१५४)। महा-व्याधि से ग्रस्त चिर-रोगी लोग स्वर्ण-दान से पवित्र होकर देव और पितृ-कर्म में अधिकारी होते हैं (१५५)। अपमृत्यु या विद्युदग्नि से दूषित घर को '**भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा, स्वः स्वाहा**'—इन शत-संख्यक व्याहृतियों द्वारा होम कर शुद्ध करे (१५६)।

बावली, कुएँ, तालाब आदि में अस्थि-युक्त शव दिखने पर उस शव को बाहर निकालकर उन्हें शुद्ध करे (१५७)। उनके शोधन की विधि यह है कि इक्कीस घड़े विशुद्ध जल को पूर्णाभिषेक-मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर उस जल को उक्त बावली आदि में छोड़ दे (१५८)। यदि उक्त बावली आदि में जल थोड़ा ही हो और वह शव की दुर्गन्ध से दूषित हो गया हो, तो कीचड़ सहित वह सारा जल बाहर करने के बाद उक्त विधि से मन्त्रित जल उसमें छोड़े (१५९)। उक्त जलाशय में यदि हाथी बराबर बहुत जल हो, तो एक सौ घड़े जल उससे बाहर निकालकर पूर्वोक्त अभिषेक मन्त्रों से पवित्र इक्कीस घड़े जल को उसमें छोड़कर उसे शुद्ध करे (१६०)। शव से छुआ जलाशय यदि इस विधि से शोधित न हो, तो उसका जल न पिए और वैसे जलाशय की प्रतिष्ठा भी न करे (१६१)। उसके जल में स्नान या उसके द्वारा किया गया कोई भी कर्म वृथा होता है। यदि स्नान या कोई कर्म कर ले, तो एक दिन निराहार रहकर पञ्चामृत पीने से शुद्धि होती है (१६२)।

जो धनी होकर याचना करता है, वीर होकर युद्ध से मुख मोड़ता है, जो कुल-धर्म को दोष लगाता है, जो कुल-स्त्री होकर सुरा-पान करती है, जो मित्र से द्रोह करता है, जो पण्डित होकर स्वयं पापाचार करता है—ऐसे पापी व्यक्ति को जो देख ले, वह सूर्य का दर्शन कर विष्णु का स्मरण करे और पहने हुए वस्त्रों सहित स्नान करे, तो उन्हें देखने से हुए पाप से मुक्त होगा (१६३-६४)। जो द्विजाति होकर गधे, मुर्गे या सुअर का बेचता है या किसी अन्य नीच कर्म को करता है, वह तीन दिन के व्रतानुष्ठान से शुद्ध होता है (१६५)। हे अम्बिके ! तीन दिन व्रत की विधि यह है कि एक दिन निराहार, एक दिन कण-भोजन और एक दिन जल-पान करे (१६६)। बन्द द्वार वाले घर में यदि कोई बिना बुलाए प्रवेश करता है या जो बात बताने से मना की गई है, उसे कोई कह दे, तो पाँच दिन आहार छोड़ना पड़ता है (१६७)। जो अहंकार-युक्त होकर आनेवाले गुरु-

जन को देखकर खड़ा नहीं होता, वह एक दिन के उपवास से शुद्ध होता है (१६८)। अच्छी तरह से स्पष्ट अर्थ-वाले इस शिव-प्रणीत शास्त्र का जो लोग कूट अर्थ करेंगे, वे पतित होकर अधोगति को प्राप्त करेंगे (१६६)। हे देवि ! तुमसे जो कहा है, वह सार का भी सार है और उत्कृष्ट से भी उत्कृष्ट धर्म है, पवित्र करनेवाला है, कल्याणकारी है और इह-लोक तथा परलोक में परमार्थ देनेवाला है (१७०)।

●—●

बारहवाँ उल्लास : सनातन व्यवहार का कथन

श्री सदाशिव ने कहा—हे आद्ये ! मैं तुम्हें पुनः सनातन व्यवहार बताता हूँ। इस व्यवहार की रक्षा करने से राजा स्वच्छन्द होकर प्रजा का पालन कर सकता है (१)। राजा के नियम को न मानने से मनुष्य धन-लोलुप होकर गुरुजनों, स्वजनों और बन्धु-बान्धवों के साथ झगड़ा करने लगेंगे (२)। हे देवि ! धन के लिए एक दूसरे पर चोट करेंगे और हिंसा, धन चुराने की इच्छा के कारण पापी होंगे (३)। अतः मनुष्य के कल्याण के लिये मैं धर्म-सम्मत राज-नियम बनाता हूँ। इन नियमों के मानने से मनुष्यों का कभी अमंगल न होगा (४)।

राजा पापों के निवारण के लिए जिस प्रकार पापियों के दण्ड का विधान करे, उसी प्रकार मनुष्यों के सम्बन्ध-भेद के अनुसार दाय (संपत्ति) का भी विभाजन करे (५)। विवाह और जन्म के भेद से संबंध दो प्रकार के होते हैं, जिनमें से जन्माधीन संबंध अत्यन्त बली होता है (६)। हे शिवे ! धन के अधिकार के विषय में ऊर्ध्व-तन संबंध की अपेक्षा अधस्तन संबंध श्रेष्ठ है। इसी प्रकार अधः—ऊर्ध्व-क्रम से स्त्री-जाति की अपेक्षा पुरुष-जाति ही श्रेष्ठ है (७)। इनके बीच अधिकतर निकट संबंध के क्रम से दाय (संपत्ति) का अधिकारी होता है। पण्डित लोग इसी विधि के अनुसार यथा-क्रम धन का विभाग करते हैं (८)। मृत व्यक्ति के यदि पुत्र, पौत्र, कन्या, पिता और पत्नी आदि जीवित हैं, तो पुत्र ही धन का अधिकारी होगा, अन्य कोई नहीं (६)। जहाँ सन्तान बहुत हैं, वहाँ सभी पुत्र समान अंश प्राप्त करेंगे, किन्तु वंशानुक्रम से **'ज्येष्ठ पुत्र'** ही राज्याधिकारी होगा (१०)। यदि पैतृक ऋण है, तो पैतृक धन में से ही उसे चुकाना होगा क्योंकि ऋण के रहते पैतृक धन का विभाग करना उचित नहीं है (११)। यदि ऋण के रहते पुत्रों में पैतृक धन बँट गया हो, तो राजा उनसे वह धन लेकर पैतृक ऋण को चुकाये (१२) जिस प्रकार पाप करने से अपने को ही नरक में जाना होता है, उसी प्रकार अपने ऋण से अपने को ही बँधना पड़ता है, दूसरा कोई नहीं बँधता (१३)। स्थावर या अस्थावर जो कुछ सामान्य धन हो, उसमें से अधिकारियों को उनके विभाग के अनुसार अपना-अपना अंश मिलता है (१४)। अधिकारियों में सहमति होने से विभाजन सिद्ध होता है, यदि उनमें सहमति न हो, तो राजा पक्षपात-हीन दृष्टि से अंश बाँट दे (१५)। जिस स्थावर या अस्थावर को बाँटा न जा सके, राजा उसका मूल्य या उप-स्वामित्व अधिकारियों में विभाजित कर दे (१६)। धन के बँट जाने पर भी यदि कोई व्यक्ति किसी धन में अपना अंश प्रमाणित करे, तो राजा उस धन को पुनः बाँट कर अंश न पानेवाले व्यक्ति को उसका भाग दिला दे (१७)। हे शिवे ! सभी अधिकारियों की संमति से धन बँट जाने के बाद उस विभाजन के सबंध में विवाद करनेवाला व्यक्ति राजा द्वारा दण्डनीय होगा (१८)। मृत व्यक्ति के पौत्र, पत्नी और पिता यदि विद्यमान हैं, तो पौत्र ही अधस्तनत्व-रूप से गौरव पाकर धन

का अधिकारी होगा (१९)। पुत्र-हीन मृत व्यक्ति के पिता के भाई और पितामह यदि विद्यमान हैं, तो जन्म के अनुसार निकटता होने के कारण पिता ही उसके धन के अधिकारी होंगे (२०)। हे प्रिये ! कन्या के अति सन्निकृष्ट होने पर भी मृत व्यक्ति की कन्या यदि विद्यमान है, तो पौत्र धन का अधिकारी होगा क्योंकि स्त्री की अपेक्षा पुरुष ही मुख्य है (२१)। मृत पुत्र को सोपान मानकर धन पितामह से पौत्र को जाता है। संसार में प्रसिद्ध है कि स्वयं पिता ही पुत्र-स्वरूप होता है (२२)।

विवाह-सम्बन्ध में ब्राह्म-विधि से विवाहिता पत्नी ही श्रेष्ठ है। पति की अर्द्धाङ्ग-स्वरूपा वह ब्राह्मी पत्नी ही पुत्र-हीन पति के धन की अधिकारिणी होती है (२३)। पति-पुत्र-हीना नारी पति के धन को पाकर भी उसे दान या विक्रय नहीं कर सकती, केवल स्त्री-धन को ही वह दान या विक्रय कर सकती है (२४)। पितृ-कुल या श्वसुर-कुल से दिया गया या अपने द्वारा कमाया धन **'स्त्री-धन'** कहा गया है (२५)। उक्त नारी की मृत्यु होने पर पति के प्राप्त धन की स्थिति पूर्ववत् हो जायगी अर्थात् पति के निकटवर्ती व्यक्ति को वह धन मिलेगा (२६)। स्वामी की मृत्यु होने पर स्त्री स्व-धर्म के अनुसार पति के बन्धुओं के अधीन या उनके अभाव में पिता के बन्धुओं के अधीन रहकर धन को अधिकारिणा होगी (२७)। जिस स्त्री के प्रति व्यभिचार की शंका है, वह पति के धन को नहीं पाएगी; जो व्यक्ति उसके पति के धन का अधिकारी होगा, उससे वह जीविका मात्र पाएगी (२८)। हे शुचि-स्मिते ! यदि स्वर्गीय व्यक्ति के अनेक पत्नियाँ हैं, तो उन सबको पति का धन बराबर बँटकर मिलेगा (२९)। स्वामी के धन की अधिकारिणी पत्नी की मृत्यु होने और पति की कन्या के विद्यमान होने पर वह धन पुनः पति का होकर दुहितृ-गामी होगा (३०)। इसी प्रकार कन्या के रहने पर पुत्र-वधू को मिला धन उसकी मृत्यु होने पर पुनः स्वामी को जाकर श्वसुर के अधीन होकर उस कन्या को मिलेगा (३१)। हे शिवे ! इसी प्रकार पितामह के विद्यमान होने पर यदि धन माता को मिला है, तो माता की मृत्यु होने पर वह धन माता के पति अर्थात् पितामह के पुत्र का धन होकर पितामह को मिलेगा (३२) मृत व्यक्ति का ऊर्ध्व-गत धन जैसे पिता को मिलता है, वैसे ही पति-हीना माता को भी मिलता है (३३)। जननी के रहते विमाता धन की अधिकारिणी नहीं होती। जननी की मृत्यु होने पर पुत्र का आश्रय कर पिता द्वारा विमाता भी धन-भागिनी होती है (३४)। अधस्तन अधिकारी का अभाव हो, तो धन अधोगामी नहीं होता, परन्तु वही धन जिस क्रम से वैसा होता, उसी क्रम से वह ऊर्ध्वगामी होगा (३५)। अतः चाचा के रहने पर बहन को मिला धन भी कन्या-पुत्र-हीना उस बहन की मृत्यु होने पर, बहन के पति के रहने पर भी, लौट कर चाचा को ही मिलेगा (३६)। धन ऊर्ध्व से अधोगामी होकर पहले पुरुष को मिलता है। अतः सहोदरा बहन के रहने पर भी सौतेला भाई धन का अधिकारी होता है (३७)। सहादरा बहन और सौतेले भाई की सन्तान के रहने पर सौतेले भाई को प्राप्त धन को सौतेले भाई की सन्तान ही पाएगी (३८)। हे शिवे ! मृत व्यक्ति के धन को सहोदर और सौतेले भाई दोनों बराबर बाँट लें क्योंकि यह धन मृत व्यक्ति के पितृ-धन के समक्ष है (३९)। कन्या जीवित है, तो उसका पुत्र धनाधिकारी नहीं होगा। जहाँ जो धनाधिकार का बाधक है, वहाँ उसकी मृत्यु के बाद दूसरे को धन मिलेगा। यहाँ कन्या दौहित्र के धनाधिकार में बाधक है, अतः कन्या की मृत्यु के बाद दौहित्र को अधिकार मिलेगा (४०)।

अविवाहिता बहन का विवाह सामान्य पैतृक धन से करने पर पुत्र न होने पर कन्या के पितृ-धन को बाँटकर ले (४१) सन्तति-हीना मृत स्त्री का स्त्री-धन स्वामी को मिलता है। स्त्री-धन से भिन्न अन्य धन जिसे उत्तराधिकार-सूत्र से प्राप्य है, उसी को मिलेगा (४२)। उत्तराधिकार के संबंध से जो सम्पत्ति नारी को मिलती है, उससे वह अपना भरण-पोषण और पुण्य कर्म कर सकती है किन्तु उसे दान या विक्रय नहीं कर सकती

(४३)। चाचा और पिता की विमाता विद्यमान हों, तो धन पितामह-गामी होकर बाद में चाचा द्वारा चाची को ही मिलता है (४४)। पितामह, चाचा और भाई जीवित हों, तो अधस्तन पुरुष की प्रधानता होने से भाई ही धन का अधिकारी होगा (४५)। चाचा की अपेक्षा भाई और पितामह दोनों ही समान रूप से सन्निकृष्ट हैं, ऐसे स्थल पर मृत व्यक्ति का धन पितृधन होकर भाई को मिलेगा (४६)। मृत व्यक्ति के दौहित्र और पिता विद्यमान हों, तो दौहित्र ही धनाधिकारी होगा क्योंकि धन स्वभावतः अधोगामी होता है (४७)। हे कालिके ! स्वर्गीय व्यक्ति के पिता व माता विद्यमान हों, तो पुरुष की मुख्यता होने से पिता ही धनाधिकारी होगा (४८)। मृत व्यक्ति के मातुल के जीवित होने पर भी पितृ-संबंध की गुरुता होने से पितृ-सपिंड व्यक्ति ही धन पाएगा (४९)। हे शिवे ! धन यदि अधोगामी न हो सकेगा, तो वह ऊर्ध्वतन पुरुष को मिलेगा। पुरुष की प्रधानता होने से पहले धन पितृ-कुल को मिलेगा। इसी कारण से मातुल के सन्निकृष्ट होने से वह धनभागी नहीं है (५०)। हे पार्वति ! मृत-पितृक पौत्र पितामह के धन से पिता के प्राप्य अंश को पाएगा (५१)। पौत्री यदि भ्रातृ-हीना, पितृ-मातृ-विहीना और स्व-धर्मिणी है, तो पितामह के धन में पितृव्य के साथ बराबर भाग पाएगी (५२)। हे देवि ! पौत्री की पितामही और पितृ-भगिनी यदि जीवित हों, तो पितृ-गत धन में पौत्री ही अधिकारिणी होगी अर्थात् धनी की कन्या, माता, बहन के बीच कन्या ही उत्तराधिकारिणी है (५३)। अधोगामी धन में अधस्तन पुरुष की ही प्रधानता है और ऊर्ध्वगामी धन में ऊर्ध्वतन पुरुष की (५४)। हे प्रिये ! इसी से पुत्र-वधू, पौत्री या कन्या के जीवित होने पर मृत व्यक्ति का धन उसके पिता नहीं ले सकते (५५)। यदि मृत व्यक्ति के पितृ-कुल में कोई उत्तराधिकारी नहीं है, तो पूर्वोक्त विधि के अनुसार वह धन मातामह-कुल को मिलेगा (५६)। मातामह-कुल को प्राप्त धन मामा, मामा के पुत्र आदि के द्वारा पहले अधस्तन, उसके अभाव में ऊर्ध्वतन एवं पुरुष को और उसके अभाव में नारी को मिलेगा (५७)। ब्राह्म विवाह से विवाहिता पत्नी की सन्तान के होने पर और पितृ-सपिण्ड के रहने पर शैव विवाह से विवाहिता स्त्री को सन्तान मृत व्यक्ति के धन को नहीं पाएगी (५८)। हे भद्रे ! शैव विवाह से विवाहिता पत्नी और उसके पुत्र धनाधिकारी से मृत व्यक्ति की सम्पत्ति के अनुसार भोजन-वस्त्र पा सकेंगे (५९)। हे प्रिये ! शैव विवाह से विवाहिता पत्नी का पालन शैव पति ही करता है, यदि वह व्यभिचारिणी न हो। यह शैवी पत्नी पिता-माता आदि के धन की अधिकारिणी नहीं है (६०)। पिता क्रोध या लोभ से सत्कुलोत्पन्ना कन्या को यदि शैव विवाह में देता है, तो वह लोक-समाज में निन्दित होता है (६१)। शैवी पत्नी और उसका वंश न होने पर शिव-शासन से क्रमशः अर्थात् पूर्व-पूर्वाभाव में समानोदक, आचार्य और राजा मृत व्यक्ति के धन को पाएँगे (६२)।

हे प्रिये ! पिण्ड-दाता से सातवें पुरुष तक '**सपिण्ड**' और आठवें से दसवें पुरुष तक '**समानोदक**' कहलाते हैं। फिर केवल '**गोत्रज**' कहलाते हैं (६३)।

जो धन एक बार बाँटकर बाद में स्वेच्छा से मिश्रित कर लिया गया हो, उसे बिना बंटा मानकर पुनः बाँटा जायगा (६४)। बँटे हुए या न बँटे हुए धन में जिसका जितना अंश निर्दिष्ट है, उस व्यक्ति के मरने पर उसके उत्तराधिकारी उसी के अनुसार अंश प्राप्त करेंगे (६५)। जो जिसके धन का अधिकारी है, वह उसे अपने जीवन भर पिण्डदान करेगा, शैव पत्नी के पुत्र को छोड़कर (६६)। इस लोक में जन्म-संबंध के कारण जिस प्रकार '**अशौच**' विहित है, उसी प्रकार उत्तराधिकारी को भी तीन रात्रि का अशौच विहित है (६७)। पूर्णाशौच या खंडाशौच निर्दिष्ट अशौच-काल के बीच में सुनने पर अशौच-काल के जो कुछ दिन शेष हों, द्विजादि आदि सभी वर्ण उन्हीं कुछ दिनों में शुद्ध होंगे (६८)। अशौच-काल के बीत जाने पर खंडाशौच सुनने पर अशौच नहीं होता किन्तु पूर्णाशौच सुनने पर तीन दिन का अशौच होगा, यदि एक वर्ष से अधिक न हो गया हो (६९)। एक वर्ष

बीत जाने पर पुत्र पिता या माता का और पतिव्रता पत्नी पति का मरण सुनने पर तीन रात्रि का अशौच मानें (७०)। जब एक अशौच के बीच एक अन्य अशौच होता है, तब गुरु अशौच द्वारा मनुष्यों की शुद्धि होती है (७१)। दीर्घ-काल तक होने से अशौच व्याप्य होता है, उससे व्यापक अशौच गुरुतर होता है (७२)। यदि मरणाशौच या जननाशौच के शेष दिनों में कोई दूसरा मरण-जनित या जन्म-जनित खंडाशौच उपस्थित हो, तो पूर्व अशौच द्वारा ही वह छूट जायगा अर्थात् खंडाशौच को ग्रहण नहीं किया जायगा। यदि पूर्णाशौच हो, तो पूर्व अशौच के बाद दो दिन अशौच बढ़ जायगा (७३)। स्त्रियों का जब तक विवाह नहीं होता, तब तक पितृ-कुल में अशौच होगा। विवाह होने पर पिता-माता की मृत्यु पर तीन रात का अशौच होगा (७४)। विवाह के बाद स्त्री पति-गोत्र को पाती है। इसी प्रकार दत्तक पुत्र दत्तक लेनेवाले के गोत्र को पाता है (७५)। जननी और जनक दोनों की सम्मति से पुत्र ग्रहण कर ग्रहण-कर्ता अपने गोत्र और नाम का उल्लेख कर दत्तक पुत्र का संस्कार करे (७६)। जिस प्रकार औरस पुत्र को पिता-माता के धन और पिंड का अधिकार होता है, उसी प्रकार दत्तक पुत्र को भी दत्तक लेनेवाले स्त्री-पुरुष के धन और पिंड का अधिकार है क्योंकि वे ही दत्तक के पिता-माता हैं (७७)। पाँच वर्षीय बालक को सवर्ण से लेकर उसका प्रतिपालन करे। दत्तक लेने में पाँच वर्ष से अधिक आयु का बालक प्रशस्त नहीं है (७८)। हे कालिके! भाई का पुत्र भी यदि दत्तक हो, तो दत्तक लेनेवाला ही उसका पिता होगा और उसका जन्मदाता सभी कार्यों में उसका पितृव्य (चाचा) होगा (७९)। जो व्यक्ति जिसके धन का अधिकारी होगा, वही व्यक्ति उसके धर्म का पालन करेगा और नियम मानेगा तथा उसके बन्धुओं को सन्तुष्ट करेगा (८०)। कानीन (कन्या-काल में उत्पन्न पुत्र), गोलक (उप-पति द्वारा विधवा के गर्भ से उत्पन्न पुत्र) और कुंड (उप-पति द्वारा सधवा के गर्भ से उत्पन्न पुत्र) अति पापी हैं, उनके मरने पर अशौच नहीं होता और उन्हें धनाधिकार भी नहीं होता (८१)। जिन पुरुषों को लिङ्गच्छेद का दंड मिला है या जिन स्त्रियों की नाक राज-दंड द्वारा काटी गई है या जो महा-पापी हैं उनके मरने पर अशौच नहीं माना जाता (८२)। जो व्यक्ति निरुद्देश हों, उनके परिवार और धन की रक्षा राजा बारह वर्ष तक करे (८३)। बारह वर्ष बीतने पर उक्त अनुद्दिष्ट व्यक्ति की कुश-मय देह का दाह कराए। तीन रात्रि के बाद उस व्यक्ति के पुत्रादि द्वारा प्रेतत्व-मोचन कराए (८४)। फिर राजा उस अनुद्दिष्ट व्यक्ति के धन को उसके पुत्रादि के क्रम से यथा-सम्भव उसके परिवार के लोगों में बाँट दे अन्यथा वह पापी होगा (८५)। जिसका रक्षक कोई नहीं है, उनका और दीन, विपत्ति-ग्रस्तादि लोगों का रक्षक राजा ही है क्योंकि राजा प्रजा-गण का प्रभु है (८६)। हे कालिके! अनुद्दिष्ट व्यक्ति यदि धन बँटने के बाद भी आ जाय, तो स्त्री-पुत्र, धन उसी के होंगे (८७)।

अंशी-गण की सम्मति के बिना पुरुष भी पैतृक स्थावर धन को स्वजन को या अन्य व्यक्ति को दान नहीं कर सकते (८८)। जो स्थावर, अस्थावर धन अपना उपार्जित है, उसे और पैतृक अस्थावर संपत्ति को स्वेच्छानुसार दान कर सकते हैं (८८)। पुत्र या पत्नी अथवा कन्या, दौहित्र या जनक, जननी किम्वा भाई या बहन के रहते भी जो स्थावर और अस्थावर धन अपना उपार्जित है तथा पैतृक सारा अस्थावर धन दान में दे सकता है (९०-९१)। इस प्रकार का धन पुरुष ऐसे दान में या अन्य किसी धर्म-कार्य में व्यय करे, तो उसके पुत्रादि उसे अन्यथा नहीं कर सकते (९२)। धर्मार्थ में लगाई संपत्ति की रक्षा धन-दाता ही करेगा, किन्तु उसे वह पुनः नहीं ले सकता क्योंकि धर्म ही उस धन का स्वामी है (९३)। हे अम्बिके! स्वयं या प्रतिनिधि द्वारा सङ्कल्प के अनुसार मूल-धन या उप-स्वत्व को धर्मार्थ में लगाए (९४)। धनी व्यक्ति यदि स्नेह-वश किसी उत्तराधिकारी को अपने उपार्जित धन का आधा दे, तो उसे कोई अन्य व्यक्ति अन्यथा नहीं कर सकता (९५)। यदि उत्तराधिकारियों में से एक ही व्यक्ति को अपने उपार्जित धन का आधा दे, तो अन्य उत्तराधिकारी उसे रोक नहीं सकते (९६)। जहाँ

बहुत भाइयों में से एक भाई पैतृक धन द्वारा धन पैदा करता है, वहाँ उक्त पैतृक धन में ही सब भाइयों का अधिकार है ; उपार्जित धन उपार्जन करनेवाले के सिवा अन्य किसी को नहीं मिलेगा (९७)। जो भाई पैतृक नष्ट द्रव्य का उद्धार करता है, वह उत्तराधिकारियों के बीच दो भाग पाएगा (९८)। शरीर-शून्य व्यक्ति को पुण्य, धन और विद्या नहीं मिलती। यह शरीर पितृ-संबंधी है, अतः कौन धन पैतृक नहीं है (९९) ? मानव-गण पृथक् अन्न, पृथक् धन वाले होकर भी जो कुछ उपार्जित करते हैं, वह सब पितृ-संक्रान्त है, अतः अपना उपार्जित धन कैसे सम्भव है (१००) ? अतः हे महेश्वरि ! जो व्यक्ति अपने परिश्रम से जो धन उपार्जित करता है, वही उसका उपार्जित है, वही उस धन का स्वामी है, अन्य कोई नहीं (१०१)।

हे देवि ! माता, पिता, गुरु, पितामह या मातामह को हाथ से भी मारनेवाला व्यक्ति उनके धन का अधिकारी नहीं होता (१०२)। अन्य किसी सम्बन्धी व्यक्ति का भी प्राण नाश करने पर वह विनष्ट व्यक्ति के धन को नहीं पाएगा, कोई अन्य उत्तराधिकारी उस व्यक्ति के धन का अधिकारी होगा (१०३)। हे अम्बिके ! नपुंसक और पंगु जीवन भर अन्न-वस्त्र पाएगा, धन का अधिकारी नहीं होगा (१०४)। मार्ग में या अन्य किसी स्थान पर किसी सस्वामिक धन के मिलने पर राजा विचार कर उस धन को पानेवाले के द्वारा धन-स्वामी को प्रदान करे (१०५)। अस्वामिक जीव या धन के मिलने पर, पानेवाला व्यक्ति ही उसका अधिकारी होगा, राजा को उसका दशमांश अर्पित करे (१०६)।

योग्य क्रेता यदि पास में है, तो स्वामी स्थावर धन अन्य व्यक्ति को नहीं बेच सकता (१०७)। पास रहनेवाले क्रेताओं के बीच जाति या सवर्ण प्रशस्त है ; उनके अभाव में बन्धु। बहुत बन्धु यदि खरीदने के इच्छुक हों, तो विक्रेता की इच्छा ही मान्य है अर्थात् इच्छानुसार जिसे चाहे, उसे बेच सकता है (१०८)। दूसरा व्यक्ति यदि स्थावर धन का मूल्य निश्चित कर उसे खरीदने को तैयार हो और निकटस्थ व्यक्ति यदि वही मूल्य दे, तो यही खरीदार होगा, दूसरा व्यक्ति नहीं (१०९)। यदि निकटस्थ व्यक्ति मूल्य देने में असमर्थ है या अन्य को बेचे जाने में सहमत है, तो गृहस्थ दूसरे व्यक्ति को भी बेच सकता है (११०)। हे देवि ! प्रवासी व्यक्ति के अज्ञातवास में यदि स्थावर संपत्ति कोई अन्य खरीद ले, तो सुनने पर वही मूल्य देकर प्रवासी उसे पुनः पा सकता है (१११)। किन्तु यदि क्रेता ने उसमें गृह, उपवन बना लिया हो या उसे भग्न किया हो, तो निकटस्थ व्यक्ति मूल्य देकर भी स्थावर धन का नहीं पा सकता (११२)। जल या वन से निकाली हुई, अति दुर्गम, अनिवारित, भोग एवं राजस्व-शून्य भूमि को राजाज्ञा के बिना भी उपजाऊ बना सकते हैं (११३)। वह भूमि बहुत परिश्रम से भी तैयार की गई हो, तो भी उसमें उत्पन्न वस्तु का दशमांश राजा को देकर उसका भोग करे क्योंकि राजा ही सारी भूमि का स्वामी है (११४)।

जिस स्थान में दूसरे का अनिष्ट हो सकता हो, वहाँ बावली, कुआँ, तालाब खोदना; वृक्ष लगाना या घर बनवाना निषिद्ध है (११५)। देवोद्देश से बने कुएँ और नदी का जल सभी पी सकते हैं और इन जलाशयों के निकट रहनेवाले उनसे सिंचाई करने के अधिकारी हैं (११६)। जिस जलाशय से सिंचाई करने से लोगों को जल की कमी अनुभव हो, उससे निकट के लोग भी सिंचाई नहीं कर सकते (११७)। अंशी लोगों की सम्मति के बिना अविभक्त सम्पत्ति को रेहन रखना या बेचना अवैध है। इसी प्रकार जिस सम्पत्ति का स्वामित्व या परिमाण निर्दिष्ट नहीं है, उसका बेचना या बन्धक रखना अप्रामाणिक होता है (११८)। बन्धक वस्तु को जानकर नष्ट करने पर राजा उस नष्ट करनेवाले व्यक्ति से उस वस्तु के स्वामी को उसका मूल्य दिलाए (११९)। बन्धक करनेवाले की सम्मति से बन्धक पशु आदि वस्तु को उपयोग में लानेवाला व्यक्ति ही उस पशु का पोषण करेगा (१२०)। जब कोई काल और लाभ के नियम की उपेक्षा कर लाभ के लिए स्थावर-अस्थावर सम्पत्ति को लगाएगा,

तो वह लाभ अन्यथा होगा (१२१)। पिता की मृत्यु होने पर सभी भागीदारों की सम्मति के बिना सामान्य संपत्ति को नहीं लगाया जा सकता (१२२)। हे पार्वति ! यदि बहुमूल्य वस्तु कम मूल्य में या कम मूल्य की वस्तु बहुत मूल्य में बिके, तो राजा उसे अन्यथा करने में समर्थ है (१२३)।

जिस प्रकार शरीर का जन्म और मरण एक ही बार होता है, उसी प्रकार दान और कन्या का ब्राह्म विवाह एक ही बार होता है (१२४)। जिसके एक ही पुत्र है, वह पुत्र का दान नहीं कर सकता; जिसके एक ही स्त्री है, वह स्त्री का दान करने में समर्थ नहीं होता। जो पितरों का हित चाहता है, वह एक ही कन्या होने पर उसे शैव विवाह में नहीं दे सकता (१२५)। देव कार्य में, पितृ-कार्य में, वाणिज्य में—विशेषतः राज-द्वार में प्रतिनिधि जो कुछ करेगा, वह उसके नियुक्त करनेवाले का ही किया माना जायगा (१२६)। हे सुव्रते ! प्रतिनिधि को नियुक्त करनेवाले के दोष के लिए प्रतिनिधि या दूत दंडनीय नहीं है, यह नित्य विधि है (१२७)। ऋण, कृषि-कार्य, वाणिज्य और अन्य सभी कार्यों में धर्म-सम्मत जो कुछ स्वीकार किया गया है, उसे करना होगा (१२८)। जगदीश्वर जगत् की रक्षा करते हैं। जो इस जगत् को नष्ट करना चाहते हैं, वे स्वयं विनष्ट हो जाते हैं। ईश्वर द्वारा पालित जगत् के रक्षकों की रक्षा जगदीश्वर करते हैं। अतः सदैव जगत् के हित में लगे रहना चाहिए (१२९)।

तेरहवाँ उल्लास : देवता, जलाशयादि-प्रतिष्ठा एवं वास्तु-यागादि की विधि

सभी निगमों के सार एवं स्वर्ग और मोक्ष के एकमात्र कारण-स्वरूप बातों के बतानेवाले देवदेव महेश्वर से कलि द्वारा मलीन जीवों की पवित्रता के लिए एकाग्र-चित्त त्रिभुवन-जननी पार्वती ने भक्ति-पूर्वक कहा (१) —महद्-योनि अर्थात् महत्-तत्त्व को उत्पादिका आदि-शक्ति अर्थात् मूल प्रकृति महा-द्युति एवं सूक्ष्म से भी सूक्ष्मा अर्थात् सर्वथा दुर्ज्ञेया 'महा-काली' का रूप-निरूपण किस प्रकार होगा (२) ? हे देव ! प्रकृति के कार्य का अर्थात् घट-पट आदि का ही रूप होता है, किन्तु 'महा-काली' साक्षात् परात्परा अर्थात् प्रकृति-रूपा है, अतः रूप होना असम्भव है। इस विषय में मुझे विशेष सन्देह है। हे देव ! आप मेरे इस संदेह को विशेष रूप से दूर करें (३)।

श्रीसदाशिव ने कहा—हे प्रिये ! पहले ही बताया है कि उपासकों के कार्य के लिए गुण व क्रिया के अनुसार देवी का रूप कल्पित होता है (४)। हे शैलजे ! सफेद, पीले आदि रङ्ग जैसे काले रङ्ग में लुप्त हो जाते हैं, वैसे ही सभी भूत 'काली' में प्रविष्ट हैं (५)। इसी से उस निर्गुणा, निराकारा, योगियों की हित-कारिणी, काल-शक्ति का रङ्ग काला कहा गया है (६)। नित्या, काल-रूपा, अव्यया और कल्याण-रूपा इस 'काली' के मस्तक पर चन्द्र-कला का चिह्न अमृत को सूचित करता है (७)। नित्य-स्वरूप चन्द्र, सूर्य और अग्नि द्वारा काल-सम्भूत सारा जगत् दिखाई देता है, इसी से 'काली' के तीन नेत्र कल्पित हुए हैं (८)। सभी प्राणियों को ग्रास करने और काल-दंड द्वारा चबाने से सब प्राणियों का रक्त हो महेश्वरी के लाल वस्त्र से ज्ञात होता है (९)। हे शिवे ! समय-समय पर विपत्ति से जीवों की रक्षा करने और अपने-अपने कार्य में जीवों को प्रेरित करने की बात

उनके वर और अभय से स्पष्ट होती है (१०)। हे भद्रे ! वे रजो गुण से उत्पन्न विश्व में रहती हैं, इसी से कहा है कि वे लाल कमल के आसन पर बैठी हैं (११)। ज्ञान-स्वरूपा, सब लोगों की साक्षि-स्वरूपिणी वे देवी मोह-मयी सुरा को पीकर क्रीडा करनेवाले काल से उत्पन्न जगत् को देखती हैं (१२)। अल्पबुद्धि भक्तों के हित के लिए उक्त प्रकार गुणानुसार उन भगवती के अनेक प्रकार के रूप कल्पित हुए हैं (१३)।

श्री देवी ने कहा—जीवों के उद्धार के लिये आपने 'आद्या कालिका' का जो ध्यान बताया है, यदि उसी के अनुसार मिट्टी, पत्थर, लकड़ी या धातु की मूर्ति बनाकर साधक व्यक्ति उसे वस्त्र और अलङ्कार से विभूषित कर सुन्दर घर बनाकर उसमें देवेशी को उस मूर्ति को स्थापित करे, तो उसका क्या फल होगा ? हे प्रभो ! किस विधि से उस मूर्ति की 'प्रतिष्ठा' करनी होगी, यह कृपया मुझे बताइए (१४-१६)। आपने पहले बावली, कुएँ, घर, उद्यान और देव-प्रतिमा की प्रतिष्ठा का उल्लेख किया है, किन्तु विशेष रूप से नहीं बताया है (१७)। हे परमेश्वर ! मैं आपके मुख से उनका विधान भी सुनना चाहती हूँ। यदि आपकी रुचि हो, तो कृपया बताइए (१८)।

श्री सदाशिव ने कहा—हे परमेश्वरि ! तुमने जो जानना चाहा है, वह बहुत गोपनीय है। तुम्हारे स्नेह से मैं उसे बताता हूँ। तुम एकाग्र होकर सुनो (१९)। इस भू-मण्डल पर मनुष्य दो प्रकार के हैं—१. सकाम, २. निष्काम। निष्काम लोगों को मोक्ष-पद और कामी लोगों को जैसा फल मिलता है, वह कहता हूँ (२०)। हे प्रिये ! जो व्यक्ति जिस देवता की मूर्ति की प्रतिष्ठा करता है, वह उसी देवता के लोक को और उस लोक को भोग्य वस्तुओं को पाता है (२१)। मृण्मयी (मिट्टी की) प्रतिमा प्रतिष्ठित करनेवाला दस हजार कल्पों तक स्वर्ग में रहता है। लकड़ी, पत्थर और धातु की प्रतिमा का फल क्रमशः दस-दस गुना अधिक है अर्थात् लकड़ी की प्रतिमा से एक लाख कल्प तक स्वर्ग में रहता है इत्यादि (२२)। जो व्यक्ति देवता की प्रसन्नता के लिए या किसी कामना से ध्वज और वाहन के साथ तृण-काष्ठादि का घर बनाकर उत्सर्ग करता है या इस प्रकार के उत्कृष्ट घर का संस्कार कराता है, उसका पुण्य सुनो (२३)। हे परमेश्वरि ! जो व्यक्ति तृणादि से बने घर को दान करता है, वह बहुत हजार कोटि वर्षों तक देवलोक में रहता है (२४)। ईंट का बना गृह दान करने से इससे सौ गुना अधिक फल होता है। पत्थर के गृह-दान का फल इससे दस हजार गुना अधिक है (२५)।

हे आद्ये ! सेतु और संक्रम (विशेष प्रकार का सेतु) बनानेवाले को यम-लोक नहीं देखना पड़ता। वह सुखपूर्ण देवलोक को पाकर स्वर्ग-वासियों के साथ आनन्द करता है (२६)। वृक्ष और उपवन की प्रतिष्ठा करनेवाला देव-लोक में जाकर कल्प-वृक्षों से युक्त दिव्य घर में रहता हुआ अपनी मनचाही सभी सुन्दर भोग्य वस्तुओं का उपभोग करता है (२७)। सब प्राणियों को प्रसन्नता के लिए जो जलाशय दान करता है, वह पापों से छूटकर ब्रह्म-लोक को जाता है और उस जलाशय में जितनी बूंदें होती हैं, उतने सौ वर्षों तक वहाँ रहता है (२८)।

हे देवि ! जो व्यक्ति देवता की प्रीति के लिए कोई वाहन देता है, वह उस देवता से रक्षित होकर उसी के लोक में चिरकाल तक रहता है (२९)। इस भू-मण्डल पर मिट्टी के वाहन देने का जो फल है, उसका दस गुना फल लकड़ी का वाहन दान करने से और प्रस्तर-वाहन के दान से उसका भी दस गुना अधिक फल होता है (३०)। पीतल, कांसे, ताम्बे आदि धातु से बने देव-वाहन के दान से क्रमशः सौ गुना अधिक फल होता है (३१)। श्रेष्ठ साधक भगवती के मन्दिर में 'महा-सिंह', शिव-मन्दिर में 'वृषभ' और विष्णु-मन्दिर में 'गरुड़' का निर्माण कराकर दान में देता है (३२)। जिसके सभी दाँत तीक्ष्ण हैं, मुख-मण्डल भीषण है, कन्धे केशरों से सुशोभित हैं, चार पैर हैं, नाखून वज्र के समान हैं—वह 'महा-सिंह' कहा जाता है (३३)। दो सींगें ही जिसके अस्त्र हैं, शरीर श्वेत वर्ण का है, चार पैर हैं, खुर काले रंग के हैं, बड़ा भारी ककुद है, पूछ काली है, कन्धे

श्याम रंग के हैं—वह **'वृषभ'** कहलाता है (३४)। जिसकी जाँघ पक्षी के समान, मुख मनुष्य के समान, नाक लम्बी है और दो पंखों से युक्त अञ्जलि बनाकर जो दोनों पैरों को सिकोड़कर बैठा है—उसे **'गरुड़'** कहते हैं (३५)।

देवालय को ध्वज, पताका का दान करने से देवता को सौ वर्ष तक रहनेवाली प्रसन्नता होती है। बत्तीस हाथ ऊँचे विरङ्ग-विरंगे, सुदृढ़, छिद्र-रहित, देखने में सुन्दर, लाल वस्त्र से लपेटे हुए और आगे के भाग में विष्णु के चक्र से युक्त ध्वज-दण्ड का निर्माण करे (३६-३७)। ऐसे ध्वज-दण्ड के अगले भाग में सम्बन्धित देवता के वाहन के चिह्न से युक्त पताका लगाए। जिसका मूल-भाग प्रशस्त और अगला भाग सूक्ष्म है; जो सुन्दर वस्त्र से बनी ध्वज के आगे शोभा पाती है—वही **'पताका'** कही जाती है (३८)।

जो वस्त्र, अलङ्कार, पर्यङ्क, यान, सिंहासन, पान-पात्र, भोजन-पात्र, ताम्बूल-पात्र, पोकदान, मणि-मुक्ता-प्रवाल आदि रत्न और अन्य दूसरी अपनी प्रिय वस्तुएँ देवता को श्रद्धा-भक्ति के साथ दान करता है, वह उस देवता के लोक में पहुँचकर उन्हीं वस्तुओं का कोटि गुना फल पाता है (३९-४०)। कामियों का फल स्वप्न में प्राप्त राज्य के समान क्षय होनेवाला होता है। निष्कामियों को पुनर्जन्म-रहित निर्वाण-मुक्ति मिलती है (४१)।

जलाशय, गृह, आराम, सेतु, संक्रम, वृक्ष और देव-प्रतिष्ठा के समय **'वास्तु-दैत्य की पूजा'** करे। जो वास्तु-पूजा न करके देव-प्रतिष्ठा आदि कर्म करता है, उसके उस कर्म में वास्तु-देव अपने गणों के साथ विघ्न डालते हैं। (४२-४३)। १. **कपिलास्य**, २. **पिङ्ग-केश**, ३. **भीषण**, ४. **रक्त-लोचन**, ५. **कोटराक्ष**, ६. **लम्ब-कर्ण**, ७. **दीर्घ-जङ्घ**, ८. **महोदर**, ९. **अश्व-तुण्ड**, १०. **काक-कण्ठ**, ११. **वज्र-बाहु**, १२. **व्रतान्तक**—इन सभी वास्तु-देव के गणों का यत्न-पूर्वक पूजन करे (४४-४५)। जिस मण्डल में वास्तुदेव की पूजा करनी चाहिए, उसे कहता हूँ, सुनो (४६)—

वेदी या पानी से लिपी हुई किसी सम-तल भूमि पर वायु-कोण से ईशान-कोण तक एक हाथ लम्बी रेखा सूत्र-पात द्वारा बनाए (४७)। ईशान-कोण से अग्नि-कोण तक ऐसी ही एक रेखा और बनाए। फिर अग्नि-कोण तक ऐसी ही एक रेखा और बनाए। फिर अग्नि-कोण से नैर्ऋत-कोण तक और नैर्ऋत-कोण से वायु-कोण तक एक-एक रेखा बनाकर एक चतुष्कोण मण्डल बनाए (४८-४९)। हे देवि! इस मण्डल के एक कोने से दूसरे कोने तक दो रेखाएँ खींचकर मण्डल को चार भागों में इस प्रकार बाँटे कि उस स्थल पर मछली के पूछ के चार आकार बन जायँ (५०)। उक्त पुच्छ-मूल के भेद कर पश्चिम दिशा से पूर्व दिशा तक और उत्तर दिशा से दक्षिण दिशा तक दो रेखाएँ खींचे (५१)। फिर कोण-रेखा-युक्त चतुष्कोणों में कर्णाकर्णि चार रेखाएँ और मध्य स्थल में पश्चिम से पूर्व तक और उत्तर से दक्षिण तक दो रेखाएँ खींचे (५२)। इस प्रकार उक्त मण्डल के सोलह कोष्ठ बनाकर पञ्च-वर्णों के चूर्ण द्वारा उत्तम यन्त्र की रचना करे (५३)। फिर मध्य के चतुष्कोण में एक सुन्दर चतु-र्दल-पद्म अङ्कित करे, जिसकी कर्णिका पीले और लाल रंग की तथा केशर लाल रंग की हो (५४)। तब पद्म के सभी दलों को सफेद या पीले रंग का करे। फिर पद्म के सन्धि-स्थानों को इच्छानुसार रंगों से भरे (५५)। तब ईशान कोण के कोष्ठक से आरम्भ कर बारह कोष्ठ क्रमशः श्वेत, कृष्ण, पीत, रक्त—इन चार रंगों से पूरे (५६)। हे प्रिये! दक्षिणावर्त्त-क्रम से इन सभी कोष्ठों को पूरे। फिर वामावर्त्त-क्रम से उसमें देव-गण की पूजा करे (५७)। पहले विघ्न की शान्ति के लिए पद्म में वास्तु-दैत्य की और ईशान कोण से आरम्भ कर (वामावर्त-क्रम से) बारह कोष्ठों में कपिलास्य आदि दानवों की पूजा करे (५८)। तब कुशण्डिकोक्त विधि से अग्नि का संस्कार कर यथा-शक्ति आहुतियाँ देकर **'वास्तु-यज्ञ'** समाप्त करे (५९)। हे देवि! तुमसे यह मंगल-दायिनी **'वास्तु-पूजा'** कही गई। इसके करने से मनुष्य वास्तु के विघ्नों से पीडित नहीं होता (६०)।

देवी ने कहा—हे नाथ ! वास्तु-देव का मण्डल और वास्तु-पूजा की विधि आपने बताई किन्तु वास्तुदेव का ध्यान आपने नहीं कहा। अब इसे प्रकट करें (६१)।

श्री सदाशिव ने कहा—हे महेश्वरि ! वास्तु-राक्षस का ध्यान कहता हूँ, सुनो, जिसका अनुशीलन करने से सारी आपत्तियाँ तुरन्त नष्ट हो जाती हैं (६२)—

चतुर्भुजं महा-कायं जटा-मण्डित-मस्तकम् । त्रिलोचनं करालास्यं हार-कुण्डल-शोभितम् ।।
लम्बोदरं दीर्घ-कर्णं लोमशं पीत-वाससम् । गदा-त्रिशूल-परशु-खट्वाङ्ग दधतं करैः ।।
असि-चर्म-धरैर्वीरैः कपिलास्यादिभिर्युतम् । शत्रूणामन्तकं साक्षादुद्यदादित्य-सन्निभम् ।।
ध्यायेद् देवं वास्तु-पतिं कूर्म-पद्मासन-स्थितम् ।

अर्थात् चतुर्भुज, विशाल-काय, जटा-जूट से विभूषित मस्तक, त्रिनेत्र, भयानक मुख, हार और कुण्डल से विभूषित, लम्बोदर, दीर्घ-कर्ण, लोमश, पीत-वस्त्र, चार हाथों में गदा, त्रिशूल, परशु और खट्वाङ्ग, खड्ग-चर्म-धारी, कपिलास्य आदि वीर-गणों से वेष्ठित, शत्रु-संहार-कारी, साक्षात् उदय होते हुए सूर्य के समान तेजस्वी, कूर्म के ऊपर पद्मासन पर बैठे हुए '**वास्तु-पति देव**' का ध्यान करना चाहिए।

महामारी, रोग, डाकिनी-भय, उपद्रव, सन्तान के दोष, सर्प या राक्षस-भय के होने पर उक्त प्रकार का ध्यान कर सपरिवार '**वास्तु-देव**' की पूजा करे (६३-६७)। फिर तिल, घृत और पायस से होम करे, तो सभी बातों में शान्ति मिलती है।

हे सुव्रते ! पूर्वोक्त कर्मों में जिस प्रकार '**वास्तु-पुरुष**' पूज्य हैं, उसी प्रकार '**नव-ग्रह**', '**दश-दिक्पाल**' और '**ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, वाग्-देवी, लक्ष्मी, शङ्करी, मातृ-गण, गणेश**' व '**वसु-गण**' भी पूजनीय हैं। हे कालिके ! उक्त सभी कर्मों में यदि '**पितृ-गण**' तृप्त नहीं हैं, तो कर्त्ता का सभी कुछ व्यर्थ जाता है और उसके पग-पग पर विघ्न आते हैं, अतः हे महेश्वरि ! यत्न करके उक्त संस्कार-कर्मों में और इसमें '**पितृ-गण**' की तृप्ति के लिए '**आभ्युदयिक श्राद्ध**' करे।

अब सर्व-शान्ति-विधायक '**ग्रह-यन्त्र**' बताता हूँ (६८-७२), जिसमें '**ग्रह-गण**' और '**इन्द्रादि दिक्-पाल-गण**' पूजित होकर वांछित वर देते हैं (७३)। तीन त्रिकोण बनाकर उनके बाहर एक वृत्त बनाए। उस वृत्त के बाहर उससे लगे हुए आठ दल (पंखड़ियाँ) बनाए। उनके बाहर चार द्वारों सहित एक सुन्दर भूपुर बनाए (७४)। भूपुर के बाहर पूर्व और ईशान कोण के मध्य में प्रादेश बराबर एक वृत्त बनाए (७५)। फिर पश्चिम और नैऋत कोण के मध्य में भी ऐसा ही एक और वृत्त बनाए (७६)। तब नव-ग्रह के रङ्गों द्वारा इस यन्त्र के नौ कोणों को भरे (७७)। मध्य त्रिकोण को दाईं ओर बाईं ओर क्रमशः श्वेत और पीत रंग भरे। उसका पीछे का भाग काला रँगे। अष्ट-दलों को अष्ट-दिक्-पाल के रङ्गों से भरे (७८)। श्वेत, रक्त और कृष्ण रंग के चूर्ण से भूपुर को प्राचीर रँगे। हे देवि ! भूपुर के बाहर स्थित प्रादेश-बराबर दोनों वृत्तों के ऊपर और बीच के भागों को क्रमशः रक्त और श्वेत रङ्ग का बनाए। सारे सन्धि-स्थानों को स्वेच्छानुसार रंग से भरे (७९-८०)।

जिस प्रकोष्ठ में जिस ग्रह का और जिस दल में जिस दिक्-पाल की पूजा करनी है तथा जिस द्वार में जिस देवता की स्थिति है, उनका क्रम अब बताता हूँ, सुनो (८१)—मध्य कोण में '**सूर्य**' की पूजा करे, उनके दोनों ओर '**अरुण**' और '**शिखा**' की पूजा करे। सूर्य के पीछे के भाग में '**प्रचण्ड**' और '**उद्दण्ड**' की पूजा करे (८२)। सूर्य के ऊर्ध्व-कोण में पूर्व-दिशा में '**चन्द्र**' का, अग्नि-कोण में '**मङ्गल**' की, दक्षिण दिशा में '**बुध**' की, नैऋत-कोण में '**बृहस्पति**' की, पश्चिम दिशा में '**शुक्र**' की, वायु-कोण में '**शनि**' की, उत्तर-दिशा में '**राहु**' की,

ईशान-कोण में 'केतु' की और चन्द्र के चारों ओर 'नक्षत्र-मण्डल' की पूजा करे। (८३-८४)।

१. 'सूर्य' रक्त-वर्ण, २. 'चन्द्र' श्वेत-वर्ण, ३. 'मङ्गल' अरुण-वर्ण, ४. 'बुध' पाण्डु-वर्ण, ५. 'बृहस्पति' पीत-वर्ण, ६ 'शुक्र' श्वेत-वर्ण, ७. 'शनि' कृष्ण-वर्ण, ८. 'राहु' और 'केतु' अनेक-वर्ण हैं। 'सूर्य' के दो हाथों में दो पद्म और दो हाथों में वर-अभय हैं—ऐसा उन्हें चार हाथों वाला ध्यान करे (८५)। 'चन्द्र' के दो हाथों में वर-मुद्रा और अमृत का ध्यान करे। 'मङ्गल' को कुछ कुबड़े शरीरवाला और दोनों हाथों से दण्ड लिए ध्यान करे। 'बुध' को बाल-रूप और ललाट पर गिरे हुए घुँघराले केशों सहित ध्यान करे (८६-८७)। 'बृहस्पति' को यज्ञोपवीत-युक्त और दो हाथों में पुस्तक और अक्ष-माला लिए ध्यान करे। 'शुक्र' का भी ध्यान ऐसा ही करे। शनि को काना और खञ्ज ध्यान करे (८८)। 'राहु' को विकृत, क्रूर-कर्मा मस्तक के रूप में और 'केतु' को, विकृत, क्रूर-कर्मा धड़ के रूप में ध्यान करे।

उत्तम साधक उक्त प्रकार नौ ग्रहों का ध्यानपूर्वक पूजन कर अष्ट-दलों में पूर्वादि-क्रम से इन्द्रादि दिक्-पालों की पूजा करे। १. पीत-वर्ण 'इन्द्र' को सहस्राक्ष, ऐरावतारूढ़, पीले रेशम वस्त्र पहने, हाथ में वज्र लिए ध्यान कर उनकी पूजा करे। २. रक्त-वर्ण 'अग्नि' को छागारूढ़, हाथ में शक्ति लिए और ३. कृष्ण-वर्ण 'यम' को महिषारूढ़, हाथ में दण्ड लिए ध्यान करे। ४. श्याम-वर्ण 'निऋति' को अश्वारूढ़ खड्ग लिए; ५. शुक्ल-वर्ण 'व ण' को मकरारूढ़, पाश लिए; ६ कृष्ण-वर्ण 'वायु' को मृगारूढ़, अंकुश लिए; ७. सुवर्ण-वर्ण 'कुबेर' को रत्न-सिंहासनारूढ़, यक्षों द्वारा स्तुत, पाश व अंकुश लिए; ८. शुक्ल-वर्ण 'ईशान' को वृषारूढ़, व्याघ्र-चर्म पहने, त्रिशूल व वर-मुद्रा लिए ध्यान करे (८६-६५)।

इन सबकी ध्यानपूर्वक यथा-क्रम पूजा कर भूपुर के बाहर ऊर्ध्व और अधो वृत्त में क्रमशः 'ब्रह्मा' और 'अनन्त' की पूजा करे। तब द्वार-देवताओं को पूजा करे (६६)—१ उग्र, २ भीम, ३ प्रचण्ड, ४ ईश—ये चार पूर्व-द्वारी; १ जयन्त, २ क्षेत्रपाल, ३ नकुलेश, ४ वृहत्-शिरा—ये दक्षिण-द्वारी; १ वृक, २ अश्व, ३ आनन्द, ४ दुर्जय—ये पश्चिम-द्वारी; १ त्रिशिरा, २ पुरुजित, ३ भीमनाद, ४ महादेव—ये उत्तर-द्वारी हैं। ये सभी द्वार-देवता शस्त्रधारी हैं (६७-६८)।

हे सुव्रते ! ब्रह्मा और अनन्त के ध्यान सुनो :-

रक्तोत्पल-निभो ब्रह्मा चतुरास्यश्चतुर्भुजः। हंसारूढ़ो वराभीति-माला-पुस्तक-पाणिकः॥

अर्थात् 'ब्रह्मा' रक्त-कमल के समान प्रभावाले, चतुर्मुख, चतुर्भुज, हंस पर आसीन हैं और हाथों में वर, अभय, अक्षमाला व पुस्तक लिए हैं (६६-१००)।

हिम-कुन्देन्दु-धवलः सहस्राक्षः सहस्र-पात्। सहस्र-पाणि-वदनो ध्येयोऽनन्तः सुरासुरैः॥

अर्थात् 'अनन्त' हिम, कुन्द, पुष्प और चन्द्रमा के समान उज्ज्वल वर्णवाले, सहस्र-नेत्र, सहस्र-चरण, सहस्र-मुख हैं और सुर व असुरों द्वारा ध्येय हैं (१०१)।

हे प्रिये ! ध्यान, पूजा-विधि और यन्त्र का वर्णन हो चुका। अब 'वास्तु' से लेकर 'अनन्त' तक सब देवों के मन्त्र भी सुनो (१०२)—

१ वास्तु-मन्त्र—क्षौं क्षीं क्षूं क्षौं क्षौं क्षः।
२ सूर्य-मन्त्र—ॐ ह्रीं तिग्म-रश्मे आरोग्यदाय स्वाहा
३ सोम-मन्त्र—क्लीं ह्रीं ऐं अमृत-कराऽमृतं प्लावय प्लावय स्वाहा
४ मङ्गल-मन्त्र—ऐं ह्रां ह्रीं सर्व-दुष्टान् नाशय नाशय स्वाहा

५ बुद्ध-मन्त्र—**ह्रीं श्रीं सौम्य सर्वान् कामान् पूरय स्वाहा**

६ वृहस्पति-मन्त्र—**ॐ ऐं ॐ सुर-गुरो अभीष्टं यच्छ यच्छ स्वाहा**

७ शुक्र-मन्त्र—**शां शीं शूं शैं शौं शः**

८ शनि-मन्त्र—**हां हां हीं हीं सर्व-शत्रून् विद्रावय विद्रावय मार्तण्ड-सूनवे नमः**

९ राहु-मन्त्र—**रां ह्रौं ह्रौं ह्रीं सोम-शत्रो शत्रून् विध्वंसय विध्वंसय राहवे नमः**

१० केतु-मन्त्र—**क्रूं ह्रूं क्रैं केतवे स्वाहा**

११ दश-दिक्पाल-मन्त्र—**१ लं इन्द्राय नमः, २ रं अग्नये नमः, ३ मृं यमाय नमः, ४ स्त्रूं निर्ऋतये नमः, ५ वं वरुणाय नमः, ६ यं वायवे नमः, ७ क्षं कुबेराय नमः, ८ हौं ईशानाय नमः, ९ ब्रीं ब्रह्मणे नमः, १० अं अनन्ताय नमः।** (१०३-१३)

अन्य परिवार-देवताओं के नाम ही उनके मन्त्र हैं। जहाँ मन्त्र नहीं बताया है, वहाँ नाम ही मन्त्र होता है (११४)। जिस मन्त्र के अन्त में '**नमः**' लगा है, उसमें '**नमः**' न जोड़े। इसी प्रकार स्वाहान्त मन्त्र में '**स्वाहा**' शब्द न जोड़े (११५)।

नौ ग्रहों और दश दिक्पालों को उनके वर्ण के अनुरूप रङ्ग के पुष्प, वस्त्र व आभूषण दे अन्यथा वे प्रसन्न नहीं होते (११६)।

ज्ञानी व्यक्ति कुशण्डिकोक्त विधि से वह्नि-स्थापन कर विविध पुष्पों व समिधा द्वारा होम करे (११७)। शान्ति और पुष्टि-कर्मों में '**वरद**' नामक अग्नि, प्रतिष्ठा-कर्म में '**लोहिताक्ष**' नामक और क्रूर कर्मों अर्थात् अभिचारादि म '**शत्रुहा**' नामक अग्नि में होम करे (११८)।

हे महेशानि! शान्ति, पुष्टि व क्रूर कर्मों में 'ग्रह-याग' करने से अभीष्ट फल मिलता है (११९)। प्रतिष्ठा-कार्यों में जैसे देव-पूजा और पितृ-तर्पण अर्थात् आभ्युदयिक श्राद्ध कर्त्तव्य हैं वैसे ही वास्तु-याग और ग्रह-याग में भी करे (१२०)। यदि एक ही दिन दो-तीन प्रतिष्ठा व वास्तु-यागादि करने हों, तो उन सब कार्यों के लिए एक बार देव-पूजन, पितृ-श्राद्ध और अग्नि-संस्कार करे (१२१)।

फल चाहनेवाले व्यक्ति जलाशय, गृह, उपवन, सेतु, संक्रम, वृक्ष, वाहन और अन्य दूसरी देय वस्तु को '**प्रोक्षण**' किये बिना देवता को न दे (१२२-१२३)। सभी काम्य कर्मों में पूरा फल पाने के लिए विधि-वाक्य के अनुसार '**सङ्कल्प**' करे (१२४)। शोधित और अर्चित द्रव्य का नामोल्लेख कर 'सम्प्रदाय' अर्थात् जिसे दान देना है, उसके नाम का उच्चारण कर दान करने से ठीक फल मिलता है (१२५)।

जलाशय, गृह, उपवन, सेतु, संक्रम और वृक्ष के '**प्रोक्षण-मन्त्र**' कहते हैं। इन सभी मन्त्रों का प्रयोग '**ब्रह्म-विद्या**' अर्थात् गायत्री के साथ करे (१२६)।

१ जलाशय-प्रोक्षण-मन्त्र—'**जीवनाधार! जीवानं जीवन-प्रद! वारुण! प्रोक्षणे तव तृप्यन्तु जल-चर-भूचर-खेचराः॥**' अर्थात् हे जलाधार! हे प्राणियों के जीवन-दाता! हे वारुण! तुम्हारे प्रोक्षण से जल-चर, भू-चर और खेचर सभी तृप्त हों (१२७)।

२ गृह-प्रोक्षण-मन्त्र—'**तृण-काष्ठादि-सम्भूत वासेय! ब्रह्मणः प्रिय! त्वां प्रोक्षयामि तोयेन प्रीतये भव सर्वदा॥**' अर्थात् हे तृण-काष्ठादि-सम्भूत रहने योग्य गृह! हे ब्रह्मा के प्रिय! तुम्हें जल से प्रोक्षित करता हूँ। सदा मुझे प्रसन्न रखो (१२८)। ईंट का गृह हो तो 'इष्टकादि-सम्भूत' कहे (१२९)।

३ उपवन-प्रोक्षण-मन्त्र—'**फलैः पत्रैश्च शाखाद्यैश्छायाभिश्च प्रियङ्कराः। यच्छन्तु मेऽखिलान् कामान् प्रोक्षितास्तीर्थ-वारिभिः।**' अर्थात् फल, पत्तों, डालियों और छायाओं द्वारा प्रसन्न करनेवाले हे उपवन! तीर्थ-

जल से प्रोक्षित होकर मेरी सभी इच्छाओं को पूरा करो (१३०)।

४ सेतु-प्रोक्षण-मन्त्र—'**सेतुस्त्वं भव-सिन्धूनां पारदः पथिक-प्रियः। मया संप्रोक्षितः सेतो ! यथोक्त-फलदो भव ॥**' अर्थात् हे सेतु ! तुम ससार-सागर से पार करनेवाले, पथिकों के प्रिय हो। मुझसे प्रोक्षित होकर निर्दिष्ट फल-दाता बनो (१३१)।

५ संक्रम-प्रोक्षण-मन्त्र—'**संक्रम ! त्वां प्रोक्षयामि लोकानां संक्रमं यथा। ददासीह तथा स्वर्गे संक्रमो मे प्रदीयताम् ॥**' अर्थात् हे संक्रम ! तुम्हें प्रोक्षित करता हूँ। इस संसार में जैसे लोगों को पार करते हो, वैसे ही मुझे स्वर्ग में गति प्रदान करो (१३२)।

हे प्रिये ! उपवन-प्रोक्षण-मन्त्र का ही प्रयोग वृक्ष के संस्कार में करे (१३३)। हे अम्बिके ! सर्व-साधारण द्रव्य के प्रोक्षण का मन्त्र है—**ॐ वं फट्** (१३४)।

'**वाहन**' यदि स्नान कराने योग्य हो, तो उसे गायत्री मन्त्र से स्नान कराये; स्नान कराने योग्य न हो, तो कुशाग्र से अर्घ्य-जल द्वारा उसे शोधित करे (१३५)। प्राण-प्रतिष्ठा कर उस '**वाहन**' का नामोल्लेख कर, पूजाकर और सजाकर उसे देवता को प्रदान करे (१३६)।

जलाशय की प्रतिष्ठा में जल-जन्तु के अधिपति '**वरुण देव**', गृह-प्रतिष्ठा में '**ब्रह्मा प्रजापति**' और उपवन, सेतु, संक्रम-प्रतिष्ठा में त्रिभुवन-रक्षक सर्वात्मा, सर्वज्ञ प्रभु '**विष्णु**' पूजनीय हैं (१३७)।

देवी ने कहा—विविध विधान आपने बताये हैं, किन्तु कर्मों का '**क्रम**' नहीं बताया है (१३८)। क्रम-रहित कर्म बहुत प्रयत्न के साथ करने पर भी पूरा फल नहीं देता (१३९)।

श्री सदाशिव ने कहा—हे परमेश्वरि ! माता के समान हित करनेवाली ! तुमने क्रमानुसार कार्य करने की जो बात पूछी है, वह लोगों के लिए बड़ी मङ्गलकारी है (१४०)। हे देवि ! '**वास्तु-याग**' से लेकर उक्त सभी कार्यों के अनुष्ठान का क्रम मैं बताता हूँ (१४१)।

पूर्व-दिन में आहार-संयम कर अगले दिन प्रातः स्नान करे। फिर पूर्वाह्ण-कर्म सम्पन्न कर गुरु और नारायण को पूजा करे (१४२)। तब अपनो कामना का उल्लेख करते हुए विधिपूर्वक सङ्कल्प कर गणेशादि की पूजा करे (१४३)। गणेश का ध्यान—

बन्धूकाभं त्रिनेत्रं द्विरद-वर-मुखं नाग-यज्ञोपवीतं,
शंखं चक्रं कृपाणं विमल-सरसिजं हस्त-पद्मैर्दधानम् ॥
उद्यद्-बालेन्दु-मौलिं दिनकर-किरणोद्दीप्त-वस्त्राङ्ग-शोभं,
नानालङ्कार-युक्तं भजत गण-पतिं रक्त-पद्मोपविष्टम् ॥

अर्थात् बन्धूक पुष्प के समान रक्त-वर्ण, त्रिनेत्र, गजेन्द्र-वदन, सर्प-मय-यज्ञोपवीत-धारी, चार कर-कमलों में शङ्ख, चक्र, खड्ग और खिला हुआ कमल लिए, उदोयमान बाल-चन्द्र से शोभित मस्तक, सूर्य की किरणों के समान उज्ज्वल वस्त्र और विविध आभूषणों से शोभित शरीर, रक्त कमल पर विराजमान गणपति का भजन करता हूँ (१४४)।

इस प्रकार गणेश का ध्यान कर यथा-शक्ति उनकी पूजा करे। फिर ब्रह्मा-सरस्वती और विष्णु-लक्ष्मी की पूजा करे (१४५)। शिव, नव-दुर्गा, षोडश-मातृका और घृत-धारा से वसु-गण की पूजा कर आभ्युदयिक करे (१४६)। तब उक्त विधि के अनुसार वास्तु-राक्षस के मण्डल को बनाकर उसमें सपरिवार वास्तु-देव को पूजा करे (१४७)। फिर स्थण्डिल में पूर्ववत् अर्थात् कुशण्डिकोक्त विधि से अग्नि-संस्कार व धारा-होम तक के कर्म समाप्त

कर वास्तु-होम आरम्भ करे (१४८)। वास्तु को, वास्तु के परिवार-गण को और पूजित देवतादि को यथा-शक्ति आहुति देकर कर्म समाप्त करे (१५६)।

वास्तु-याग में पृथक् भाव से कर्तव्य यह **'क्रम'** तुमसे मैंने कहा। हे प्रिये! ग्रह-यज्ञ में भी यही **'क्रम'** विहित है। ग्रह-याग में ग्रहों की प्रधानता होने से अङ्ग-भाव में उनकी पूजा मना है, अतः सङ्कल्प के बाद अङ्ग-भाव से वास्तु-दैत्य की पूजा कर्तव्य है—यह विशेषता है (१५०-५१)। गणेशादि देव-पूजादि सभी कर्म वास्तु-याग के विधान के अनुसार होंगे। ग्रहादि के यन्त्र, मन्त्र और ध्यान पहले ही बताए हैं (१५२)। प्रसङ्ग-क्रम से ग्रह-याग और वास्तु-याग का **'क्रम'** कहा जायगा।

अब पूर्व-प्रस्तावित कर्मों में से **'कूप-संस्कार'** की विधि कहता हूँ (१५३)। यथा-विधि सङ्कल्प कर मण्डल पर स्थापित घट या शालग्राम के मध्य में, जिसमें भी रुचि हो, वास्तु-पूजा करे (१५४)। तब गणपति, ब्रह्मा-सरस्वती, हरि-लक्ष्मी, शिव-दुर्गा की पूजा करे और नौ ग्रह, दश दिक्-पाल, मातृ-गण एवं अष्टवसु भी पूजनीय हैं। फिर पितृ-कार्य करे। **'कूप-संस्कार'** में **'वरुण'** की प्रधानता है, अतः उनकी पूजा विशेष रूप से करे (१५५-५६)। यथा-शक्ति विविध उपहारों से **'वरुण'** की पूजा कर यथा-विधि संस्कृत अग्नि में **'वरुण देवता' के लिए होम करे।** पूजित देव-गण में से प्रत्येक को आहुति देकर पूर्णाहुति तक का सारा कार्य कर होम समाप्त करे (१५७-५८)। तब ध्वज-पताका-माल्य-चन्दन-सिन्दूर से चर्चित उत्तम जलाशय को पूर्वोक्त प्रोक्षण-मन्त्र से प्रोक्षित करे (१५६)। फिर अपनी कामना-पूर्ति के लिए या देवता की प्रीति के लिए सभी समयों में प्राणियों को प्रसन्न करनेवाले कूपादि जलाशय को उत्सर्ग करे (१६०)। श्रेष्ठ साधक हाथ जोड़कर प्रार्थना करे कि—

सुप्रीयन्तां सर्व-भूता नभो-भू-तोय-वासिनः, उत्सृष्टं सर्व-भूतेभ्यो मयैतज्जलमुत्तमम्।
तृप्यन्तु सर्व-भूतानि स्नान-पानावगाहनैः, सामान्यं सर्व-जोवेभ्यो मया दत्तमिदं जलम्।
ये च केचिद् विपद्यन्ते स्व-स्व-कर्म-विपाकतः, तत्-पापैर्न प्रलिप्येऽहं सफलास्तु मम क्रिया॥

अर्थात् खेचर, भूचर, जलचर—सभी प्राणी प्रसन्न हों, सभी प्राणियों के लिए मैं इस उत्तम जल को उत्सर्ग करता हूँ। सभी प्राणी स्नान, अङ्ग-प्रक्षालनादि, पान और अवगाहन कर तृप्त हों। मैं इस जल को सामान्यतः सब जीवों के लिए दान करता हूँ अर्थात् मैं इस भाव से दान करता हूँ कि इस पर सभी जोवों का समान अधिकार हो। अपने-अपने कर्म-फल से जो कोई व्यक्ति इसमें देह-त्याग करें, उसके पाप में मैं लिप्त न होऊँ। मेरी क्रिया सफल हो।

इसके बाद दक्षिणा तक कार्य कर शान्ति-कर्म करने के बाद ब्राह्मण, कौल और भूखे दरिद्र लोगों को भोजन कराए। हे शिवे! सभी जलाशयों को प्रतिष्ठा का यही **'क्रम'** है (१६१-६५)। तडागादि की प्रतिष्ठा में नाग, स्तम्भ और जलचर का भी निर्माण करना होता है (१६६)। मत्स्य, मण्डूक, मकर और कूर्म—ये सभी जल-जन्तु या जलचर कर्ता को सम्पत्ति के अनुसार धातु के बनवाये (१६७)। मत्स्य-मिथुन और मण्डूक-मिथुन स्वर्ण के, मकर-मिथुन रजत के, कूर्म-मिथुन ताम्र या पोतल के बनवाये (१६८)। इन सब जलचरों के सहित तडाग, दीर्घिका, या सागर का उत्सर्ग कर 'सुप्रीयन्तां०' इत्यादि श्लोकों से प्रार्थना करे। फिर नाग-पूजा करे (१६६)—

१ अनन्त, २ वासुकि, ३ पद्म, ४ महा-पद्म, ५ तक्षक, ६ कुलीर, ७ कर्कट, ८ शङ्ख—ये आठ नाग जल के रक्षक हैं (१७०)। आठ अश्वत्थ के पत्तों पर इन नागों के नाम लिखकर प्रणव और गायत्री का स्मरण करते हुए उन पत्तों को घट के मध्य में छोड़ दे (१७१)। चन्द्र और सूर्य को साक्षी कर घट के भीतर विलोड़न कर एक

पत्ता बाहर निकाले। उस पत्ते में जिस नाग का नाम हो, उसी को जल का रक्षक बनाए (१७२)। तैल, हरिद्रा से लिप्त लकड़ी का एक सीधा, बीस हाथ लम्बा शुभ स्तम्भ लाकर व्याहृति और प्रणव का पाठ करते हुए उसे तीर्थ-जल से स्नान कराये। उस स्नापित स्तम्भ में **ह्री, श्री, क्षमा** और **शान्ति** के साथ नाग की पूजा करे (१७३-७४)। फिर प्रार्थना करे—

नाग ! त्वं विष्णु-शय्याऽसि महादेव-विभूषणम्। स्तम्भमेनमधिष्ठाय जल-रक्षां कुरुष्व मे।

अर्थात् हे नाग ! तुम विष्णु की शय्या और महादेव के अलङ्कार हो। इस स्तम्भ में स्थान बनाकर मेरे जल की रक्षा करो (१७५)।

इसके बाद उस नागाधिष्ठित स्तम्भ को जलाशय के मध्य में स्थापित कर कर्त्ता तडाग की प्रदक्षिणा करे (१७६)। यह स्तम्भ यदि पहले से स्थापित हो, तो नाग की पूजा घट में कर उस घट का जल तड़ाग में छोड़कर शेष कर्म समाप्त करे (१७७)।

इसी प्रकार गृह-प्रतिष्ठा में भी सङ्कल्प कर वास्तु-पूजा से वसु-धारा और आभ्युदयिक तक के कर्म कर वरुण के स्थान पर '**प्रजापति देव**' की विशेष रूप से पूजा करे और प्राजापत्य होम करे (१७८-७९)। पूर्वोक्त मन्त्र से गृह को प्रोक्षित और गन्धादि से अर्पित कर ईशान कोण की ओर मुख कर हाथ जोड़ प्रार्थना करे (१८०)—

प्रजा-पति-पते गेह ! पुष्प-माल्यादि-भूषितः। अस्माकं शुभ-वासाय सर्वथा सुखदो भव ॥

अर्थात् हे प्रजापति-स्वामी के गृह ! तुम पुष्प-माल्यादि से भूषित होकर मेरे शुभ आवास के लिए सब प्रकार से सुखदायक हो (१८१)।

तब दक्षिणा तक कर्म कर शान्ति और आशीर्वाद करे। अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मण, कौल और दरिद्रों को भोजन कराये (१८२)। हे शैलजे ! यदि दूसरे के लिए गृह-प्रतिष्ठा हो, तो सङ्कल्प में '**अमुकस्य वासाय**' अर्थात् 'अमुक (नामोल्लेख करे) के वास के लिए' ये शब्द जोड़ ले।

देवता के लिए निर्मित गृह की प्रतिष्ठा की विधि सुनो (१८३)। उक्त प्रकार गृह-संस्कार कर शंख-तूर्यादि वाद-ध्वनि करते हुए देवता के पास जाकर हाथ जोड़कर प्रार्थना करे (१८४)—

उत्तिष्ठ देव-देवेश ! भक्तानां वाञ्छित-प्रद ! आगत्य जन्म-साफल्यं कुरु मे करुणा-निधे ॥

अर्थात् हे देव-देवेश ! हे भक्त के अभीष्ट को देनेवाले ! हे दयासागर ! उठिये, आकर मेरे जन्म को सफल बनायें (१८५)।

इस प्रकार प्रार्थना कर साधक देवता को गृह के समीप लाकर स्थापन-पूर्वक उसके सम्मुख भाग में वाहन की स्थापना करे (१८६)। गृह के ऊपर त्रिशूल या चक्र स्थापित मन्दिर के ईशान-कोण में पताका-युक्त ध्वजा-रोपण करे (१८७)। चन्द्रातप, क्षुद्र घण्टे, पुष्प-माल्य और आम्र-पल्लवों से गृह को अच्छी तरह सजाकर दिव्य वस्त्र द्वारा आच्छादन करे (१८८)। आगे बताई विधि से विहित द्रव्यों से उत्तराभिमुख स्थापित देव क. स्नान कराये (१८९)—

१. दुग्ध-स्नान—'**ऐं ह्रीं श्रीं मूलं दुग्धेन स्नापयामि त्वां मातेव परिपालय**' अर्थात् दुग्ध से तुम्हें स्नान कराता हूँ, माता के समान मेरा पालन करो—इस मन्त्र से देवता को दूध से स्नान कराए।

२. दधि-स्नान—'**ऐं ह्रीं श्रीं मूलं दध्ना त्वां स्नापयाम्यद्य भव-ताप-हरो भव**' अर्थात् दही से तुम्हें आज स्नान कराता हूँ, संसार के दुःख-हारी बनो—इस मन्त्र से देवता को दही से स्नान कराए।

३. मधु-स्नान—'**ऐं ह्रीं श्रीं मूलं मधुना स्नापितः प्रीतो मामानन्द-मयं कुरु**' अर्थात् मधु से स्नान कर

प्रसन्न हो, मुझे आनन्द-मय करो—इस मन्त्र से देवता को मधु से स्नान कराये।

४. घृत-स्नान—**'ऐं ह्रीं श्रीं मूलं सावित्रीं ॐ देव-प्रियेण हविषा आयुः शुक्रेण तेजसा। स्नानं ते कल्पयामीश! मामरोगं सदा कुरु'** अर्थात् हे ईश! देव-प्रिय, आयु, वीर्य और तेज-स्वरूप घृत से तुम्हें स्नान कराता हूँ, मुझे सदा नीरोग रखो—इस मन्त्र से देवता को घृत से स्नान कराये (१६०-६३)।

५. शर्करा-स्नान—**'ऐं ह्रीं श्रीं मूलं व्याहृतिं गायत्रीं देवेश! शर्करा-तोयैः स्नातो मे यच्छ वांच्छितम्'** अर्थात् हे देवेश! शर्करा-जल से स्नान कर मुझे मेरा अभीष्ट फल प्रदान करो—इस मन्त्र से देवता को शर्करा-जल से स्नान कराये (१६४)।

६. नारिकेल-स्नान—**'ऐं ह्रीं श्रीं मूलं गायत्रीं वं विधात्रा निर्मितैर्दिव्यैः प्रियैः स्निग्धैरलौकिकैः, नारिकेलोदकैः स्नानं कल्पयामि नमोऽस्तु ते'** अर्थात् ब्रह्मा द्वारा निर्मित दिव्य, प्रिय, स्निग्ध और अलौकिक नारिकेल-जल से तुम्हें स्नान कराता हूँ, तुम्हें नमस्कार है—इस मन्त्र से देवता को नारिकेल-जल से स्नान कराये।

७. इक्षु-स्नान—**'गायत्रीं मूलं इक्षुजैः रसैः स्नापयामि'** मन्त्र से ईख के रस से देवता को स्नान कराये।

८. कर्पूरा[illegible] स्नान—**'वलीं ॐ गायत्रीं मूलं कर्पूरागुरु-काश्मीर-, स्तूरी-चन्दनोदकैः, सुस्नातो भव सुप्रीतो भुक्ति-मुक्ती प्रय[illegible]'** अर्थात् कपूर, अगुरु, कुंकुम कस्तूरी और चन्दन-युक्त जल से सुस्नात होकर प्रसन्न हों और मुझे भोग व मोक्ष प्रदान करें—इस मन्त्र से उक्त प्रकार सुगन्धित जल से देवता को स्नान कराये (१६५-६७)।

इस प्रकार आठ कलशों से स्नान कराकर जगत्पति को मन्दिर के भीतर लाकर आसन के ऊपर स्थापित करे (१६८)। देव-प्रतिमा यदि स्नान कराने योग्य न हो, तो यन्त्र में या देवता के मूल-मन्त्र में या शालग्राम शिला में स्नान कराकर पूजा करे (१६६)। दुग्धादि से उक्त प्रकार स्नान कराने में यदि असमर्थ हो, तो यथा-शक्ति शुद्ध जल से भरे हुए आठ, सात या पाँच कलश द्वारा स्नान कराये (२००)। चक्र-पूजा के प्रसङ्ग में कलश का परिमाण बताया है, आगमोक्त सभी कर्मों में उसी प्रकार का घट विहित है (२०१)।

इसके बाद अपनी-अपनी पूजा-विधि के अनुसार महादेव की पूजा करे। उस पूजा के सभी उपचारों को बताता हूँ, हे परात्परे! सुनो (२०२)—१. **आसन**, २, **स्वागत**, ३. **पाद्य**, ४. **अर्घ्य**, ५. **आचमनीय**, ६. **मधुपर्क**, ७. **पुनः आचमनीय**, ८. **स्नानीय**, ९. **वस्त्र**, १०. **भूषण**, ११. **गन्ध**, १२. **पुष्प**, १३. **धूप**, १४. **दीप**, १५. **नैवेद्य** और १६. **वन्दना**—ये **षोडश उपचार** देव-पूजा में कहे हैं (२०३-४)। १. **पाद्य**, २. **अर्घ्य**, ३. **आचमन**, ४. **मधुपर्क**, ५. **पुनः आचमन**, ६. **गन्ध**, ७. **पुष्प**, ८. **धूप**, ९. **दीप**, १०. **नैवेद्य**—ये **'दशोपचार'** माने गए हैं (२०५)। १. **गन्ध**, २. **पुष्प**, ३. **धूप**, ४. **दीप** और ५. **नैवेद्य**—ये **'पञ्चोपचार'** कहे हैं (२०६)। **'फट्'** मन्त्र से अर्घ्य-पात्र के जल से अभिषेक कर धेनु-मुद्रा दिखाने के बाद गन्ध-पुष्प से पूजा कर देय द्रव्य का नामोल्लेख करे (२०७)। आगे बताए मन्त्र और मूल-मन्त्र का स्मरण कर चतुर्थी विभक्ति-युक्त देव-नाम का उच्चारण कर त्यागार्थ वचन का पाठ करे (२०८)। देवता के लिए देय सभी वस्तुओं के निवेदन को यही विधि है; इसी के अनुसार देवता को द्रव्य प्रदान करे (२०६)।

आद्या की पूजा-विधि में पाद्य, अर्घ्यादि देने और कारणादि के अर्पण करने का विधि बताई जा चुकी है (२१०)। वहाँ जो मन्त्र नहीं बताए हैं, उन्हें यहाँ बताता हूँ, सुनो। आसनादि उपचारों के देने में इन्हीं का प्रयोग करे (२११)—

१. आसन—**'सर्व-भूतान्तरस्थाय सर्व-भूतान्तरात्मने कल्पयाम्युपवेशार्थमासनं ते नमो' नमः** अर्थात् सब प्राणियों के अन्तर में स्थित और सब प्राणियों के अन्तरात्मा-स्वरूप तुम्हें बैठने हेतु आसन देता हूँ। तुम्हें

बारम्बार नमस्कार (२१२)।

२ स्वागत—हाथ जोड़कर स्वागत की प्रार्थना करे : **'देवाः स्वाभीष्ट-सिद्धयर्थं यस्य वाञ्छन्ति दर्शनं, सुस्वागतं स्वागतं मे तस्मै ते परमात्मने। अद्य मे सफल जन्म जीवनं सफलाः क्रियाः, स्वागतं यत् त्वया तन्मे तपसां फलमागतम्'** अर्थात् सभी देवता अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए जिनके दर्शन की चाह करते हैं, उन तुम परमात्मा का मैं स्वागत करता हूँ। आज मेरा जन्म, जीवन और सारा कर्म सफल है क्योंकि तुम्हारे स्वागत के रूप में मेरी तपस्या का फल ही मुझे मिला है (२१३-१५)।

३. पाद्य—विहित पाद्य जल को लेकर कहे : **'यत्पाद-जल-संस्पर्शाच्छुद्धिमाप जगत्-त्रयं, तत्-पादाब्ज-प्रोक्षणार्थं पाद्यं ते कल्पयाम्यहम्'** अर्थात् जिन चरणों के जल के स्पर्श से तीनों लोक शुद्ध होते हैं, उन तुम्हारे चरणों के धोने हेतु मैं तुम्हें पाद्य देता हूँ (२१६-१७)।

४. अर्घ्य—**परमानन्द-सन्दोहो जायते यत्-प्रसादतः, तस्मै सर्वात्म-भूताय आनन्दार्घ्यं समर्पये'** अर्थात् जिनकी प्रसन्नता से परमानन्द-परम्परा होती है, सबकी आत्मा-स्वरूप उन तुमको मैं अर्घ्य देता हूँ (२१८)।

५. आचमनीय—प्रोक्षित और अर्चित जाती-लवङ्ग-कक्कोल से सुगन्धित जल या केवल शुद्ध जल लेकर कहे : **'यदुच्छिष्टमुपस्पृष्टं शुद्धिमेत्यखिलं जगत्, तस्मै मुखारविन्दाय आचामं कल्पयामि ते'** अर्थात् जिसके जूठे के स्पर्श से सारा जगत् शुद्धि को प्राप्त करता है, तुम्हारे उसी मुख-कमल के लिए मैं आचमन देता हूँ (२१९-२०)।

६. मधुपर्क—मधुपर्क को लेकर भक्ति-पूर्वक उसे आगे के मन्त्र से अर्पित करे : **'ताप-त्रय-विनाशार्थम-खण्डानन्द-हेतवे, मधुपर्कं ददाम्यद्य प्रसीद परमेश्वर'** अर्थात् तीनों दुःखों के नाश के लिए अखण्डानन्द के कारण-स्वरूप तुम्हें मधुपर्क देता हूँ। हे परमेश्वर, प्रसन्न होओ (२२१-२२)।

७. पुनराचमनीय—**'अशुचिः शुचितामेति यत्-स्पृष्ट-स्पर्श-मात्रतः, तस्मिंस्ते वदनाम्भोजे पुनराचम-नीयकम्'** अर्थात् जिससे छुए के स्पर्श मात्र से अपवित्र भी पवित्र हो जाता है, तुम्हारे उसी मुख-कमल में पुनः आचमन अर्पित है (२२३)।

८. स्नानीय—स्नान हेतु पूर्ववत् प्रोक्षित और अर्चित जल देवता के सामने रखकर कहे : **'यत्-तेजसा जगद् व्याप्तं यतो जातमिदं जगत्, तस्मै ते जगदाधार ! स्नानार्थं तोयमर्पये'** अर्थात् जिनके तेज से जगत् व्याप्त है, जिनसे यह जगत् उत्पन्न हुआ है, हे जगदाधार ! उन्हीं तुमको स्नान के लिए जल देता हूँ (२२४-२५)।

स्नान, वस्त्र और नैवेद्य देने के बाद आचमन देना चाहिए। अन्य द्रव्यों के देने के बाद एक-एक बार जल छोड़ना चाहिए (२२६)।

९. वस्त्र—दो वस्त्र लेकर पूर्ववत् शोधित कर दोनों हाथों में उन्हें उठाकर कहे : **सर्वावरण-हीनाय माया-प्रच्छन्न-तेजसे, वाससी परिधानाय कल्पयामि नमोऽस्तु ते'** अर्थात् सब प्रकार के आवरणों से रहित, अविद्या से छिपे हुए तेजवाले तुम्हारे लिए उत्तरीय के साथ वस्त्र देता हूँ, तुम्हें नमस्कार (२२७-२८)।

१०. आभूषण—स्वर्ण, रौप्य आदि के बने विविध आभूषणों का प्रोक्षण और अर्चन कर कहे : **'विश्वा-भरण-भूताय विश्व-शोभैक-योनये, माया-विग्रह-भूषार्थं भूषणानि समर्पये'** अर्थात् विश्व के आभूषण-स्वरूप एवं विश्व को शोभा के एकमात्र कारण, तुम्हारे माया-मय शरीर के सजाने हेतु आभूषण देता हूँ (२२९-३०)।

११ गन्ध—**'गन्ध-तन्मात्रया सृष्टा येन गन्ध-धरा धरा, तस्मै परात्मने तुभ्यं परमं गन्धमर्पये'** अर्थात् जिनके द्वारा गन्ध-तन्मात्रा से गन्धवती पृथ्वी रची गई है, उन्हीं परात्मा-स्वरूप तुम्हें परम गन्ध देता हूँ (२३१)।

१२ पुष्प—**'पुष्पं मनोहरं रम्यं सुगन्धं देव-निर्मितं, मया निवेदितं भक्त्या पुष्पमेतत् प्रगृह्यताम्'**

अर्थात् मनोहर, सुन्दर, सुगन्धित, देवों द्वारा बनाए इस पुष्प को भक्तिपूर्वक देता हूँ, इसे ग्रहण करो (२३२)।

१३ धूप—'**वनस्पति-रसो दिव्यो गन्धाढ्यः सुमनोहरः आघ्रेयः सर्व-भूतानां धूपो घ्राणाय तेऽर्प्यते**' अर्थात् वनस्पति का दिव्य रस, गन्ध-युक्त, बहुत मनोहर, सभी प्राणियों के सूंघने योग्य धूप तुम्हारे सूंघने के लिए देता हूँ (२३३)।

१४ दीप—'**सुप्रकाशो महा-दीप्तः सर्वतस्तिमिरापहः, स-बाह्याभ्यन्तर-ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्**' अर्थात् सुन्दर प्रकाशवाला, अति दीप्ति-शाली, सभी दिशाओं का अँधेरा दूर करनेवाला, बाह्य और अन्तर को ज्योतिर्मय करनेवाला यह दीपक ग्रहण करो (२३४)।

१५ नैवेद्य—'**नैवेद्यं स्वादु-संयुक्तं नाना-भक्ष्य-समन्वितं, निवेदयामि भक्त्येदं जुषाण परमेश्वर**' अर्थात् स्वादिष्ट, विविध खाने योग्य वस्तुओं से युक्त यह नैवेद्य भक्ति के साथ देता हूँ। हे परमेश्वर, इसे ग्रहण करो (२३५)।

आचमन—'[illegible]**सलिलं देव ! कर्पूरादि-सु[illegible]सितं, सर्व-तृप्ति-करं स्वच्छमर्पयामि** नमोऽस्तु ते' अर्थात् हे देव ! [illegible] गन्धित, पूर्ण तृप्ति-दायक, निर्मल जल पीने के लिए देता हूँ। तुम्हें नमस्कार (२३६)।

१६ ताम्बू[illegible]।—'**कर्पूर-[illegible] लवंगैलादिभिर्युतं ताम्बूलं निवेदयामि**' अर्थात् कपूर, कत्था लौंग आदि से युक्त पान देता हूँ।

अब पुनः आचमनीय देकर वन्दना करे (२३७)। उपचार का आधार देते समय '**साधारं**' अर्थात् तैज-साधार-सहित इत्यादि यथा-सम्भव कहकर द्रव्य का नाम ले या उस आधार का नाम लेकर उसे अलग से प्रदान करे (२३८)। इस प्रकार पूजित देवता को तीन पुष्पाञ्जलियाँ देकर आच्छादन-युक्त गृह का प्रोक्षण कर हाथ जोड़कर निम्न मन्त्र पढ़े (२३९)—

गेह ! त्वं सर्व-लोकानां पूज्यः पुण्य-यशः-प्रदः, देवता-स्थिति-दानेषु सुमेरु-सदृशो भव।
त्वं कैलासश्च वैकुण्ठस्त्वं ब्रह्म-भवनं गृह। यत् त्वया विधृतो देवस्तस्मात् त्वं सुर-वन्दितः।
यस्य कुक्षौ जगत् सर्वं वरीवर्ति चराचरम्, माया-विधृत-देहस्य तस्य मूर्तेर्विधारणात्।
देव-मातृ-समस्त्वं हि सर्व-तीर्थ-मयस्तथा, सर्व-काम-प्रदो भूत्वा शान्तिं मे कुरु ते नमः॥

अर्थात् हे गृह ! तुम सब लोकों के पूज्य, पुण्य और यश-दाता देवता को स्थिति देकर सुमेरु के समान बनो (२४०)। हे गृह ! तुम कैलास हो, तुम वैकुण्ठ हो, तुम ब्रह्म-भवन हो ; क्योंकि तुम देवता को धारण करते हो, इससे देवता तुम्हारी वन्दना करते हैं (२४१)। जिनके पेट में सारा जगत् है, माया से शरीर धारण करने-वाले उसी ब्रह्म की मूर्ति को धारण करने से तुम देव-माता के समान हो और सभी तीर्थों से युक्त हो। तुम सब कामनाओं की पूर्ति-कर्ता होकर मुझे शान्ति दो, तुम्हें नमस्कार है (२४२-४३)।

गृह को तीन बार नमस्कार कर साधक अपनी अभिलाषा-पूर्ति के लिए चक्रादि-युक्त उस गृह को निवेदित करे (२४४)।

विश्वावासाय विश्वाय गृहं ते विनिवेदितं, अङ्गीकुरु महेशान ! कृपया सन्निधीयताम्।

अर्थात् विश्वावास-स्वरूप तुम्हें रहने के लिए यह गृह निवेदित करता हूँ। हे महेशान ! इसे गृहण करें और कृपया इसमें सन्निहित हों (२४५)।

इस प्रकार गृह को अर्पण कर देवता के लिए दक्षिणा देकर शङ्ख, तूर्यादि की ध्वनि करते हुए वेदी के

ऊपर देव-स्थापन करे (२४६)। देवता के दोनों पैर छूकर—**'मूलं स्थां स्थीं स्थिरोभव वासस्ते कल्पितो मया'** अर्थात् 'तुम्हारे आवास को मैंने बनाया है, इसमें स्थिर हों', इस मन्त्र से देवता को स्थिर कर पुनः गृह की प्रार्थना करे (२४७)—

गृह ! देव-निवासाय सर्वथा प्रीतिदो भव, उत्सृष्टे त्वयि मे लोकाः स्थिराः सन्तु निरामयाः। द्वि-सप्तातीत-पुरुषान् द्वि-सप्तानागतानपि, मां च मे परिवारांश्च देव-धाम्नि निवासय। यजनात् सर्व-यज्ञानां सर्व-तीर्थ-निषेवणात्, यत्-फलं तत्-फलं मेऽद्य जायतां त्वत्-प्रसादतः। यावत् वसुन्धरा तिष्ठेत् यावदेते धरा-धराः, यावद्-दिवा-निशा-नाथौ तावन्मे वर्ततां कुलम्॥

अर्थात् हे गृह ! देव-निवास के लिए सब प्रकार से प्रीति-दायक हो। तुम्हें देने से मेरे लिए सभी लोक पुण्यद हों (२४८)। मेरे पिछले चौदह पुरखों और अगले चौदह वंशजों को, मुझे और मेरे परिवार-जनों को देव-लोक-वासी बनाओ (२४६)। सब यज्ञों और सब तीर्थों के सेवन से जो फल मिलता है, वह फल आज तुम्हारी प्रसन्नता से मुझे मिले (२५०) जब तक पृथ्वी, पर्वत, सूर्य, चन्द्र हैं, तब तक मेरा कुल रहे (२५१)।

इस प्रकार गृह की प्रार्थना कर पुनः देवार्चन कर दर्पणादि अन्य वस्तुएँ और ध्वज प्रदान करे (२५२)। तब देवता के योग्य वाहन दान करे। महादेव को **'वृषभ'** का दान देकर हाथ जोड़कर उसकी प्रार्थना करे (२५३)—

वृषभ ! त्वं महा-कायस्तीक्ष्ण-शृङ्गोऽरि-घातकः, पृष्ठे वहसि देवेशं पूज्योऽसि त्रिदशैरपि। क्षुरेषु सर्व-तीर्थानि रोम्नि वेदाः सनातनाः, निगमागम-तन्त्राणि दशनाग्रे वसन्ति ते। त्वयि दत्ते महा-भाग ! सुप्रीतः पार्वतो-पतिः, वासः ददातु कैलासे त्वं मां पालय सर्वदा।

अर्थात् हे वृषभ ! तुम बड़े शरीरवाले, तेज सींगवाले और शत्रु-घाती हो। तुम देवेश को पीठ पर बैठाते हो, अतः देवों द्वारा भी पूज्य हो (२५४)। तुम्हारे खुरों में सब तीर्थ, रोमों में चारों सनातन वेद और दाँतों के अग्र-भाग में निगमागम तन्त्र रहते हैं (२५५)। हे महा-भाग ! तुम्हारे दिए जाने से पार्वती के पति प्रसन्न होकर कैलास में मुझे आवास दें। तुम सदा मेरा पालन करो (२५६)।

महा-देवो को **'सिंह'** और विष्णु को **'गरुड़'** का दान देकर उन वाहनों की स्तुति क्रमशः जिस प्रकार करे, वह बताता हूँ, सुनो (२५७)—

सुरासुर-नियुद्धेषु महा-बल-पराक्रमः, देवानां जयदो भीमो दनुजानां विनाश-कृत्। सदा देवी-प्रियोऽसि त्वं ब्रह्म-विष्णु-शिव-प्रियः, देव्यै समर्पितो भक्त्या जहि शत्रून्नमोऽस्तु ते॥

अर्थात् हे सिंह ! देवासुर-संग्राम में तुम महा-बली, पराक्रमी हो, देवों को जय-दाता हो, भयङ्कर और असुर-नाशक हो (२५८)। तुम सदा देवों और ब्रह्मा, विष्णु, शिव के प्रिय हो; भक्ति-पूर्वक देवी के लिए अर्पित होकर तुम मेरे सभी शत्रुओं का नाश करो। तुम्हें नमस्कार है (२५६)।

गरुत्मन् ! पतग-श्रेष्ठ ! श्री-पति-प्रीति-दायक !
वज्र-चञ्चो ! तीक्ष्ण-नख ! तव पक्षा हिरण्मयाः।
नमस्तेऽस्तु खगेन्द्राय पक्षिराज ! नमोऽस्तु ते। यथा कर-पुटेन त्वं संस्थितो विष्णु-सन्निधौ। तथा मामरि-दर्पघ्न ! विष्णोरग्रे निवासय। त्वयि प्रीते जगन्नाथः प्रीतः सिद्धिं प्रयच्छति॥

अर्थात् हे गरुत्मन् ! हे पक्षि-राज ! हे नारायण-प्रीति-प्रद ! हे वज्र-चोंच ! हे तीक्ष्ण-नख ! तुम्हारे पङ्ख स्वर्ण-मय हैं। हे खगेन्द्र ! हे पक्षि-राज ! तुम्हें बारम्बार नमस्कार है (२६०)। हे अरि-दर्पघ्न ! तुम जैसे विष्णु के पास हाथ जोड़कर बैठते हो, वैसे ही मुझे भी विष्णु के आगे बैठाओ (२६१)। तुम्हारे प्रसन्न होने पर जगन्नाथ प्रसन्न होकर सिद्धि देते हैं।

देवता के लिए दिए द्रव्यों को दक्षिणा देवता को प्रदान करे (२६२)। इसी प्रकार भक्ति-पूर्वक कर्म-फल भी देवता को प्रदान करे (२६३)। नृत्य, गीत और वाद्य करते-करते बान्धवों के साथ गृह की प्रदक्षिणा कर देवता को नमस्कार कर सभी ब्राह्मणों को भोजन कराये (२६४)।

देव-गृह की प्रतिष्ठा में जो यह क्रम कहा है, यही उपवन, सेतु, संक्रम और वृक्ष की भी प्रतिष्ठा में विहित है (२६५)। विशेष कर इन सभी कर्मों में सनातन विष्णु पूज्य हैं। पूजा, होम और अन्य सभी कर्म गृह-दान की विधि के समान करे (२६६)। अप्रतिष्ठित देवता को गृहादि कुछ भी न दे; प्रतिष्ठित और अर्चित देव के लिए ही पूजा, दान विहित है (२६७)।

अब **'आद्या'** की प्रतिष्ठा का क्रम बताता हूँ, जिसके अनुसार प्रतिष्ठिता देवी शीघ्र ही वांछित फल देती हैं (२६८)। **'आद्या'** की प्रतिष्ठा के दिन साधक स्नान कर शुद्ध हो विधि-वत् सङ्कल्प-पूर्वक वास्तु-पति की पूजा करे (२६९)। ग्रह, दिक्-पाल और गणेशादि-पूजा और पितृ-कर्म (आभ्युदयिक) कर साधक सभी विप्रों के साथ प्रतिमा के पास जाये (२७०)। प्रतिष्ठित गृह में या किसी सुन्दर स्थान में साधक उत्तम प्रतिमा को लाकर पूजा-पूर्वक स्नान कराये (२७१)। पहले भस्म से, फिर वल्मीक की मिट्टी से, तब क्रमशः वराह-दन्त और हस्ति-दन्त की मृत्तिका से स्नान कराये (२७२)। फिर **'पञ्च-कषाय'** और **'त्रि-पत्र'** से स्नान कराये (२७३)। वाट्याल, बेर जामुन, वकुल (मौलसिरी) और शाल्मली—ये पाँच वृक्ष **'पञ्च-कषाय'** कहे गये हैं (२७४)। करवीर, जाती, चम्पक, पद्म और पाटली (गुलाब)–ये **'पञ्च-पुष्प'** कहे हैं (२७५)। बर्बुरा, तुलसी और बिल्व—ये **'त्रि-पत्र'** कहे हैं (२७६)। इन सभी द्रव्यों को जल में मिलाकर स्नान कराना विहित है किन्तु पञ्चामृत और गन्ध-तैल में जल न मिलाये (२७७)। व्याहृति-सहित प्रणव, गायत्री और मूल-मन्त्र का उच्चारण कर अमुक द्रव्य के जल से तुम्हें स्नान कराता हूँ, तुम्हें नमस्कार—यह कहकर स्नान कराये (२७८)। तदनन्तर पूर्वोक्त विधि से दुग्धादि अष्ट घटों से और कुछ उष्ण जल से प्रतिमा को स्नान कराये (२७९)। श्वेत गोधूम-चूर्ण या तिल-कल्क या शालि-तण्डुल-चूर्ण से मार्जन कर उसे सुखाये (२८०)। तीर्थ-जल से पूर्ण आठ घड़ों से स्नान कराकर सुन्दर वस्त्र से पोंछकर स्वच्छ अङ्गोंवाली प्रतिमा को सजाकर पूजा-स्थान में ले जाये (२८१)। यदि तीर्थ-जल का संग्रह न कर सके, तो पच्चास घड़े शुद्ध जल से भक्ति-पूर्वक प्रतिमा का स्नान कराये (२८२)। यदि समर्थ हो, तो प्रति स्नान के बाद पूजा करे (२८३)। तब सुन्दर आसन पर प्रतिमा को स्थित कर पाद्यार्घ्यादि से पूजा कर हाथ जोड़कर उसकी प्रार्थना करे (२८४)—

नमस्ते प्रतिमे ! तुभ्यं विश्वकर्म-विनिर्मिते ! नमस्ते देवतावासे भक्ताभीष्ट-प्रदे नमः ।
त्वयि सम्पूजयाम्याद्यां परमेशीं परात्परां, शिल्प-दोषावशिष्टाङ्गं सम्पन्नं कुरु ते नमः ।

अर्थात् हे विश्वकर्मा द्वारा निर्मित प्रतिमे ! तुम्हें नमस्कार। हे देवतावासे ! तुम्हें नमस्कार। हे भक्ताभीष्ट-प्रदे ! तुम्हें नमस्कार। तुममें परात्परा परमेश्वरी आद्या की पूजा करता हूँ; शिल्प-दोष से बचे अङ्ग को सम्पन्न करो; तुम्हें नमस्कार (२८५-८६)।

अब शान्त हो प्रतिमा के मस्तक पर हाथ रखकर १०८ बार मूल-मन्त्र का जप कर प्रतिमा के सारे

शरीर को छुये (२८७)। तब प्रतिमा के अंगों में षडंग और मातृका-न्यास कर आकारादि-षड्-दीर्घ स्वरों से युक्त मूल-मन्त्र द्वारा षडंग-न्यास करे (२८८)। 'नमः' पदान्त, विन्दु-युक्त, 'ॐ' कार, माया-वीज (ह्रीं) और रमा-वीज (श्रीं) को आदि में लगाकर अष्ट-वर्गों से वर्ण-न्यास करे (२८९)। मुख में सारे स्वर का, कण्ठ-देश में क-वर्ग का न्यास करे; उदर में च-वर्ग, दक्ष-बाहु में ट-वर्ग, बाम बाहु में त-वर्ग, दक्षिण और वाम दोनों उरुओं में क्रमशः प-वर्ग और य-वर्ग का तथा मस्तक में श-वर्ग का न्यास करे (२९०-९१)। इस प्रकार वर्ण-न्यास कर तत्त्व-न्यास करे (२९२)—दोनों पैरों में पृथिवी-तत्त्व, लिंग-देश में जल-तत्त्व, नाभि-देश में तेजस्तत्त्व, हृदय-कमल में वायु-तत्त्व, मुख में आकाश-तत्त्व, दोनों आँखों में रूप-तत्त्व, दोनों नाकों में गन्ध-तत्त्व, दोनों कानों में शब्द-तत्त्व, जिह्वा में रस-तत्त्व, त्वचा में स्पर्श-तत्त्व का न्यास करे। भ्रू-मध्य में, सहस्र-दल कमल में नमस्तत्त्व का न्यास करे। इसी प्रकार वक्षःस्थल में शिव-तत्त्व, ज्ञान-तत्त्व, पर-तत्त्व, जीव-तत्त्व और प्रकृति-तत्त्व का न्यास करे। सर्वाङ्ग में क्रमशः महत्-तत्त्व और अहङ्कार-तत्त्व का न्यास करे (२९३-९६)। आदि में प्रणव, माया और रमा-वीज, अन्त में चतुर्थी एक-वचन की विभक्ति और 'नमः' लगाकर इन सब तत्त्वों का न्यास करे, यथा—'ॐ ह्रीं श्रीं पृथिवी-तत्त्वाय नमः' इत्यादि (२९७)। विन्दु-युक्त मातृका-वर्णों से पुटित, 'नमः' पदान्त मूल-मन्त्र का उच्चारण करते हुए मातृका-स्थानों में मन्त्र-न्यास करे (२९८)। तब प्रार्थना करे—

सर्व-यज्ञ-मयं तेजः सर्व-भूत-मयं वपुः, इयं ते कल्पिता मूर्तिरत्र त्वां स्थापयाम्यहम्।

अर्थात् तुम्हारा तेज सर्व-यज्ञ-मय है और शरीर सर्व-भूत-मय है। तुम्हारी यह मूर्ति कल्पित हुई है, इसमें तुम्हें मैं स्थापित करता हूँ (२९९)।

तदनन्तर-पूजा विधि के अनुसार ध्यान, आवाहनादि प्राण-प्रतिष्ठा तक के कर्म कर देवता की पूजा करे (३००)। देव-गृह के दान में जो सब मन्त्र कहे हैं, उन्हीं सबका प्रयोग इस पूजा में करे (३०१)। विधिवत् संस्कृत अग्नि में सभी अर्चित देवताओं को आहुति देकर देवी का आवाहन कर जातकर्मादि करे (३०२)। १. जात-कर्म, २. नामकरण, ३. निष्क्रमण ४. अन्न-प्राशन, ५. चूड़ा और ६. उपनयन—ये छः संस्कार शिवोक्त हैं (३०३)। प्रणव (ॐ), व्याहृति (भूर्भुवः स्वः), गायत्री, मूल-मन्त्र, सम्बोधनान्त नाम (हे आद्ये !) तुम्हारे जातकर्मादि अर्थात् संस्कार-विशेष का नामोल्लेख कर 'सम्पादयामि स्वाहा' अर्थात् सम्पादित करता हूँ—यह कह कर पाँच-पाँच आहुतियाँ प्रदान करे (३०४)। पूर्वोक्त नामोल्लेख करते हुए मूल-मन्त्र उच्चारण कर देवी को सौ आहुतियाँ देकर आहुति का अंश प्रतिमा के मस्तक पर छोड़े (३०५-६)। प्रायश्चित्तादि द्वारा अवशिष्ट कर्म सम्पन्न कर साधकों को भोजन कराये और अनाथ एवं दीनों को सन्तुष्ट करे (३०७)। उक्त कर्म करने में यदि अशक्त हो, तो सात घड़े जल से प्रतिमा को स्नान कराकर यथा-शक्ति पूजापूर्वक देवता को नाम सुनाये (३०८)। हे प्रिये ! यही 'श्रीमदाद्या की प्रतिष्ठा-विधि' है। इसी प्रकार 'दुर्गादि सभी विद्याओं' और 'महेशादि सभी देवों' की प्रतिष्ठा करे (३०९)। 'सचल शिव-लिङ्ग' की प्रतिष्ठा में भी मन्त्र द्वारा इसी विधि का प्रयोग सन्देह-रहित होकर करे (३१०)।

●—●

चौदहवाँ उल्लास--शिव-लिंग-स्थापन एवं चतुर्विध अवधूतों का विवरण

श्री देवी ने कहा—हे कृपा-नाथ ! आद्या शक्ति कालिका के प्रसंग में आपने कृपा कर बहुत से साधन बताए। मैं आपके भाव से तृप्त हूँ। आपने **'सचल शिव-लिंग'** की प्रतिष्ठा-विधि बताई है किन्तु उसका फल क्या है और उसकी विधि किस प्रकार है ? उसे विशेष रूप से कहिए। हे जगतो-नाथ ! इस परम तत्त्व-जिज्ञासा के लिए मैं किसे वरण करूँ ? आपकी अपेक्षा दयालु, सर्वज्ञ, प्रभु, आशुतोष, दीनानाथ और मुझे आनन्द देनेवाला अन्य कोन है (१-४) ?

श्री सदाशिव ने कहा--शिव-लिंग की स्थापना का माहात्म्य तुमसे क्या कहूँ ! उसकी स्थापना से मनुष्य महा-पाप से छूटकर परम पद को प्राप्त करता है (५)। स्वर्ण-पूर्ण पृथिवी का दान और दस सहस्र अश्वमेध यज्ञ करने, निर्जल प्रदेश में जलाशय बनवाने, दीन और आतुर लोगों को सन्तुष्ट करने से मनुष्य जो फल पाते हैं, उससे कोटि गुना अधिक फल शिव-लिंग की प्रतिष्ठा करने से मिलता है, इसमें सन्देह नहीं (६-७)। हे कालिके ! जिस स्थान में लिंग-रूपी महादेव रहते हैं, उसी स्थान में ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र-सहित अन्याय देव-गण वास करते हैं (८)। साढ़े तोन कोटि तीर्थ और गुप्त एवं अप्रकाशित सभी पुण्य-क्षेत्र शिव के निकट रहते हैं (९)। लिंग-रूपी शिव के सब ओर सौ हाथ तक **'शिव-क्षेत्र'** कहा जाता है (१०)। यह **'शिव-क्षेत्र'** महा-पुण्य-जनक और सब तीर्थों से श्रेष्ठ होता है, जिसमें देव-गण और सभी तीर्थ सदा विराजते हैं (११)। जो व्यक्ति क्षण भर भी शिव-भाव-परायण होकर **'शिव-क्षेत्र'** में रहता है, वह सब पापों से छूटकर अन्त में शिव-लोक में जाता है (१२)। इस **'शिव-क्षेत्र'** में अल्प या बहु मात्रा में जो कर्म किया जाता है, वह महादेव के प्रभाव से कोटि गुणा हो जाता है (१३)। शिव के सामीप्य से जहाँ-तहाँ किए पाप से तो मुक्ति मिल जाती है किन्तु **'शिव-क्षेत्र'** में किया पाप वज्र-लेप के समान होता है अर्थात् उससे छुटकारा नहीं मिलता (१४)। पुरश्चरण, जप, दान, श्राद्ध एवं तर्पण आदि जो कोई कर्म **'शिव-क्षेत्र'** में किया जाता है, उसका अनन्त फल होता है (१५)। चन्द्र या सूर्य-ग्रहण में सौ पुरश्चरण करने से जो फल होता है, वह शिव के पास एक बार ही जप करने से मिल जाता है (१६)। गया, गङ्गा और प्रयाग में कोटि पिण्ड-दान करने से जो फल मिलता है, वह **'शिव-क्षेत्र'** में एक बार पिण्ड-दान करने से मिल जाता है (१७)। जो अति-पापी या महा-पापी थे, उनको भी इस **'शिव-क्षेत्र'** में एक बार ही श्राद्ध करने से परम गति प्राप्त हो जाती है (१८)। लिंग-रूपी जगन्नाथ श्रीदुर्गा के साथ जिस स्थान पर रहते हैं, उस स्थान में चौदहो भुवन वास करते हैं (१९)। स्थापित महादेव का यह कुछ माहात्म्य तुमसे कहा है। जो महादेव अनादि-लिंग हैं, उनकी महिमा वाक्य के भी परे है (२०)। हे सुव्रते ! 'महा-पीठ'--स्थानों में तुम्हारी पूजा में अस्पृश्य-स्पर्श का दोष है, किन्तु लिंग-रूपी महेश्वर में यह दोष नहीं है (२१)। हे देवि, हे कालिके ! चक्रार्चन-काल में जिस प्रकार कोई दोष नहीं होता, उसी प्रकार महा-तीर्थ-स्वरूप **'शिव-क्षेत्र'** में स्पर्श-दोष न माने (२२)। इस विषय में अधिक क्या कहूँ ; तुमसे सत्य रहता हूँ, शिव-लिंग के पूर्ण प्रभाव को व्यक्त करना मेरी शक्ति में नहीं है (२३)। शिव-लिंग गौरी-पट्ट से संयुक्त हो या न हो, साधक अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए भक्तिपूर्वक उसकी पूजा करे (२४)।

जो साधक देवता की प्रतिष्ठा के पूर्व-दिवस के सन्ध्या-काल में **'देवता का अधिवास'** करता है, वह दश

सहस्र अश्वमेध यज्ञ का फल पाता है (२५)। १ मही, २ गन्ध, ३ शिला, ४ धान्य, ५ दूर्वा, ६ पुष्प, ७ फल, ८ दधि, ९ घृत, १० स्वस्तिक, ११ सिन्दूर, १२ शंख, १३ कज्जल, १४ रोचना, १५ श्वेत सर्षप, १६, सुवर्ण, १७ रौप्य, १८ ताम्र, १९ दीप, २० दर्पण—ये बीस द्रव्य 'अधिवास' में लगाए (२६-२७)। इनमें से एक-एक द्रव्य को लेकर 'माया' (ह्रीं) और गायत्री का पाठ करते हुए कहे कि इस द्रव्य द्वारा इस देवता का शुभाधिवासन हो (२८)। **'ह्रीं गायत्रीं अनेन द्रव्येणामुष्य दैवतस्य शुभमधि-वासनमस्तु।'** उक्त मन्त्र द्वारा 'मही' आदि प्रत्येक वस्तु से देवता के ललाट को छुए। इसी प्रकार प्रशस्ति-पात्र द्वारा तीन बार अधिवास करे (२९)। इस विधि से देवता का अधिवास कर गृह-प्रतिष्ठा-विधि के अनुसार दुग्धादि द्वारा उस देवता को स्नान कराए (३०)। स्नान कराने के बाद वस्त्र से शिव-लिंग को मार्जित कर, आसन पर स्थापित कर, पूजानुष्ठान की विधि से गणेशादि देवताओं का अर्चन करे (३१)। प्रणव से करांग-न्यास और प्राणायाम कर कोटि-चन्द्र के समान प्रभावाले, शान्त-स्वरूप सदाशिव का ध्यान करे (३२)—

व्याघ्र-चर्म-परोधानं नाग-यज्ञोपवीतिनम्, विभूति-लिप्त-सर्वाङ्गं नागालङ्कार-भूषितम्।
धूम्र-पातारुण-श्वेत-रक्तैः पंचभिराननैः, युक्त त्रि-नयनं विभ्रज्जटा-जूट-धरं विभुम्।
गङ्गा-धरं दश-भुजं शशि-शोभित-मस्तकम्, कपालं पावकं पाशं पिनाकं परशुं करैः।
वामैर्दधानं दक्षैश्च शूलं वज्रांकुशं शरम्, वरं च विभ्रतं सर्वैर्देवैर्मुनि-वरैः स्तुतम्।
परमानन्द-सन्दोहोल्लसत्-कुटिल-लोचनम्, हिम-कुन्देन्दु-सङ्काशं वृषासन-विराजितम्।
परितः सिद्ध-गन्धर्वैरप्सरोभिरहर्निशम्, गीयमानमुमा - कान्तमेकान्त - शरण - प्रियम्॥

अर्थात् व्याघ्र-चर्म पहने, नाग का यज्ञोपवीत धारण किए, सारे शरीर में भस्म लगाए, नागों के आभूषणों से शोभित, धूम्र-पीत-अरुण-श्वेत-रक्त इन पाँच वर्णवाले पाँच मुखों से युक्त, त्रिनेत्र, जटा-जूटधारी, प्रभु, गंगा-धर, दश-भुज, चन्द्र-कला से शोभित मस्तकवाले, बाएँ पाँच हाथों में कपाल, अग्नि, पाश, धनुष, परशुधारी, दाएँ पाँच हाथों में शूल, वज्र, अंकुश, वाण, वर-धारी, सभी देवों और श्रेष्ठ मुनियों द्वारा वन्दित, परमानन्द से उल्लसित बाँके नेत्रोंवाले, हिम, कुन्द पुष्प और चन्द्र के समान श्वेत वर्णवाले बैल पर सवार, चारों दिशाओं में स्थित सिद्धों, गन्धर्वों और अप्सराओं द्वारा स्तूयमान, उमा के पति, एकमात्र शरणागत भक्तों के प्रिय सदाशिव का ध्यान करता हूँ (३३-३८)।

इस प्रकार महादेव का ध्यान कर मानसिक उपचारों से पूजा कर उसी लिंग पर उनका आवाहन कर यथा-शक्ति उनकी पूजा करे (३९)। आसनादि सभी उपचारों के मन्त्र पहले कहे हैं। अब महात्मा महेश्वर का मूल-मन्त्र बताता हूँ (४०)—माया (ह्रीं), प्रणव (ॐ), शब्द-बीज (ह), 'औ' और चन्द्र-बिन्दु अर्थात् 'ह्रीं ॐ हौं'—यह **'शिव-बीज'** कहा है (४१)। फिर सुगन्धित पुष्प-माला और वस्त्र से शिव को ढँककर दिव्य शय्या पर स्थापित कर 'गौरी-पट्ट' का शोधन करे (४२)। **'गौरी-पट्ट'** के ऊपर देवी की इस विधि से पूजा करे। पहले 'ह्रीं' बीज से कर-न्यास और प्राणायाम करे (४३)। फिर देवी का ध्यान करे—

उद्यद्-भानु-सहस्र-कान्तिममलां वह्न्यर्क-चन्द्रेक्षणाम्,
मुक्ता-यन्वित-हेम-कुण्डल-लसत्-स्मेराननाम्भोरुहाम्।
हस्ताब्जैरभयं वरं च दधतीं चक्रं तथाब्जं दधत्,
पीनोत्तुङ्ग-पयोधरां भय-हरां पीताम्बरां चिन्तये॥

अर्थात् जिनकी कान्ति उदय होते सहस्र सूर्यों के समान है, जो निर्मला हैं, अग्नि-सूर्य-चन्द्र जिनके तीन नेत्र हैं, जिनका मुस्कान-युक्त मुख-कमल मौतियों से जटित स्वर्ण-कुण्डलों से शोभायमान है, जो चार कर-कमलों में चक्र, पद्म, वर और अभय धारण किए हैं, दोनों पयोधर पीन और उत्तुंग है, ऐसी भय-हारिणी पीत-वस्त्रा भगवती का मैं ध्यान करता हूँ।

इस प्रकार ध्यान कर महा-देवी का यथा-शक्ति पूजन कर दश दिक्-पालों और वृषभ की पूजा करे (४४-४५)। जिस मन्त्र से जगन्मयी भगवती की आराधना करनी चाहिए, उसे बताता हूँ (४६)। माया (ह्रीं), लक्ष्मी (श्रीं) और षष्ठ स्वर से युक्त हकार में चन्द्र-विन्दु जोड़कर (हूँ) उच्चारण करे तथा अन्त में वह्नि-जाया (स्वाहा) जोड़े अर्थात् 'ह्रीं श्रीं हूँ स्वाहा' (४७)।

पूर्व की भाँति देवी को स्थापित कर सब देवों के लिए शर्करा-मिश्रित दधि-युक्त माष-भक्त की बलि दे (४८)। इस बलि को ईशान-कोण में रखकर वरुण-बीज (वं) से उसे शुद्ध करे। फिर गन्ध-पुष्प से उसकी पूजा कर निम्न मन्त्र से उसे उत्सर्ग करे—

सर्वे देवाः सिद्ध-गणा गन्धर्वोरग-राक्षसाः। पिशाचो मातरो यक्षा भूताश्च पितरस्तथा॥
ऋषयो येऽन्य-देवाश्च बलिं गृह्णन्तु संयताः। परिवार्य महा-देवं तिष्ठन्तु गिरिजामपि॥

अर्थात् सभी देव, सिद्ध-गण, गन्धर्व, नाग, राक्षस, पिशाच, मातृ-गण, यक्ष, भूत, पितृ-गण, ऋषि और अन्य देव-गण संयत होकर बलि ग्रहण करें तथा ये सब महा-देव और महा-देवी गिरिजा के चारों ओर विराजें (४९-५१)।

तब महा-देवी के उक्त मन्त्र 'ह्रीं श्रीं हूँ स्वाहा' का यथा-शक्ति जप करे। फिर उत्तम गीत-वाद्यादि द्वारा मङ्गल-कार्य करे (५२)। इस प्रकार अधिवास कर अगले दिन नित्य-क्रिया कर यथा-विधि सङ्कल्प कर पंच-देवों को पूजा करे (५३)। फिर मातृका-पूजा, वसुधारा और वृद्धि-श्राद्ध कर भक्तिपूर्वक महेश्वर को और नन्दी आदि द्वार-पालों की पूजा करे (५४)। १. नन्दी, २. महा-बल, ३. कोश-वदन और ४ गण-नायक—ये शिव के द्वार-पाल हैं। ये सभी अस्त्र-शस्त्र-धारी हैं (५५)। तब वेदी-रूपा तारिणी और शिव-लिङ्ग को लाकर सर्वतोभद्र-मण्डल में या उत्तम आसन पर स्थापित करे (५६)। फिर 'ह्रीं ॐ हौं त्र्यम्बकं यजामहे' मन्त्र का पाठ करते हुए अष्ट-कलश के जल से महा-देव को स्नान कर षोडशोपचार-पूजा करे (५७)। तब 'ह्रीं श्रीं हूँ स्वाहा' मन्त्र से वेदी का स्थापन कर उस पर लिङ्ग को स्थापित कर पूजा करे। फिर हाथ जोड़कर मङ्गल-मय शङ्कर की प्रार्थना करे (५८)—

आगच्छ भगवन्! शम्भो! सर्व-देव-नमस्कृत! पिनाक-पाणे! सर्वेश! महा-देव! नमोऽस्तु ते॥
आगच्छ मन्दिरे देव! भक्तानुग्रह-कारक! भगवत्या सहाऽऽगच्छ कृपां कुरु नमो नमः॥
मातर्देवि! महा-माये! सर्व-कल्याण-कारिणि! प्रसीद शम्भुना सार्धं नमस्तेऽस्तु हर-प्रिये॥
आयाहि वरदे देवि! भवनेऽस्मिन् वर-प्रदे! प्रीता भव महेशानि! सर्व-सम्पत्-करी भव॥
उत्तिष्ठ देव-देवेशि! स्वैः स्वैः परिकरैः सह। सुखं निवसतां गेहे प्रीयेतां भक्त-वत्सलौ॥

अर्थात् हे भगवन् शम्भो! हे सब देवों से नमस्कृत! हे पिनाक-पाणे! हे सर्वेश! हे महा-देव! आओ, तुम्हें नमस्कार। हे देव! तुम मन्दिर में आओ। हे भक्तों पर कृपा करनेवाले! कृपया भगवती के साथ आओ। तुम्हें बारम्बार नमस्कार। हे महा-माये! हे सर्व-कल्याण-कारिणि! हे हर-प्रिये। हे मातः! हे देवि! महेश्वर

के साथ तुम प्रसन्न होओ। तुम्हें नमस्कार। हे वरदे! हे देवि! इस भवन में आओ। हे वर-दायिनि! प्रसन्न होओ। हे महेश्वरि! मुझे सब सम्पत्तियाँ दो। हे देव, हे देवेशि! अपने-अपने परिवार के साथ उठो। तुम दोनों भक्त-वत्सल इस गृह में सुख से निवास करो और प्रसन्न होओ (५९-६३)

इस प्रकार महेश्वर और महेश्वरी की प्रार्थना कर मङ्गल-ध्वनि करते हुए तीन बार गृह की प्रदक्षिणा कर उन्हें गृह के भीतर प्रवेश कराए (६४)। फिर मूल-मन्त्र को जपते हुए निम्न मन्त्र से पाषाण-खनित गर्त्त में या ईंट से बने गर्त्त के मध्य में लिङ्ग के नीचे का तीन भाग रोपित करे (६५)–

यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावत् पृथ्वी च सागराः। तावदत्र महा-देव! स्थिरो भव नमोऽस्तु ते।।

अर्थात् जब तक चन्द्र और सूर्य हैं, जब तक पृथ्वी और सागर हैं, तब तक हे महा-देव! तुम इस स्थान में स्थिर होकर रहो, तुम्हें नमस्कार (६६)।

इस मन्त्र द्वारा सदाशिव को दृढ़ रूप से स्थापित कर मूल-मन्त्र को जपते हुए उत्तरीमुख गोरी-पट्ट को उनके ऊपर से प्रवेश कराए (६७) और यह मन्त्र पढ़े–

स्थिरा भव जगद्धात्रि! सृष्टि - स्थित्यन्त - कारिणि! यावद् दिवा - निशा - नाथौ तावदत्र स्थिरा भव।।

अर्थात् हे सृष्टि-स्थिति-संहार-कारिणि! हे जगद्धात्रि! स्थिर होओ। जब तक सूर्य और चन्द्र हैं, तब तक इस स्थान में स्थिर होकर रहो (६८)।

इस प्रकार यन्त्र को सुदृढ़ कर शिव-लिङ्ग को स्पर्श कर निम्न मन्त्रों का पाठ करे (६९)–

व्याघ्रा भूताः पिशाचाश्च गन्धर्वाः सिद्ध - चारणाः। यक्षा नागाश्च वेताला: लोक - पाला महर्षयः।।
मातरो गण - नाथाश्च विष्णुर्ब्रह्मा वृहस्पतिः। यस्य सिंहासने युक्ता भूचराः खेचरास्तथा।।
आवाहयामि तं देवं त्र्यक्षमीशानमव्ययम् । आगच्छ भगवन्नत्र ब्रह्म - निर्मित - यन्त्रके।।
ध्रुवाय भव सर्वेषां शुभाय च सुखाय च।

अर्थात् व्याघ्र, भूत, पिशाच, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, यक्ष, नाग, वेताल, लोक-पाल, महर्षि, माताएँ, गण-पति, विष्णु, ब्रह्मा, वृहस्पति, भूचर और खेचर जिनके सिंहासन से युक्त हैं, उन अव्यय, त्रिनेत्र ईशान का मैं आवाहन करता हूँ। हे भगवन्! इस ब्रह्म-निर्मित यन्त्र में आइए और सभी प्राणियों को सुख तथा मङ्गलकारी हों (७०-७।

अब देव-प्रतिष्ठा में बताई विधि से शिव को स्नान कराए (७३)। हे प्रिये! पूर्ववत् ध्यान कर मानसोपचारों से पूजा करे। फिर विशेषार्घ्य-स्थापन कर गण-देवताओं की पूजा कर पुनः ध्यान कर लिंग पर पुष्प चढ़ाए (७४)। पाश (**आं**) और अंकुश (**क्रों**) से पुटित माया (**ह्रीं**) का उच्चारण कर '**य**' से '**स**' तक के सात अक्षरों को अनुस्वार-युक्त कर उनका पाठ कर अन्त में '**हौं हंसः**' मन्त्रोच्चार कर उक्त लिंग में प्राण-प्रतिष्ठा करे। फिर चन्दन, अगुरु और काश्मीर (कुंकुम) से गिरिजा-पति के अंगों को चर्चित कर पूर्वोक्त विधि से षोडशोपचारों से पूजा करे। तब पहले बताई विधि से जात-कर्म, नामकरण आदि संस्कार कर वेदी पर देवी महेश्वरी की पूजा करने के बाद उस पर देव-देव अष्ट-मूर्ति की पूजा करे (७५-७६)। यथा–

१ शर्वाय क्षिति मूर्तये नमः, २ भवाय जल-मूर्तये नमः, ३ रुद्राय अग्नि-मूर्तये नमः, ४ उग्राय वायु-मूर्तये नमः, ५ भीमाय आकाश-मूर्तये नमः, ६ पशु-पतये यजमान-मूर्तये नमः, ७ महा-देवाय सोम-मूर्तये नमः, ८ ईशानाय सूर्य-मूर्तये नमः।

यही अष्ट-मूर्तियाँ हैं (७७-७६)। आदि में 'प्रणव' और अन्त में 'नमः' लगाकर प्रत्येक मूर्ति का आवाहन कर पूर्व से ईशान कोण तक क्रमशः उक्त आठ मूर्तियों की पूजा करे (८०)। फिर इन्द्रादि दश दिक्-पालों और ब्राह्मी आदि आठ मातृकाओं को पूजा कर वृष, वितान, गृह आदि सभी महेश्वर के प्रति उत्सर्ग करे (८१)। तब हाथ जोड़कर भक्ति-पूर्वक पार्वती-पति महादेव से प्रार्थना करे (८२)—

गृहेऽस्मिन् करुणा-सिन्धो ! स्थापितोऽसि मया प्रभो ! प्रसीद भगवन् शम्भो ! सर्व-कारण-कारण ।।
यावत् स-सागरा पृथ्वी यावत् शशि-दिवाकरौ । तावदस्मिन् गृहे तिष्ठ नमस्ते परमेश्वर ।।
गृहेऽस्मिन् यस्य कस्यापि जीवस्य मरणं भवेत् । न तत्-पापैः प्रलिप्येऽहं प्रसादात् तव धूर्जटे ।।

अर्थात् हे दया-सागर ! मैंने तुम्हें इस गृह में स्थापित किया है। हे प्रभो ! तुम सभी कारणों के कारण हो। हे भगवन् शम्भो ! प्रसन्न होओ। हे परमेश्वर ! जब तक सागरों सहित पृथ्वी है, जब तक सूर्य-चन्द्र हैं, तब तक तुम इस गृह में रहो। तुम्हें नमस्कार। हे धूर्जटे ! इस गृह में जिस किसी जीव की मृत्यु हो, तुम्हारी कृपा से मैं उसके पाप में लिप्त न होऊँ (८३-८५)।

अब प्रदक्षिणा कर नमस्कार करे और घर जाये। अगले दिन प्रातः वहीं आकर चन्द्र-शेखर को स्नान कराये (८६)। पहले शुद्ध पंचामृत से, फिर सुगन्धित जल से भरे एक सौ कलश द्वारा स्नान कराये (८७)। तब यथा-शक्ति पूजा कर प्रार्थना करे (८८)—

विधि-हीनं क्रिया-हीनं भक्ति-हीनं यदर्चितम् । सम्पूर्णमस्तु तत् सर्वं त्वत्-प्रसादादुमा-पते ।।
यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावत् पृथ्वी च सागराः । तावन्मे कीर्तिरतुला लोके तिष्ठतु सर्वदा ।।
नमस्त्र्यक्षाय रुद्राय पिनाक-वर-धारिणे । विष्णु-ब्रह्मेन्द्र-सूर्याद्यैरर्चिताय नमो नमः ।।

अर्थात् हे उमा-पते ! इस पूजा में जो कुछ विधि-हीन, क्रिया-हीन, भक्ति-हीन हुआ हो, वह सब तुम्हारी कृपा से पूर्ण हो और जब तक सूर्य तथा चन्द्र हैं, पृथ्वी और सागर हैं, तब तक इस संसार में मेरा अनुपम यश बना रहे। श्रेष्ठ पिनाक-धारी, त्रिनेत्र रुद्र को नमस्कार। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, सूर्यादि द्वारा पूजित महेश्वर को बारंबार नमस्कार (८६-६१)।

अब दक्षिणा देकर कौलिकों और ब्राह्मणों को भोजन कराए। फिर दरिद्रों को भक्ष्य, पेय द्रव्यों और वस्त्रों से सन्तुष्ट करे (६२)। तब प्रतिदिन यथा-शक्ति महेश्वर की पूजा करे किन्तु स्थावर शिवलिंग को कभी स्थान से न हटाये (६३)। हे परमेश्वरि ! मैंने समस्त आगमों से उद्धृत कर संक्षेप में अचल शिव-लिंग की प्रतिष्ठा की यह विधि तुम्हें बताई है (६४)।

भगवती ने जिज्ञासा की—हे विभो ! यदि अकस्मात् किसी दिन देवता की पूजा न हो सके, तो भक्त लोग क्या करें (६५) ? किस दोष से देव-मूर्ति अपूज्य और त्याज्य हो जाती है, इसे भी मुझे बताइए (६६)।

श्री सदाशिव ने कहा—यदि किसी दिन पूजा न हो सके, तो अगले दिन उस देव-मूर्ति की दुगुनी पूजा करे। दो दिन पूजा न हो सके, तो चौगुनी और तीन दिन पूजा न होने पर आठ-गुनी पूजा करे (६७)। यदि छः महीने तक पूजा न हो, तो आठ कलश जल से देव-मूर्ति को स्नान कराकर पूजा करे (६८)। यदि छः मास से अधिक समय तक पूजा न हो, तो पूर्वोक्त संस्कार-विधि के अनुसार देव-मूर्ति को पुनः सुसंस्कृत कर पूजा करे (६६)। जो देव-मूर्ति टूटी हो, छिद्रवाली हो, कुष्ट-रोगी द्वारा छू गई हो या अंग-हीन हो, उसे जल में विसर्जित कर दे। जो मूर्ति दूषित हो भूमि पर गिर पड़ी हो, उसकी पूजा न करे (१००)। अंगहीन, टूटी, छिद्रवाली मूर्ति

का विसर्जन जल में करे किन्तु स्पर्शादि दोषों से दूषित मूर्ति का पुनः संस्कार कर पूजा कर सकते हैं (१०१)। जो महा-पीठ और अनादि लिंग हैं, उनमें अस्पृश्य-स्पर्शादि दोष नहीं होते, अतः सुख-प्राप्ति के लिए उनमें सदा अपने अभीष्ट देवता की पूजा करे (१०२)। हे महा-माये ! कर्म के अनुसार जीवित रहनेवाले मनुष्यों के कल्याण के लिए तुमने जो-जो पूछा, मैंने वह सब बताया है (१०३)। मनुष्य लोग बिना कर्म किए एक क्षण भी नहीं रह सकते। वे इच्छा न होते हुए भी लाचार होकर कर्म-रूपी वायु से आकृष्ट होते हैं (१०४)। कर्मों से ही वे सुख पाते है, दुःख भोगते हैं, जन्म पाते हैं, मृत्यु को प्राप्त होते हैं और कर्मों के वश में रहकर ही जीवित रहते हैं (१०५)। इसीलिए मैंने अल्पज्ञ व्यक्तियों की प्रवृत्ति के लिए और दुष्प्रवृत्ति को निवृत्ति के लिए साधन-सहित बहुत से कर्म बताए हैं अर्थात् जो अनेक जन्मों में बहुत से कर्म करके तत्त्व-ज्ञानी हुए हैं, उनके लिए नहीं, अपितु जो संसारी अविद्यादि से पूर्ण हैं, उन्हीं के लिए उक्त कर्म निर्दिष्ट किए हैं (१०६)।

कर्म दो प्रकार के हैं—१ शुभ, २ अशुभ। अशुभ कर्म करने से प्राणी लोग बड़ी यातना भोगते हैं (१०७) हे देवि ! जो लोग फल के लोभ में शुभ कर्म करते हैं, वे भी इन कर्मों की जंजीर में बँधकर इस लोक और परलोक में आते-जाते रहते हैं (१०८)। शुभ या अशुभ कर्मों का क्षय न होने पर, सौ कल्पों तक भी मनुष्य की मुक्ति नहीं होती (१०९)। जिस प्रकार लोहे या सोने की जंजीर से बन्धन होता है, उसी प्रकार जीव अशुभ या शुभ कर्म से बँधता है (११०)। जब तक ज्ञान नहीं होता, तब तक निरन्तर कर्मानुष्ठान करके या अनेक प्रकार के कष्ट उठाकर भी मोक्ष को नहीं पा सकते (१११)। ज्ञानी, निर्मलात्मा पण्डितों के तत्त्व-विचार या निष्काम-कर्मानुष्ठान द्वारा ही ज्ञान प्राप्त होता है (११२)। ब्रह्मा से लेकर एक तिनके तक सारा जगत् माया द्वारा कल्पित है और मिथ्या है ; केवल एक 'परम ब्रह्म' ही सत्य है, यह ज्ञात होने पर सुख मिलता है (११३)। जो 'मेरा नाम अमुक है, मैं गौर-वर्ण हूँ' इत्यादि मिथ्या ज्ञान का छोड़कर अविद्या-शून्य हो जाता है अर्थात् नित्य, निश्चल ब्रह्म के तत्त्व का निरूपण करता है, वह कर्म के बन्धन से मुक्त होता है (११४)। जप, होम या सौ-सौ उपवास करने से भी मुक्ति नहीं मिलती किन्तु '**ब्रह्मैवाहं**' अर्थात् '**ब्रह्म ही मैं हूँ**'—इस प्रकार का ज्ञान होने से देही मुक्त हो जाता है (११५)। आत्मा साक्षी है अर्थात् शुभाशुभ का द्रष्टा विभु है—सर्व-व्यापक, पूर्ण, अद्वितीय, परात्पर है और देह से सम्बद्ध होते हुए भी देह-धर्म से अलिप्त है, यह जानने से प्राणी मुक्ति का अधिकारी होता है (११६)। जो व्यक्ति नाम-रूपादि कल्पना को बाल्य-क्रीडा के समान छोड़कर ब्रह्म-निष्ठ होता है, वह मुक्ति पाता है, इसमें सन्देह नहीं (११७)।

तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार बचपन के बीतने पर बाल्य-काल के खेलों को व्यक्ति छोड़ देता है, उसी प्रकार साधना के प्रारम्भिक काल में ब्रह्म के रूप अर्थात् दश-भुजादि एवं नाम अर्थात् काली, दुर्गादि, परिच्छद अर्थात् रक्त-वस्त्रादि की कल्पना और तदनुसार १ बाह्य पूजा, २ मानस पूजा और स्तुति, ३ ध्यान—इन सभी क्रीड़ाओं को क्रमशः करते हुए साधना में प्रवीण होने पर इन सभी कर्मों को छोड़ दे। तब ब्रह्म-परायण होकर मुक्ति को प्राप्त करे किन्तु जिस प्रकार बाल्य-काल में बालोचित क्रीड़ाओं को छोड़कर बड़ों के समान कार्य करने की चेष्टा करना उचित नहीं है, उसी प्रकार साधना की प्रारंभिक अवस्था में नाम-रूपादि की कल्पना छोड़कर ब्रह्म-परायण होने की चेष्टा करना कल्याणकारी नहीं है। अतः जैसे आयु के अनुसार कर्म करने चाहिए, वैसे ही साधना के कम या अधिक अभ्यास के अनुसार ही कर्म विहित हैं।

मनः-कल्पित मूर्ति अर्थात् मन-ही-मन निर्मित अशास्त्रीय मूर्ति यदि मनुष्यों को मोक्ष-दायिनी हो, तो मनुष्य स्वप्न में प्राप्त राज्य द्वारा ही वास्तविक राजा बन जाते। आद्या आदि की शास्त्रोक्त मूर्ति मोक्ष-दायिनी होती है, ऐसा पहले बताया है। अतः यहाँ तात्पर्य यह है कि मनमानी मूर्ति मोक्षदा नहीं होती (११८)। मिट्टी,

पत्थर, धातु या काष्ठादि की मूर्ति को ईश्वर माननेवाले तप करते हुए कष्ट ही उठाते हैं ; तप से ज्ञान होने पर ही वे मुक्ति प्राप्त करते हैं (११६) । मनुष्य लोग आहार-संयम कर चाहे कष्ट उठायें या यथेष्ट आहार कर मोटे-ताजे बनें, यदि ब्रह्म-ज्ञान से रहित रहते हैं, तो उनका निस्तार किसी प्रकार नहीं होता (१२०) । जो केवल वायु पीकर या पत्ते खाकर या कण भक्षण कर या जल मात्र पीकर व्रत करते हैं, वे यदि उससे मोक्ष पा जायँ, तो सर्प, पशु-पक्षी, जल-जन्तु—ये सभी मोक्ष के अधिकारी हो जायँ । तात्पर्य यह है कि केवल आहार के नियम-रूपी सत्कर्म के करने से मोक्ष नहीं मिलता, अपितु विविध व्रतों, अनेक उपवासों एवं अनेक जन्मों की आराधना से चित्त की शुद्धि होने पर जब तत्त्व-ज्ञान होता है, तब मोक्ष मिलता है (१२१)। ब्रह्म ही सत्य है, अन्य सब मिथ्या है—यही भाव उत्तम है । ध्यान का भाव मध्यम है । स्तव और जप का भाव अधम है और बाह्य पूजा अधम से भी अधम है । तात्पर्य यह है कि पहले बाह्य-पूजा, फिर मानसिक पूजा और स्तुति, तब ध्यान—क्रमशः इन सबको करता हुआ साधक ब्रह्म-सद्भाव अर्थात् तत्त्व-ज्ञान-रूपी श्रेष्ठ स्थिति को प्राप्त करता है (१२२) । जीव और आत्मा के ऐक्य को ही 'योग' कहते हैं तथा सेवक और ईश्वर के ऐक्य को ही 'पूजा' कहते हैं । सब कुछ ब्रह्म ही है—'**सर्वं ब्रह्म**', ऐसा ज्ञान जिसे होता है, उसके लिए योग और पूजा कुछ नहीं है (१२३) । जिसके हृदय में परम ज्ञान—ब्रह्म-ज्ञान विराजमान है, उसके लिए जप, यज्ञादि तप, नियम, व्रतादि किसी की आवश्यकता नहीं है (१२४) । जो सर्वत्र सत्य-स्वरूप, विज्ञान-स्वरूप, आनन्द-स्वरूप अद्वितीय ब्रह्म को साक्षात् कर लेता है, वह स्वभावतः ब्रह्म-स्वरूप हो जाता है, उसके लिए पूजा और ध्यान-धारणा कुछ नहीं है (१२५)। '**सर्वं ब्रह्म**'—सब कुछ ब्रह्म है, ऐसा जाननेवाले को पाप, पुण्य, स्वर्ग, पुनर्जन्म, ध्येय और ध्याता कुछ भी महत्व नहीं रखते (१२६) । यह आत्मा सदा ही मुक्त है, वह किसी भी वस्तु से लिप्त नहीं होती । उसका बन्धन क्या है, जिससे मुक्ति पाने की इच्छा दुर्बुद्धि लोग करते हैं (१२७) ? यह जगत् ब्रह्म की माया द्वारा विरचित है । देवता भी इसे नहीं समझ सकते । इस जगत् में परम ब्रह्म प्रविष्ट न होकर भी प्रविष्ट-जैसा स्वयं विराजमान रहता है (१२८) । जिस प्रकार सभी वस्तुओं के भीतर और बाहर आकाश है, उसी प्रकार सत्-स्वरूप और साक्षी-स्वरूप आत्मा सर्वत्र स्वरूप से प्रकाशमान रहता है (१२९) । आत्मा का न जन्म है, न बाल्यावस्था है, न युवा-वस्था—न वृद्धावस्था है; वह सदैव एक-रूप, चिन्मय और विकार-रहित है (१३०) । जन्म, यौवन और वृद्धा-वस्था देह की ही होती है, आत्मा की नहीं । माया से बुद्धि के ढँके होने से लोग यह देखकर भी नहीं देखते (१३१) । जैसे अनेक शरावों (पात्रों) में स्थित जल में अनेक सूर्य दिखाई देते हैं, वैसे ही माया के प्रभाव से अनेक शरीरों में अनेक आत्मायें दिखाई देती हैं (१३२)। जैसे जल के हिलने से उसमें प्रतिबिम्बित चन्द्र का हिलना प्रतीत होता है, वैसे ही अज्ञानी व्यक्ति की बुद्धि चंचल होने से आत्मा को भी चंचल समझ बैठते हैं (१३३) । जैसे घट के टूटने पर भी घटस्थ आकाश पहले ही जैसा रहता है, वैसे ही देह के नष्ट होने पर भी आत्मा सदा सम-भाव में विराजमान रहती है (१३४) हे देवि ! यही ब्रह्म-ज्ञान मोक्ष का परम कारण है । जो इसे जानता है, वह इसी लोक में जीवन्मुक्त होकर रहता है, इसमें सन्देह नहीं (१३५) । मनुष्य कर्म द्वारा मुक्त नहीं होता, सन्तान उत्पन्न करके मुक्त नहीं होता, धन द्वारा भी मुक्त नहीं होता अपितु अपने द्वारा अपने को जानकर ही वह मुक्त होता है (१३६) । सभी जीवों को आत्मा ही परम प्रिय है, आत्मा से अधिक प्रिय कोई अन्य वस्तु नहीं है । हे शिवे ! इस लोक में अन्य व्यक्ति आत्म-सम्बन्ध के कारण ही प्रिय होता है (१३७) । ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता—ये तीन माया द्वारा ही प्रतीत होते हैं । इन तीनों के तत्त्व का विचार करने पर एकमात्र आत्मा ही शेष रहती है (१३८) । चिन्मय आत्मा ही ज्ञान है, चिन्मय आत्मा ही ज्ञेय वस्तु है और स्वयं आत्मा ही ज्ञाता है । जो इसे जानता है, वही आत्म-वित् है (१३९) । यह मैंने तुमसे साक्षात् मोक्ष के कारण-स्वरूप ज्ञान का

उपदेश किया है। यह चतुर्विध अवधूतों का परम धन है (१४०)।

श्री भगवती ने कहा—आपने पहले गृहस्थ और भिक्षुक—इन दो आश्रमों की बात कही है। अब कहते हैं कि अवधूत आश्रम चतुर्विध है। इससे मुझे आश्चर्य है कि यह क्या है ? हे प्रभो ! चार प्रकार के अवधूतों के लक्षण विशेष रूप से बताइए, मैं उन्हें सुनकर उनका तत्त्व जानना चाहती हूँ (१४१-४२)।

श्री सदाशिव ने कहा—हे प्रिये ! जो सभी ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जाति-वर्ग ब्रह्म-मन्त्र के उपासक हैं, वे गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी '**यति**' कहे जाते हैं। हे कुलाचिते ! जो मनुष्य पूर्णाभिषेक की विधि से संस्कृत होते हैं, वे '**शैवावधूत**' हैं और सभी के पूज्य हैं (१४३-४४)। ब्राह्मावधूत और शैवावधूत अपने आश्रम और आचार का पालन करते हुए मेरे बताए मार्ग पर चलकर सभी कर्मों को करते हैं। ब्राह्मावधूत ब्रह्मार्पित द्रव्य के सिवा कोई भी निषिद्ध अन्न और जल-ग्रहण नहीं करते (१४५-४६)। हे वरानने ! ब्राह्मावधूत कौलों और अभिषिक्त कौलों के आचार तथा धर्म का कथन पहले हो चुका है। स्नान, सन्ध्या, भोजन, पान, दान, स्त्री-रक्षा —इन सभी कर्मों का अनुष्ठान शैवावधूत और ब्राह्मावधूत आगम के अनुसार करते हैं (१४७-४८) उक्त शैवावधूत और ब्राह्मावधूत दो प्रकार के हैं—१ पूर्ण, २ अपूर्ण। हे प्रिये ! पूर्ण शैवावधूत और ब्राह्मावधूत का नाम है '**परमहंस**'। अपूर्ण शैवावधूत और ब्राह्मावधूत को '**परिव्राट्**' कहते हैं (१४९)। जो मनुष्य अवधूत-संस्कार से संस्कृत होते हैं, वे यदि ज्ञान-विषय में दुर्बल हैं अर्थात् यदि उनमें पूर्ण अद्वैत भाव उत्पन्न नहीं होता, तो वे लोकालय में रहकर आत्म-शोधन करें और जिस प्रकार '**एकमेवाद्वितीयं**'—यह ज्ञान उत्पन्न हो, उस प्रकार करें (१५०)। वे अपने जाति-चिह्न शिखा-सूत्रादि की रक्षा करें। वे कौल के समान सभी कर्मों का अनुष्ठान करें, निरन्तर ब्रह्म-निष्ठ होकर ज्ञान-साधन करें (१५१)। वे सदा वीत-राग होकर '**ॐ तत् सत्**' इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए '**सोऽहमस्मि**' इस प्रकार चिन्तन कर अपने उपयोगी कर्मों का अनुष्ठान करें (१५२)। वे पद्म-पत्र पर स्थित जल के समान अनासक्त-हृदय होकर सभी कर्मों का अनुष्ठान कर तत्त्व-ज्ञान के विचार द्वारा अपना उद्धार करने को—मोक्ष पाने को यत्न-शील हों (१५३)।

गृहस्थ हों या उदासीन हों, '**ॐ तत् सत्**' इसी मन्त्र द्वारा जो जिस कार्य का अनुष्ठान करेगा, उसी से उसका वह कर्म अभीष्ट फल-दायक होगा (१५४)। जप, होम, प्रतिष्ठा, संस्कार आदि सभी कर्म '**ॐ तत् सत्**' मन्त्र द्वारा सम्पन्न होने से ही पूरे होते हैं, इसमें सन्देह नहीं (१५५)। अन्य बहुत से मन्त्रों या बहुत से साधनों की क्या आवश्यकता ? '**ॐ तत् सत्**'—इसी ब्रह्म-मन्त्र द्वारा सभी कर्मों को सम्पन्न करे (१५६)। यह मन्त्र सुख-साधक है, इसमें कोई अधिकता नहीं है, फिर भी यह पूरा फल देनेवाला है। हे अम्बिके ! इस महा-मन्त्र के सिवा अन्य उपाय नहीं है (१५७)। जो गृह के द्वार पर या शरीर पर '**ॐ तत् सत्**' इस मन्त्र को लिखकर धारण करता है, उसका गृह महा-तीर्थ के समान और शरीर पुण्य-मय होता है (१५८)। हे देवि ! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, '**ॐ तत् सत्**' यह मन्त्र निगम, आगम और सभी तन्त्रों में सार का सार है (१५९)। सब मन्त्रों से श्रेष्ठ यह ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर के तालु, मस्तक और ब्रह्म-रन्ध्र को भेद कर प्रादुर्भूत हुआ है (१६०)। यदि इस मन्त्र से चर्व्य, चोष्य, भक्ष्य, लेह्य—इन चतुर्विध अन्नों का या अन्य वस्तु का शोधन किया जाय, तो फिर किसी अन्य वैदिक या तान्त्रिक मन्त्र से उसे शुद्ध करने की आवश्यकता नहीं होती (१६१)। जो सर्वत्र सत्-स्वरूप ब्रह्म को प्रत्यक्ष करता है, जो '**ॐ तत् सत्**' इस महा-मन्त्र का जप करता है, जिसका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है और जो स्वेच्छाचारी है, वही पृथ्वी पर श्रेष्ठ कौल है (१६२)। '**ॐ तत् सत्**' मन्त्र का जप करने से मनुष्य 'सिद्ध' होता है, इसके अर्थ का चिन्तन करने से 'मुक्त' होता है और जो अर्थ-चिन्तन के साथ इस मन्त्र का जप करता है, वह मानव-शरीर-धारी होते हुए भी साक्षात् ब्रह्म के समान होता है (१६३)। यह '**त्रि-पद महा-मन्त्र**' सब

कारणों का कारण है। इस मन्त्र का साधन करने से साधक स्वयं मृत्युञ्जय होता है (१६४)। हे महेश्वरि ! इस **'त्रि-पद मन्त्र'** के दो-दो पदों या एक-एक पद का जप करने से साधक सिद्ध हो सकता है (१६५)।

जो शैवावधूत-संस्कार से संस्कृत है, उसके लिए, अन्य कोई काम्य कर्म नहीं है, अतः वह दैव-कर्म, आर्य कर्म या पितृ-कर्म करने का अधिकारी नहीं है (१६६)। चतुर्विध अवधूतों में से चौथा अर्थात् **'पूर्ण ब्रह्मावधूत'** को **'हंस'** कहते हैं। अन्य त्रिविध अवधूत योग और भोग करते हैं किन्तु चारों ही प्रकार के अवधूत मुक्त होते हैं तथा शिव-तुल्य हैं (१६७)। **'हंस'** अर्थात् **'पूर्ण ब्रह्मावधूत'** स्त्री-संसर्ग या धातु-परिग्रह नहीं कर सकता; वह विधि-निषेध से रहित होकर प्रारब्ध भोग करनेवाला बनकर विहार करता है (१६८)। यह तुरीय (चतुर्थ) **'परमहंस'** अपने जाति-चिह्न—शिखा, सूत्र, तिलक आदि को छोड़ देता है। वह गृहस्थ के कर्म भी नहीं करता। वह सङ्कल्प-रहित और उद्यम-हीन होकर पृथ्वी पर विचरण करता है (१६९)। वह सदा आत्म-भावना में ही सन्तुष्ट रहता है। वह शोक और मोह से अभिभूत नहीं होता। उसका कोई निश्चित रहने का स्थान नहीं होता। वह तितिक्षा-युक्त, शङ्का-हीन और निरुपद्रव रहता है (१७०)। वह किसी को लक्ष्य या पेय द्रव्य अर्पित नहीं करता। उसे ध्यान-धारणा नहीं करना है। वह मुक्त, विरक्त, निर्द्वन्द्व, हंसाचार-परायण और यति होता है (१७१)। हे देवि, यह मैंने तुमसे चतुर्विध कुल-योगी के लक्षणों का विशेष वर्णन किया है। ये सभी साधु हैं और मेरे ही स्वरूप हैं (१७२)।

मनुष्य लोग यदि इन **'कुल-योगी'** का दर्शन करें, इन्हें स्पर्श करें या इनसे बात करें या इन्हें सन्तुष्ट करें, तो उन्हें सभी तीर्थों के दर्शन का फल मिलेगा (१७३)। हे प्रिये ! पृथिवी पर जितने तीर्थ और पुण्य-क्षेत्र हैं, वे सभी **'कुल-संन्यासी'** के देह में सदा विद्यमान रहते हैं (१७४)। जो लोग **'कुल-साधुओं'** का अर्चन **'कुल-द्रव्य'** द्वारा करते हैं, वे धन्य हैं, कृतार्थ हैं, पवित्र हैं, उन्हें सब यज्ञों का फल प्राप्त होता है (१७५)। **'कुल-योगियों'** के छूने से अपवित्र व्यक्ति भी पवित्र होता है, अस्पृश्य व्यक्ति भी स्पृश्य होता है, अभक्ष्य वस्तु भी भक्ष्य हो जाती है (१७६)। जिस **'कुल-योगी'** के स्पर्श से किरात, पापी, क्रूर, पुलिन्द, यवन, खल लोग भी पवित्र हो जाते हैं, उसे छोड़कर अन्य किसकी पूजा करनी चाहिए ? जो लोग **'कुल-योगियों'** और **'कौल'** लोगों की पूजा एक बार भी **'कुल-तत्त्व'** एवं **'कुल-द्रव्यों'** से भक्ति-पूर्वक करता है, वह स्वयं भी पृथ्वी में पूज्य हो जाता है (१७७-७८)। हे कमलानने ! **'कौल-धर्म'** से श्रेष्ठ धर्म अन्य कोई नहीं है क्योंकि अन्त्यज व्यक्ति भी इस धर्म का आश्रय लेकर पवित्र होकर **'कौल'**-पद को प्राप्त करता है (१७९)। हे प्रिये ! जिस प्रकार सभी प्राणियों के पद-चिह्न हाथी के पद-चिह्न में समा जाते हैं, उसी प्रकार सभी धर्म **'कुल-धर्म'** में विलीन हो जाते हैं (१८०)। हे प्रिये ! स्वयं तीर्थ-स्वरूप **'कौल'**-गण पवित्रतम हैं, इसमें क्या आश्चर्य। वे अपने सम्पर्क से म्लेच्छ, श्वपच और पापियों को भी पवित्र बना देते हैं (१८१)। जैसे गङ्गा में गिरा अन्य जल भी गङ्गा-जल में बदल जाता है, वैसे ही **'कुलाचार'** में प्रविष्ट सभी जातियों के लोग **'कौल'** बन जाते हैं (१८२)। जैसे समुद्र में गया जल अलग नहीं होता, वैसे ही **'कुल'**-सागर में मग्न व्यक्ति उससे अलग नहीं होता (१८०)। इस भू-मण्डल में ब्राह्मण से अन्त्यज तक जितने दो पैर वाले प्राणी हैं, वे सभी **'कुलाचार'** के अधिकारी हैं (१८४)। जो **'कुल-धर्म'** में बुलाए जाने पर नहीं आता, वह सब धर्मों से भ्रष्ट होकर अधम गति को पाता है (१८५)। जो कोई मनुष्य **'कौलाचार'**-हेतु प्रार्थना करते हैं, उन्हें यदि कोई **'कौल'** भी ठगे, तो वह रौरव नरक में जाता है (१८६)। यदि कोई **'कौल'** व्यक्ति किसी **'कौल'**-धर्मावलम्बी बनने हेतु प्रार्थना करनेवाले को स्त्री, नीच, चण्डाज या यवन जानकर उसकी अवज्ञा कर उसे **'कौल'** नहीं बनाता, तो वह **'कौलों'** में अधम माना जाता है और अन्त में उसकी अधोगति होती है (१८७)। एक सौ अभिषेकों से, सौ पुरश्चरणों के करने से जो पुण्य होता है, उससे कोटि गुना अधिक

पूण्य एक व्यक्ति को **'कौल'** बनाने से मिलता है (१८८)। भू-मण्डल में जो-जो वर्ण हैं और जितने धर्मावलम्बी लोग हैं, उनमें से जो **'कौल'** होते हैं, वे ही पाश-मुक्त होकर परम पद को प्राप्त करते हैं (१८९)। शिवोक्त धर्मावलम्बी **'कौल'**-गण साक्षात् शिव-स्वरूप और तीर्थ-स्वरूप हैं। स्नेह, श्रद्धा और प्रेम द्वारा वे एक दूसरे का पूजन और सम्मान करते हैं (१९०)। मैं अधिक क्या कहूँ, तुमसे सत्य कहता हूँ कि इस संसार-सागर को पार करने के लिए **'कुल-धर्म'** ही सेतु के समान है। उसके सिवा संसार-सागर से पार करानेवाला अन्य कोई उपाय नहीं है। **'कुल-धर्म'** के सेवन से सभी संशय कट जाते हैं, सारे पाप नष्ट हो जाते हैं और कर्म-समूह जल जाते हैं (१९१-९२)। जो सत्य-व्रती और ब्रह्म-निष्ठ हैं, वे कृपा-वश मनुष्यों को बुलाकर **'कुलाचार'** से पवित्र करते हैं। वे ही सब महात्मा श्रेष्ठ **'कौलिक'** माने जाते हैं (१९३)।

हे देवि ! यह मैंने तुम्हें लोक-पावन, सर्व-धर्म-निर्णायक **'महा-निर्वाण-तन्त्र'** का पूर्वार्द्ध सुनाया है (१८४)। जो इसे ध्यान से सुनता है या मनुष्यों को सुनाता है, वह सभी पापों से छूटकर अन्त में **'मोक्ष'**—पद को पाता है (१८५)। सभी आगमों और तन्त्रों में परात्पर व सारात्सार इस तन्त्र-राज को जानकर मनुष्य सब शास्त्रों का ज्ञाता होता है (१८६)। जिसे यह **'महा-निर्वाण-तन्त्र'** ज्ञात है, उसे तीर्थ-भ्रमण, यज्ञ, जप, साधना करने की आवश्यकता नहीं। वह केवल **'महा-निर्वाण-तन्त्र'** के ज्ञान द्वारा कर्मों के पाश से मुक्ति पा जाता है (१८७)। हे कालिके ! जो इस **'महा-निर्वाण-तन्त्र'** को जानता है, वह सब शास्त्रों का ज्ञाता है, वही समस्त धर्मज्ञ लोगों के बीच श्रेष्ठ है; वही साधु, ज्ञानी और ब्रह्मज्ञ है (१८८)। वेद, पुराण, स्मृति, संहिता आदि और अन्यान्य बहुत तन्त्रों के जानने की क्या आवश्यकता ? केवल इसी **'महा-निर्वाण-तन्त्र'** के ज्ञात होने से वह सर्वज्ञ हो जाता है (१८९)। जो सारे साधन और उत्तम ज्ञान अत्यन्त गोपनीय थे, उन्हें मैंने तुम्हारे प्रश्नों के अनुसार इस **'महा-निर्वाण-तन्त्र'** में सुन्दर रूप से प्रकाशित कर दिया है (२००)। हे सुव्रते ! तुम जैसे ब्रह्म-शक्ति हो व मेरे लिए प्राणों से भी अधिक हो, इसी प्रकार इस **'महा-निर्वाण-तंत्र'** को भी प्राणों से अधिक जाने (२०१)। जैसे सभी पर्वतों में हिमालय, नक्षत्रों में चन्द्र, तेजवाले पदार्थों में सूर्य श्रेष्ठ है, वैसे ही तन्त्रों में यह तन्त्रराज श्रेष्ठ है (२०२)। यह तन्त्र सर्व-धर्म-मय और ब्रह्म-ज्ञान का एकमात्र साधक है, जो इस साधन को करता या कराता है, वह ब्रह्म-ज्ञानी होता (२०३)। हे देवेशि ! सभी तन्त्रों की अपेक्षा श्रेष्ठतम यह तन्त्र जिसके घर में रहता है, उसके वंश में कभी कोई 'पशु' नहीं होता (२०४)। जो अज्ञान से अन्धा, मूर्ख, क्रम-साधन के विषय में जड़ है, वह भी यदि इस तन्त्र को सुनता है, तो वह कर्म-पाश से छूट जाता है (२०५)। हे परमेश्वरि ! इस महा-तन्त्र का पाठ, श्रवण, पूजन या वन्दन मनुष्य के लिए कैवल्य-दायक है (२०६)। एक-एक आख्यान से युक्त अनेक तन्त्र कहे हैं और सब धर्मों से युक्त तन्त्र मेरे द्वारा कहे गये हैं किन्तु इसकी अपेक्षा श्रेष्ठ अन्य कोई तन्त्र नहीं है (२०७)। इस **'महा-निर्वाण-तंत्र'** के उत्तरार्ध में **'पाताल-चक्र'** और **'ज्योतिश्चक्र'** से समन्वित **'भू-चक्र'** दिया है। जिसे वह उत्तरार्द्ध ज्ञात है, वह सर्वज्ञ होता है, इसमें सन्देह नहीं (२०८)। जो मनुष्य परार्द्ध-सहित इस तन्त्र को जानता है, वह त्रि-काल-वार्त्ता और त्रैलोक्य-वृत्तान्त का वर्णन करने में समर्थ होता है (२०९)। अनेक प्रकार के तन्त्र हैं, बहुत प्रकार के शास्त्र भी हैं, परन्तु कोई भी शास्त्र या तन्त्र इस **'महा-निर्वाण-तंत्र'** के सोलह अंशों में से एक अंश के भी समकक्ष नहीं है (२१०)। मैं इस तन्त्र के माहात्म्य का वर्णन क्या करूँ, इस महा-तन्त्र का ज्ञान होने से **'ब्रह्म-निर्वाण'** प्राप्त होता है (२११)।

●×●

परिशिष्ट

महा-निर्वाण तन्त्र के तीन अनूठे उद्धरण

वङ्ग प्रदेश के मेहार-पीठ (जिला टिपरा, बँगलादेश) के दश-महाविद्या-सिद्ध **श्री सर्वानन्द-नाथ** १६वीं शती में प्रसिद्ध तांत्रिक सिद्ध महापुरुष हो गए हैं। आपकी कृति '**सर्वोल्लास-तन्त्र**' एक संग्रहणीय साधकोपयोगी संग्रह-ग्रन्थ है। इसमें '**महा-निर्वाण-तंत्र**' के तीन उद्धरण मिलते हैं, जो प्रचलित संस्करणों में उपलब्ध नहीं हैं। उन्हें यहाँ पहले-पहल उद्धृत किया जा रहा है—

(१) 'सर्वोल्लास तन्त्र' के छठे उल्लास (लय-प्रकरणं) में—

श्रीशिव उवा. –

महा-काली परात्मा च चणकाकार-रूपिणी। मायाच्छादितात्मानं तन्मध्ये सम-भावतः॥
महा-रुद्रः स एवात्मा महा-विष्णुः स एव हि। महा-ब्रह्मा स एवात्मा नाम-मात्र-विभेदकः॥
एक-मूर्तिस्त्रि-नामानि ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः। नाना-भाव-मनो यस्य तस्य मुक्तिर्न विद्यते॥
ब्रह्माण्डास्तत्र जायन्ते लक्ष लक्षं सुलोचने! तत्र ब्रह्मा तत्र विष्णुस्तत्र रुद्रः प्रविन्यसेत्॥
केचिद् वदन्ति स ब्रह्मा केचिद् विष्णुः प्रकथ्यते। केचिद् वदन्ति रुद्रः स एको देवो निरंजनः॥
आद्या-शक्ति-युतो देवश्चणकाकार-रूपकः। आनन्द-घन-संयुक्तः प्रभुः प्रकृति-रूप-धृक्॥
निर्गुणस्यालयः साक्षान्महा-काल्यालयः प्रिये! तत्रैव वर्तते नित्यश्चणकाकार-रूपकः॥
तस्य रूप-परं नित्यं परानन्द-परात्परं। नित्यानन्द-करा देवि! कालिका दक्षिणे स्थिता॥
आद्या-शक्तिर्महा-माया देव-निर्माण-कारिणी। जायते च क्षितौ वृक्षो यथा पृथ्व्यां प्रलीयते॥
तोयात् तु बुद्बुदं जातं यथा तोये प्रलीयते। जलदे तड़ित्पत्तिर्यथा मेघे प्रलीयमते॥
तथा ब्रह्मादयो देवाः कालिकायां प्रजायते। प्रलय-काले तु पुनस्तस्यां प्रलीयते॥
शक्ति-ज्ञानं विना देवि! मुक्तिर्हास्याय कल्प्यते। एकांशेन भवेद् ब्रह्मा एकांशेन जनार्दनः॥
एकांशेन भवेच्छम्भुः कालिकायाः सुलोचने! अपरा सा महा-काली नद्यादीनां समुद्र-वत्॥
गोष्पदे च यथा तोयं ब्रह्माद्या देवतास्तथा। गोष्पदे किं विजानीयात् समुद्रस्य जलं शिवे॥
तेन ब्रह्मा न जानाति विष्णुः किं वेत्ति शङ्करः। सृष्टि-कर्त्र्या यदा काल्या पाल्यन्ते च सुरादयः॥
तदा प्रलय-काले तु पुनस्तस्यां प्रलीयते। अतो निर्वाणदा काली पुरुषस्य च शर्मदा॥
चणकाकार-रूपेण प्रकाशं च मनोमयं। यथा सूर्यो जगद् भाति ज्ञेयं च चणकं तथा॥

एका शक्तिर्द्विधा भूत्वा मध्ये पुरुष-भाषितं । पुनः प्रलीन-कालेऽपि द्विधैकं पुंस-गोपितं ।।
नित्यानित्य-द्विधैकात्मा द्विधा भावाश्रिताः पुमान् । नित्यानित्यं यदैकात्मा तदैकं ब्रह्म-विग्रहं ।।

(२) 'सर्वोल्लास तन्त्र' के ५८वें उल्लास (हंस-वीज-माहात्म्यं) में—

श्रीदेव्युवाच--

देवेश ! प्राण-नाथेश ! त्रिगुण ! त्रिगुणात्मक ! अधुना हंस-वीजस्य माहात्म्यं कथय प्रिय ।।
श्रीशिव उवाच—

हंस-वीजस्य माहात्म्यं गदितुं नैव शक्यते । तव स्नेहेन बद्धोऽहं किञ्चिद्-भावं प्रकाशितं ।।
देवालयं भवेद् देहं हंसेन मनुना शिवे ! हंस-बीजं समाश्रित्य देही देहे सदा स्थितः ।।
हकारः शङ्करश्चैव सकारः शक्तिरीरितः । शिव-शक्त्यात्मकं मन्त्रमजपेति प्रकीर्त्तितं ।।
षट्-शतानि दिवा-रात्रौ सहस्राण्येक-विंशतिः । अजपा नाम गायत्रीं जीवो जपति सर्वदा ।।

श्रीपार्वत्युवाच—

शिव-शक्त्यात्मकं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा । प्रजपेत् केन मूलं च सोऽहं केन विचिन्तयेत् ।।
श्रीशिव उवाच—

कुम्भकं स्याद् 'हं'-कारेण 'सः'-कारेणापि रेचनं । कुम्भकेऽपि जपेन्मन्त्रं प्रत्येके प्रत्येकाक्षरं ।।

(३) 'सर्वोल्लास तन्त्र' के ५९वें उल्लास (ध्यान-त्रयस्य माहात्म्यं) में—

श्रीशिव उवाच—

स्व-देहे पूजयेद् देवं नान्य-देहे कदाचन । स्व-गेहे पायसं त्यक्त्वा भिक्षामटति दुर्मतिः ।।
स्थूल-ध्यानान्महा-देवस्तेजो-ध्यानाद्धि शङ्करी । सूक्ष्म-ध्यानाद् भवेन्मुक्तिराङ्कारं तत्र संभवं ।।
भिन्न-देहं शिवं शक्ति तेजोध्यानमभेदकं । शिव-शक्त्यात्मकं सूक्ष्मं ॐ तत् सद् व्यापितं जगत् ।।
विन्दु-त्रयं नाद-युग्मं विन्दु-युग्मं च नादकं । विन्दुमेकं नाद-युग्मं ॐकारं ब्रह्म-बोधकं ।।
कुण्डलिन्यंकुशाकारा विन्दु-रूपः सदाशिवः । अङ्क-मात्रं महादेवि ! शिव-शक्ति-प्रबोधकं ।।
विन्दु-द्वयं विना देवि ! किञ्चिन्मात्रं न जायते । वामे च परमा शक्तिर्दक्षिणे परमः शिवः ।।
शिव-शक्त्यात्मकं ब्रह्म वाचातीतं सुनिर्मलं । तकारं शङ्करं ज्ञेयं तकारं पुंस्त्व-विग्रहं ।।
ब्रह्म-बोध-मयं देवि ! तत् शब्दं शक्ति-गोपितं । विन्दु-युग्मं नादमेकं तकारं ब्रह्म-बोधकं ।।
तत्-शब्दं परमेशानि ! ॐकारस्यापि बोधकं । बिना स्वरेण देवेशि ! व्यञ्जनं नैव तिष्ठति ।।

तद्-वर्णं सकलं बोधं भाव-रूपं प्रकाशितं । सकारः शङ्करी ज्ञेया तकारो नाद-रूपकः ॥
शक्ति-ब्रह्म-मयं ज्ञानं सत् शब्दं भाव-बोधकं । व्यञ्जनं पुरुषं ज्ञेयं स्वरं ज्ञेयं च शङ्करीं ॥
शिव-शक्त्यात्मकं ब्रह्म सत्-शब्देनापि भाषितं । सकारं च तकारं च पुरुषं परमेश्वरि ॥
शक्ति-ज्ञानं मध्य-लुप्तं अकारं शब्द-बोधकं । पञ्च-नादं सप्त-विन्दुमेकाङ्कं परमेश्वरि ॥
एतैर्युक्तं सकारं हि त्रि-वकारं प्रकाशितं । सत्वं रजस्तमश्चैव त्रि-वकारेण भाषितं ॥
पञ्च-नादं पञ्च-तत्त्वं विन्दु-स्वर्गं विभूषितं । त्रिगुणाक्तं त्रिकोणं च प्रति-कोणं त्रयान्वितं ॥
काण-मात्रं विन्दु-मात्रं मध्ये नादं महेश्वरि ! सर्व-वर्ण-क्रममिदमङ्कं ज्ञेयं शिवोपरि ॥
विन्दु-द्वयं विना भद्रे अङ्क-मात्रं न जायते । नाद-विन्दङ्क-युङ्-वर्ण ब्रह्म-ज्ञानस्य कारणं ॥
तत्-शब्दं ज्ञेयं सत्-शब्दं सर्व-भाव-प्रकाशितं । तत्-सत् ज्ञेयं ब्रह्म-वोजं ॐकारेऽभूत् प्रकाशितं ॥
ॐकाराद् जायते सर्वं ॐकारे च प्रतीयते । सृष्टि-वोजं हि ॐकारं लय-वोजं त्रिलोचने ॥
हंस-वीजात् समुद्भूतं भावं भावातीतं ध्रुवं । दक्षिणानां च वामानां सिद्धान्तानां महेश्वरि ॥
हंसः सोऽहं च नाहं च भेदाभेदात्मनात्मकं । कौलानां चैव दिव्यानां भावातीतं हि केवलं ॥

प्रथम उद्धरण में आद्या-शक्ति 'महा-काली' के विराट् स्वरूप का भव्य वर्णन किया गया है। द्वितीय उद्धरण में **'हंस-वीज'** की महिमा बताई है कि **'हकार'** शिव-स्वरूप है और **'सकार'** शक्ति-स्वरूप। इस प्रकार यह **'शिव-शक्त्यात्मक वीज-मन्त्र'** है, जिसे जीव निरन्तर श्वास-निश्वास के साथ **'अजपा-रूप'** से जपता रहता है। तृतीय उद्धरण में १. स्थूल-ध्यान, २. तेजो-ध्यान और ३. सूक्ष्म-ध्यान—इन तीन प्रकार के ध्यानों का वर्णन करते हुए **'ॐतत् सत्'** मन्त्र का अर्थ समझाया गया है।

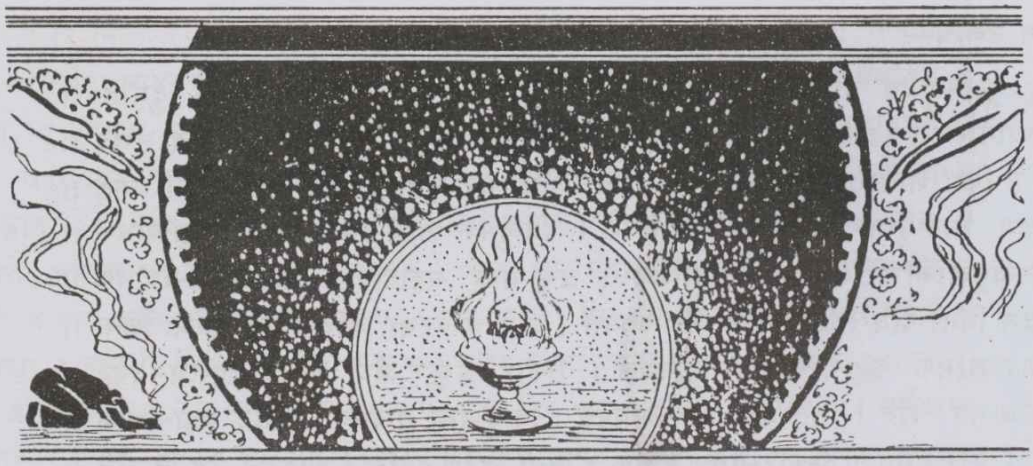

वन्दे गुरोर्मण्डलम्

हे शिवे! तुम साक्षात् परम ब्रह्म की परमा प्रकृति अर्थात् शक्ति हो। यह सारा जगत् तुम्हीं से उत्पन्न हुआ है।

हे भद्रे! महत् तत्त्व से परमाणु तक और स्थूल-सूक्ष्म सारा स्थावर-जङ्गम-स्वरूप जगत् तुम्हारे ही द्वारा उत्पन्न हुआ है। सारा जगत् तुम्हारे अधीन है।

तुम सबकी आद्या अर्थात् आदि-भूता हो। सारी विद्याएँ और हम सब तुम्हीं से उत्पन्न हुए हैं।

सारे जगत् के सभी विषयों को तुम जानती हो। तुम्हें कोई नहीं जान सकता। तुम काली हो, तुम तारिणी हो, तुम दुर्गा हो, तुम षोडशी हो, तुम भुवनेश्वरी हो, तुम धूमावती हो, तुम बगला हो, तुम भैरवी हो, तुम छिन्न-मस्ता हो।

महा-निर्वाण तन्त्र

प्रकाशक : परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान
श्रीचण्डी-धाम, अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-२११००६